रूपेश

246

असली प्राचीन

रावण संहिता

लंकाधिपति रावण के रहस्य-चमत्कार भरे जीवनवृत्त के साथ ही
शिवोपासना व विभिन्न तंत्र साधनाओं की जानकारी

विषय	पृष्ठांक
पुराणोक्त केतु मन्त्र	१७६
वैदिक केतु मन्त्र	१७६
तन्त्रोक्त मन्त्र	१७६
केतु गायत्री मन्त्र	१७६
नवग्रहों का यन्त्र-मन्त्रादि	१७६
नवग्रह स्तोत्र	१७७
अशुभ फलवाले ग्रहों के उपाय	१७७

[तृतीय परिच्छेद]

रोग चिकित्सा ज्ञान	**१७९-४२०**
प्रथम रोग परीक्षा की आवश्यकता	१७९
वातादिज्वर का उपचार	१८६
कफज्वर का उपचार	१८८
वातपित्तज्वर का उपचार	१८९
सन्निपातज्वर का उपचार	१९१
जीर्णज्वर का उपचार	१९७
ग्रहणी का उपचार	२१०
अर्श (बवासीर) का उपचार	२१४
क्षुधा या भूख वृद्धि के उपचार	२२३
विसूचिका रोग का उपचार	२२९
कृमिरोग का उपचार	२३०
पाण्डुरोग का उपचार	२३१
कामला और पाण्डु रोग का उपचार	२३२
रक्तपित्त रोग का उपचार	२३५
राजयक्ष्मा-क्षय रोग (टी.बी.) का उपचार	२४०
खाँसी का उपचार	२४६
हिचकी एवं श्वास का उपचार	२४९
स्वरविकृति का उपचार	२५२
आम रोचकता का उपचार	२५३
उबकाई एवं वमन का उपचार	२५४
तृष्णा या पिपासा का उपचार	२५७
मद्यपानजनित रोग का उपचार	२५९
दाह या जलनशीलता का उपचार	२६१
उन्माद रोग का उपचार	२६२
अपस्मार या मृगीरोग का उपचार	२६३
वातरोग का उपचार	२६५

विषय	पृष्ठांक
वातरक्त का उपचार	२७८
ऊरुस्तम्भ रोग का उपचार	२८२
आमवात का उपचार	२८४
शूलरोग का उपचार	२८९
परिणामशूल का उपचार	२९४
उदावर्त एवं आनाह का उपचार	२९८
हृदयरोग का उपचार	३०५
मूत्रकृच्छ्र का उपचार	३०७
मूत्राघात का उपचार	३०९
अश्मरी रोग का उपचार	३११
प्रमेहमधुमेहपिडिका रोग का उपचार	३१३
मोटापा रोग का उपचार	३१७
उदररोग का उपचार	३१९
उदर कृत प्लीहा रोग का उपचार	३२२
शोथोदर रोग का उपचार	३२४
शोथ रोग का उपचार	३२४
वृद्धिब्रध्न रोग का उपचार	३२७
गलगंड, गण्डमाला, ग्रंथि अर्बुद और अपची आदि रोगों का उपचार	३२९
श्लीपद रोग का उपचार	३३३
विद्रधि रोग का उपचार	३३५
सद्योव्रण का उपचार	३३९
शस्त्रादि भग्ना का उपचार	३४१
नाड़ीव्रण का उपचार	३४२
भगन्दर रोग का उपचार	३४४
उपदंश रोग का उपचार	३४६
शूकदोष रोग का उपचार	३४७
कुष्ठ रोग का उपचार	३४८
उदर्द कोठशीतपित्त का उपचार	३५१
अम्लपित्त का उपचार	३६०
विसर्पविस्फोटक का उपचार	३६२
मसूरिका (चेचक) रोग का उपचार	३६५
क्षुद्ररोग का उपचार	३६६
मुखरोग का उपचार	३७२
कर्णरोग का उपचार	३७९
नाक के रोग का उपचार	३८२

विषयानु

विषय	पृष्ठांक
नेत्र रोग का उपचार	३८४
शिरोरोग का उपचार	४००
प्रदर रोग का उपचार	४०४
योनिव्यापद् का उपचार	४०६
सूतिका रोग का उपचार	४०८
बालरोग का उपचार	४११
सर्प आदि विष विनाशक उपचार	४१४
रसायन का वर्णन	४१७
वाजीकरण का वर्णन	४१९

तृतीय परिच्छेद

रोग चिकित्सा ज्ञान

प्रथम रोग परीक्षा की आवश्यकता

रावण एक महायोद्धा, तपस्वी, महाज्ञानी और एक निपुण चिकित्सक भी था। यहाँ इस परिच्छेद में रावण द्वारा वर्णित रोग और उसके निदान सम्बन्धि यथा उपलब्ध सामग्रियों को हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

सर्वप्रथम वैद्य के लिए यह आवश्यक है कि वह रोगी के रोग का भली-भाँति परीक्षण कर लेने के पश्चात् ही उसे उपयुक्त औषधियाँ दे। जो वैद्य रोग की परीक्षा पूर्णरूप से न कर औषधियों का प्रयोग प्रारम्भ कर देते हैं उन्हें कदापि सफलता नहीं मिलती। विधि-विधान में कुशल चिकित्सक में स्वयमेव सिद्धियाँ निहित रहती हैं। देश-काल तथा रोग के भेदों का ज्ञान रखने वाला चिकित्सक औषध-प्रयोग में नि:संदेह ही सफल होता है। वैद्य को रोग की साध्यता-असाध्यता का विचार करके साध्य रोगों की ही चिकित्सा करनी चाहिए।

किसी भी रोग की उत्पत्ति पित्तादि दोषों के अभाव में नहीं होती। अत: उन दोष-लक्षणों को भली प्रकार से समझकर ही उपचार करना चाहिए। वैद्य को ऐसे रोगों की भी चिकित्सा करनी चाहिए जिन रोगों के लक्षण स्थायी न रहते हों।

रोग परीक्षा विधि और उसके प्रकार

रोग परीक्षा के निमित्त प्राय: तीन विधियों को अपनाया जाता है, जैसे—रोगी के नेत्र एवं मुखाकृति देखकर, अंगों का स्पर्श करके तथा भोजनादि सम्बन्धी बातें पूछकर। रोग के दो भेद होते हैं—एक साध्य और दूसरा असाध्य। इनमें भी साध्य के दो प्रकार होते हैं, कृच्छ्रोपाय (कठिनता से ठीक होने वाले) तथा सुखोपाय (सरलतापूर्वक ठीक होने वाले)। इसी प्रकार असाध्य के भी दो भेद कहे गये हैं—एक याप्य (निवारणीय) और दूसरा अयाप्य (अनिवारणीय)।

प्राय: सभी रोग प्रकृत्या साध्य होते हैं, किन्तु उनके प्रति असावधानी बरतने से साध्य भी असाध्य में परिवर्तित हो जाया करते हैं। यदि रुग्ण व्यक्ति सावधानीपूर्वक शीघ्र ही चिकित्सक द्वारा उपचार कराये और स्वयं भी देश-काल, प्रकृति तथा अवस्थानुसार चलकर अपनी वाणी एवं जननेन्द्रियादि पर नियंत्रण कर ले तो ऐसे बुद्धिमान् रोगी के असाध्य रोग भी साध्य बन जाते हैं।

रोग, अग्नि, शत्रु और विष आदि का सूक्ष्म रूप भी बढ़कर अनेक विकार पैदा कर देते हैं। असावधानी करने पर ये सभी प्राणियों को मृत्यु की गोद में सुला

देते हैं। कोई भी रोग अपने स्तर से नीचे आने पर अनेक दोषों को उत्पन्न करता है अथवा छूट जाने पर भी अल्प कारणों से पुनः आक्रमण कर देता है।

नाड़ी से रोग ज्ञान विधि

हाथ के अंगूठे की जड़ में चलने वाली नाड़ी जीवसाक्षिणी कही जाती है। उसके प्रयत्न द्वारा ही शारीरिक सुख-दुःख की अनुभूति होती है। वह नाड़ी वातविकार में जोंक और साँप की गति के समान चलती है। पित्तदोष के कारण वह कुलिंग पक्षी, काक और मेढ़क की चाल से चलती है। कफ के कुपित होने पर उसकी गति हंस तथा कपोत के समान रहती है तथा सन्निपातज रोगों में लवा, तीतर और बटेर की चाल से चलती है। दो दोषों के प्रकोप से वह कभी-कभी मंद एवं द्रुत गति से चलती है। अपने स्थान से पतित होने पर वह जीवों के प्राण भी ले लेती है।

रुक-रुककर चलने वाली, मन्दरूपा और शीतल नाड़ी प्राणनाशिनी होती है, ज्वरावस्था में उष्ण होकर वह वेगपूर्वक चलती है। काम-क्रोध के उद्वेगावस्था में वह वेगवाहिनी तथा चिन्ता, शोक, भय आदि की स्थिति में क्षीणप्राय रहा करती है। क्षीणधातु तथा मंदाग्नि वाले व्यक्ति की नाड़ी अत्यन्त धीमी होती है, किन्तु आमदोष के कारण नाड़ी में रक्तपूर्णता, किंचित् उष्णता तथा भारीपन देखने में आता है।

प्रदीप्त क्षुधाग्नि वाले व्यक्ति की नाड़ी हल्की, गहरी तथा वेग से प्रवाहित होती है। स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी स्थिर तथा बलवान् होती है। क्षुधातुर व्यक्ति की नाड़ी में चपलता तथा क्षुधा के अभाव में स्थिरता पायी जाती है। इस प्रकार नाड़ीज्ञान को श्रेष्ठ वैद्यों ने कहा है।

चिकित्सा का समय

किसी प्रकार का रोग जब तक क्षीणावस्था में हो, सूक्ष्म दाहक हो या वेग की प्रबलता से रहित हो तभी उसे उपयुक्त औषध द्वारा नियंत्रित कर लेना चाहिए। जब तक रोगग्रस्त प्राणी अपनी प्रकृतिस्थ अवस्था में न आ जाय तब तक चिकित्सक को उसके रोगशमन का उपाय निरन्तर करते ही रहना चाहिए।

वैद्य का दायित्त्व

प्रत्येक वैद्य का यही वैद्यत्व है, वह आयु का स्वामी कदापि नहीं हो सकता। कुछेक रोग ऐहिक तथा कुछेक पूर्वजन्मार्जित कर्मों के फलस्वरूप होते हैं तथा कुछ शीत-पित्तादिक विकार के कारण। कुछ रोग दोषज तथा कर्मज होते हैं। ये द्विदोषज रोग प्राणियों का संहार कर दिया करते हैं।

शास्त्रीय विधानानुसार तथा रोगानुसार चिकित्सा करने के परिणामस्वरूप भी रोग का शमन न होने पर उसे कर्मज रोग समझना चाहिए। जिस रोग में अल्प विकार के साथ गरिष्ठता हो तो उसे दोनों दोषों का परिणाम कहा जाता है। कर्म और

दोषहारक उपायों तथा औषधों के द्वारा कर्मदोष का क्षय होने पर कर्मदोषजनित रोग स्वत: ही नष्ट हो जाते हैं।

विष, शस्त्र, अग्नि तथा वज्रादि से मृत्यु होना कर्मज है। इस प्रकार से मृत्यु के ग्रास बने व्यक्तियों के लिए केवल एक संजीवनामृत ही उपयोगी होता है। शरीरस्थ जितने भी रस, रक्तादि धातुएँ हैं उन सब का प्रक्रिया द्वारा अपनी साम्यावस्था में आ जाना ही रोगदोषों की चिकित्सा तथा चिकित्सकों का प्रशस्त कर्म होता है।

ज्वर क्या है?

जिस प्रकिया के द्वारा रोगों में कठिनता उत्पन्न होती हो उसे अनर्घ कहा जाता है। अत: वह परित्याज्य है,क्योंकि श्रेष्ठ वैद्यों ने उसकी निन्दा की है। ज्वर के सन्दर्भ में ऐसा कहा गया है कि जिस रोग में पसीने का निकलना एकाएक बंद हो जाय, सभी अंगों में ताप होने के साथ ही-साथ पूरा शरीर जकड़ा हुआ-सा जान पड़े तो उसे ज्वर की संज्ञा दी गयी है।

सामान्यज्वर चिकित्सा

समस्त रोगों में सबसे पहले ज्वर की उत्पत्ति हुई और यह सभी रोगों में बलशाली हुआ। भगवान शिव ने इसे पूर्वकाल में वरदान दिया था कि तुम सभी में ज्येष्ठ और श्रेष्ठ बनोगे। अल्प ज्वर के होने पर भी भूख की कमी, मुख के स्वाद का फीका पड़ना, बल और तेज की क्षीणता तथा शीतविकार आदि दोषों के लक्षण इसमें पाये जाते हैं। अतएव इसके शमनार्थ रोगी से लंघन कराना उचित है। यहाँ लङ्घन से तात्पर्य भूखा रखना है।

लंघन करने के फलस्वरूप जब दोष का शमन होकर ज्वर उतर गया होता है तब शरीर में मृदुता और हलकापन आकर क्षुधा प्रज्वलित होने लगती है। विशेषतया आमाशय दोष से उत्पन्न ज्वर में वमनीय रोगी को पथ्य देने के पश्चात् ही वमन कराना उचित होता है, ऐसा वैद्यों से मेरी सलाह है।

लंघन का समय

पहले दिन दोष आमाशयस्थ क्षुधाग्नि के स्थान को आक्रमित कर उसे नष्ट कर देता है जिसके परिणामस्वरूप ज्वरोत्पत्ति हुआ करती है। अत: इसमें क्षुधाग्निवर्धक लंघन उपकारी होता है। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि वमन किये हुए रोगी को लंघन न करायें अथवा लंघन किये हुए को वमन न करायें क्योंकि वमन अधिक कष्टकारी होता है। अत: जिस रोगी ने लंघन किया हो उसे वमनकारी औषध न दें।

जिस रोगी को दोषाग्नि पूर्णरूप से आक्रमित न कर सके तो उसके लंघन से दोष निकल जाता है। इसके द्वारा ज्वर का निवारण, क्षुधाग्नि तथा रुचिवर्धन होता है। यह प्रदूषित रक्त का शुद्धिकरण भी करता है, किन्तु दोष और शक्ति का विचार

करके ही लंघन कराना उचित होता है। इसका प्रयोग वातरोग, भूख-प्यास, मुख सूखना तथा मूर्च्छाग्रस्त रोगियों पर करना संगत होता है, किन्तु बाल, वृद्ध, गर्भवती नारी, कृशकाय तथा निर्बल व्यक्ति पर करना अनुचित माना गया है। इसके अतिरिक्त चिन्ता, परिश्रम, क्रोध, शोक, कामविकार तथा क्षयोत्पन्न ज्वर में भी प्रयोग निषिद्ध है।

जिन रोगियों में दोष की अवस्था न रहते हुए भी रोग अपनी तरुणावस्था में जा पहुँचा हो, उनमें वमनकारी प्रयोग से रोगी में हृदयरोग, श्वास, अफरा (पेट फूलना) तथा मूर्च्छा–जैसे रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यदि वमन कराने से शारीरिक बल पर कोई दुष्प्रभाव न पड़े तो वमन कराना उचित है, क्योंकि शक्ति पर ही स्वास्थ्य निर्भर होता है तथा उसी के लिए चिकित्सा का इतना विधान भी किया जाता है।

रोगी को उस दशा में लंघन कराना निषिद्ध माना गया है जब उसके अपानवायु और मल-मूत्र का निःसरण स्वाभाविक ढंग से हो रहा हो, शरीर में हलकापन हो, मन में उत्साह, मुख तथा कंठ में विरसता का अभाव हो, क्षुधा-पिपासा की प्रबलता और अंतरात्मा में आनंद की अनुभूति हो रही हो।

लंघन के दोष

लंघन के व्यभिचार से रोगी में निम्न प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाया करते हैं, जैसे—शरीर की हर एक जोड़ों में शिथिलता, सम्पूर्ण शरीर में पीड़ा, खाँसी आना, मुख का सूखना, मंदाग्नि, मन में अनुत्साह, बुद्धिनाश, वायु का ऊर्ध्वगमन, मन में तमोगुण की उत्पत्ति, शरीर, क्षुधाग्नि तथा बल का ह्रास।

अलंघन का समय

निम्न लक्षणों के पाये जाने पर रोगी को लंघन कराना निष्प्रयोजनीय होता है, जैसे—मल-मूत्र का निःसरण, अधोवायु का संचरण, सुखपूर्वक नींद आना, आलस्यराहित्य, शिर का हलकापन, कफादि का निःसरण, मुख, हृदय तथा उदर का शुद्ध होना, पसीना निर्गत होना, भोजन की इच्छा आदि। उत्तम वैद्य के लिये यह आवश्यक है कि वह रोगी की पूरी तरह से विवेचना करके ही औषध प्रयोग करे।

पथ्य का महत्त्व

ऐसे-ऐसे दोष, देश-काल, अवस्था तथा रोगविकार की समानता के अनुसार चेष्टापूर्वक अनुपान के साथ औषधि और पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिए। लंघनीय रोगी को लंघन न कराने के फलस्वरूप उसमें कफोत्पन्न क्लेश, मानसिक न्यूनता, बार-बार थूकने की इच्छा, शरीर में भारीपन तथा आलस्य आदि दोष उत्पन्न हो जाया करते हैं।

कभी-कभी चिकित्सा का सहारा लिये विना केवल पथ्य सेवन से ही शताधिक उपायों से दूर न होने वाले रोग भी दूर हो जाया करते हैं। क्षुधातुर रोगी को

यवागू (षड्गुण जल में पाचित लपसी) के साथ में भुने हुए चावलों के भात सेवनीय होते हैं। यह यवागू अग्निदीपक, अन्न का पाचन करने वाली तथा रुचिकारक होती है। अत: इसे आहारार्थ ग्रहण करना लाभकारी होता है।

सुरापान के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले रोगों में, ग्रीष्मकाल में, कफ-पित्त की अधिकता में, रक्तपित्त के ऊर्ध्वगामी होने पर, जलन और वमन में यवागू का पेय हानिकारक है। शेष के ज्वरावस्था में ज्वरनाशक फलों के रस तथा शक्कर और मधुमिश्रित सत्तू का रस पिलाना हितकर होता है।

श्रमोपरान्त, उपवास तथा सामान्य ज्वर की अवस्था में रसदार मंड और भात का सेवन करना लाभदायक होता है।

मूँग डालकर पकाये गये चावलों का भात कफज रोगी के लिए हितकारक होते हैं।

यही मूँग-चावल मिश्रित भात स्निग्धता के साथ पकाकर खाने से शीतपित्त (जुलपित्ती) के ज्वर में गुणकारी होता है।

मूँग और आँवले का रस वात-पित्त वाले रोगियों के लिए लाभकर होता है।

ज्वर नाशक क्वाथ

पित्त-कफ वाले रोगी में नीम और पटोल का क्वाथ पान करना लाभप्रद है। लाल रंग का गन्ना और मूँग का काढ़ा वात-कफ वाले रोगी के लिए लाभप्रद होता है। परवल के पत्ते, हलदी, नागरमोथा, नीम का छिलका, त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला), कुटकी, कटेरी और देवदारु—इनका क्वाथ बनाकर पीने से त्रिदोषज (वात, पित्त, कफ) ज्वर का नाश होता है।

सोंठ, पुष्करमूल, गुरुच तथा कटेरी। इनका काढ़ा पीने से श्वास, कास तथा वात-पित्ताधिक सन्निपातज ज्वर का निवारण होता है। महुआ का फूल, फालसा, अंगूर, त्रायमाण, खस (एक प्रकार का तृणविशेष), कुटकी, त्रिफला और खम्भारी। इन सबका शीतल जूष पान करने से सभी-प्रकार के ताप दूर होते हैं।

यदि कोष्ठबद्धता का रोगी कुटकी, त्रिफला, त्रायमाण, गुड़, और दाख (अंगूर) का काढ़ा बनाकर पी ले तो उसकी कब्जियत दूर हो जाती है। कफ रोग से पीड़ित मनुष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह उक्त पेय को न पीवे। भोजनोपरांत जल और पेया पीने से कफज रोगी में कफ की वृद्धि होती है।

कफाधिक्य के कारण कृश शरीर के रोगी को भूसीरहित यव को अच्छी तरह से पकाकर पीना लाभदायक होता है। रोगियों के प्रति शुभेच्छुक चिकित्सक का यह कर्तव्य है कि वह कुलथी, चना और अनारदाना के साथ पकाये गये हलके यूष

अथवा रूक्ष, कटु रसों वाले चिकने और रुचिकारक यूष सेवन करने का परामर्श दें।

दोष का परिपाक भली प्रकार से हो जाने पर घृत का प्रयोग अमृत के समान फलदायक होता है, किन्तु इसके विपरीत वह विष का कार्य करता है। प्राय: दश दिनों के पश्चात् कफज ज्वर का परिपाक हो जाता है। अत: उसी समय से कुशल वैद्य घृत का प्रारम्भ करा दे।

यदि रोगी या निरोगी व्यक्ति सायंकाल में हलका भोजन ले तो उसे अभीष्ट सिद्धि मिलती है, क्योंकि यह समय कफ की कमी और जठराग्नि-वृद्धि का काल होता है। कफ-वातजनित ज्वर में तृषातुर रोगी को गरम जल तथा विधिवत् पाचित यूषादि रसों के प्रयोग करने चाहिए।

पित्त और मद्यपान के विष से उत्पन्न ज्वर में तिक्तक (परवल, चिरायता, कृष्णाखदिर) का काढ़ा अथवा मोथा, पित्तपापड़ा, खस, कुटकी, चन्दन तथा सोंठ का क्वाथ बनाकर पिपासा एवं ज्वर शमनार्थ प्रयुक्त करें। (इति षडंग:)

तरुण ज्वर (प्रारंभिक अवस्था) में औषधों का प्रयोग वर्जित है, केवल सिद्ध किये गये पेया आदि देने चाहिए। अत: ऊपर कथित षडंग में बतलायी गयी औषधियों का कषाय सोलहगुने जल में पकाये जाने पर जब चौथाई भाग शेष रहे तो उसे तरुण ज्वर में प्रयुक्त करें।

सात दिनों तक रहने वाला ज्वर तरुण, बारह दिनों तक मध्यम तथा इसके बाद बना रहने वाला ज्वर प्राचीन कहा जाता है। जिस समय ज्वर धीमा, शरीर हलका तथा मल चलायमान हो उस समय तरुण ज्वर में भी औषधों का प्रयोग किया जा सकता है।

दोषों की मूलप्रकृति में विकार प्रविष्ट होने पर दोष की परिपक्वता समझनी चाहिए। किसी-किसी विद्वानों का कथन है कि वातविकार सात दिन में, पित्तविकार दश दिन में तथा कफ का विकार बारह दिनों में परिपक्व होता है। चिकित्सक को निर्बल दोष वाले औषधिसाध्य रोगों की चिकित्सा विचारपूर्वक करनी चाहिए। दोष का परिपाक हो जाने के अनन्तर यदि दोष को शरीर से बहिर्गत न किया जाय तो वह दोष रोगी की मृत्यु का कारण बन जाता है। अत: इसके लिए ज्वर को विषम बनाने तथा ज्वर को बलहीन करने की आवश्यकता पड़ती है।

कुछ लोग तीन दिन तथा कुछेक लोग दश दिन के पश्चात् औषधि-व्यवस्था को उचित मानते हैं। किसी-किसी के मत से तरुण ज्वर में कषाय का प्रयोग अनुपयोगी होता है। उनका मानना है कि कषाय-प्रयोग से दोष शरीर में जम जाया करते हैं, जिन्हें बाहर निकालना एक दुष्कर कार्य होता है।

सभी प्रकार के ज्वर में सेवन योग्य द्रव्य

सभी प्रकार के ज्वरों में सबसे पहले रोगी को सोंठ, मोथा, देवदारु, धनिया और बृहतीद्वय (कंटकारी, कटेहरी) का ज्वरनिवारक पाचन प्रयुक्त कराना चाहिए। पथ्य ग्रहण करने से पूर्व सेवित औषधि अधिक बलकारी होती है। अतएव रोग को क्षीण और स्वयं को शक्तिशाली बनाने के इच्छुक बाल, वृद्ध, तरुण, तरुणी तथा कोमल प्रकृति वाले रोगियों को पथ्य लेने से पूर्व ही औषधि का सेवन करना आवश्यक है।

भोजनोपरांत औषधि सेवन से रोगी में क्लान्ति और दुर्बलता आती है। ऐसा करने पर रोग का शमन न होकर उसका वर्धन होता है तथा रोग का प्रकोप बराबर बढ़ता ही जाता है। ठीक इसी प्रकार औषधि सेवन के उपरांत पथ्य न लेने से औषधि फलहीन हो जाती है। तदनन्तर पथ्याक्रान्त औषधि देकर शीघ्र ही दोष का पाचन एवं बल का वर्धन किया जाता है।

पथ्ययुक्त औषध ग्रहण करने से रोगी में जब कुछ स्वस्थता आ जाय तब किसी स्वच्छ, एकांत और वायुरहित स्थान में ले जाकर चिकित्सक को स्वेदन कर्म करना चाहिए। इस प्रकार अवस्थानुसार मात्रा सहित औषधि प्रयोग के द्वारा रोगी रोगमुक्त हो जाता तथा चिकित्सक भी यशस्वी होता है।

मिताहारी-मिबिहारी

यदि रोगमुक्त व्यक्ति पुनः ज्वराक्रान्त न होना चाहे तो उसे प्रमाणानुसार आहार-विहार करते हुए नित्यप्रति शक्त्यानुसार व्यायाम भी करते रहना चाहिए। जो व्यक्ति क्षुधारक्षण करते हुए कालोचित और उपयुक्त आहार लेता तथा विकृतिविहीन पदार्थों का अनुसरण करता है वही मिताहारी कहलाता है।

दिन के दोनों सन्ध्याओं में अनिद्रित रहना, समय से सोना-जागना, इन्द्रियों को अपने वश में रखना, मुख्य व्यायाम, मार्गभ्रमण तथा परिश्रम आदि गौण व्यायाम कहे जाते हैं। जो पुरुष सर्वांगसुंदरी और नीरोग भार्या के साथ ऋतुकाल में शक्ति का रक्षण करते हुए रात्रि में रमण करता है वह मितविहारी कहलाता और अजरता-अमरता को प्राप्त करता है।

प्रातःकालीन जलपान से होने वाला लाभ

नित्यप्रति प्रातःकाल सोकर उठते ही साक्षात् अमृततुल्य गुणकारी स्वच्छ और शीतल जल का पान करने वाला व्यक्ति अजरत्व तथा अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। प्रतिदिन प्रातःकाल सुंदर जल को अच्छी तरह से पीने वाला पुरुष राजयक्ष्मा, खाज-खुजली तथा कुष्ठादि रोगों से रहित हो जाता तथा उसके शरीर का कांतिवर्धन भी होता है।

व्यायाम, भोजन व मैथुनान्त का पान

दीर्घकाल तक जीवित रहने के इच्छुक व्यक्ति को व्यायाम, भोजन तथा मैथुन के अन्त में शक्करमिश्रित मधु और दूध का पान करना चाहिए। जल का व्यवहार बिलकुल ही नहीं करना चाहिए।

परिणाम से अनभिज्ञ रहने वाले मूढ़ बालक यौवनारम्भ काल में ऐसे दुष्कर्म करने लगते हैं जिनसे शरीरस्थ धातुओं का क्षय हो जाता है। ये धातुएँ ही शरीर को विकसित कर बल-बुद्धि को बढ़ाती हैं। धातु को ही शरीर का आधार-स्तम्भ भी माना जाता है।

वीर्यहानि के दुष्परिणाम

वीर्यक्षय के कारण शक्तिहीन प्राणी यौवनान्त में अपने किये हुए दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप करके अनेक प्रकार के कष्ट भुगतने के लिए विवश हो उठते हैं। उनके कर्मफल निम्नरूप में उभरकर सामने आते हैं, जैसे—दुर्बलता, मूढ़ता, दीप्ति, बुद्धि और स्मृति का लोप होना।

इस प्रकार के दुर्भाग्य से मन में निराशा, उत्साहहीनता, उत्साहहीनता से रोगग्रस्तता तथा रोगग्रस्तता के परिणामस्वरूप मृत्यु का होना सुनिश्चित रहता है। यदि अल्प वयवाले जीवन-पर्यन्त भाग्यशाली तथा पौरुषवान बने रहना चाहें तो उन्हें इस प्रकार के दुष्कर्मों का परित्याग कर देना ही उचित है।

क्रोध, चिन्ता, अहंकार और ईर्ष्या की ज्वाला में निरन्तर जलने वाला व्यक्ति भी स्वल्पायु होता है। अत: विवेकशील प्राणी को इन सब दोषों से सदैव बचना चाहिए।

वातादिज्वर का उपचार

रावण कहते हैं कि—क्रमानुसार वातज्वारदि रोगों की उन औषधियों का वर्णन करता हूँ जो बल-बुद्धिवर्धक तथा आयुष्य का महान कारण रूप है। चिरायता, मोथा, अमृता (गुरुच, हरड़, छोटी पीपर), सुगंधवाला, दोनों बृहती (कंटकारी, कटेहरी) और गोखरू। इन्हें पकाकर तैयार किया गया कषाय वातज्वर को दूर करता है।

पिप्पली (छोटी पीपर), सारिवा (सालसा), दाख (अंगूर) सौंफ, हरेणु (एक गंधद्रव्यविशेष) तथा गुड़ के साथ इन औषधों का कषाय वातज्वरनाशक होता है। दाख, गिलोय, कम्भारी (खम्भारी), त्रायमाण, सालसा। इन सबका क्वाथ खजूर के रस के काढ़े में मिलाने पर वातज्वरविनाशक हो जाता है।

कुटकी, मोथा और इन्द्रयव। इनके क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से

पित्तज्वर में लाभ होता है। लोध, कूठ, गिलोय (गुरुच), पुष्करमूल और सालसा। इनका क्वाथ बना शक्कर मिलाकर पीने से पित्तज्वर में लाभ पहुँचाता है। यह क्वाथ साक्षात् अमृतस्वरूप होता है। नीम, केशर, वंशलोचन और धनिया को घोंटकर पान करना पित्तजज्वर में लाभकारी होता है।

दुरालमा, पित्तपापड़ा, प्रियंगु का फूल, चिरायता, अड़ूसा और कुटकी। इनका काढ़ा शक्कर मिलाकर पीने से प्यास, पित्तज्वर तथा जलन शान्त होती है। परवल के पत्ते और इन्द्रयव का काढ़ा बना उसमें मधु मिलाकर पान करना तेज पित्तज्वर और पिपासा को दूर करता है।

पित्तज्वर विनाश हेतु एक अकेला पित्तपापड़ा ही पर्याप्त होता है। यदि उसमें गौरीसर, हरिचन्दन, सोंठ और मोथा भी मिला दें तो पित्तज्वर दूर होने में देर नहीं लगती। सोंठ, सुगंधवाला, पित्तपापड़ा, खस, मोथा और चन्दन। इन्हें पकाकर काढ़ा करके पीने से प्यास, वमन, ज्वर तथा दाह आदि रोगों का निवारण होता है।

दाख, अमलनास और कम्भारी (गम्भारी) का काढ़ा पीने से पित्तज्वर का नाश होता है। दाख, हरीतकी (हरड़), पित्तपापड़ा, कुटकी और अमलतास। इनका क्वाथ मूर्च्छा, प्रलाप, जलन, पिपासा तथा मुख का सूखापन दूर करता है।

एक दिन तक धनिया को जल में भिंगोये रखकर दूसरे दिन छानकर उसमें शक्कर मिला ले और पान करें तो पित्तज्वर के कारण उत्पन्न होने वाली जलन शान्त हो जाती है। अमलतास, सीसक, पीला चंदन या छोटा प्लक्ष (पाकड़), तमालपत्र (आबनूस का पत्ता) और बहेड़ा। इनको पीसकर हड्डी और मज्जा के दाह में लेप लगाना लाभप्रद होता है।

बेर वृक्ष के पत्तों से निकले हुए झाग से सिद्ध करके बिदारीकंद, अनार, लोध, कैथ (एक फलविशेष) और बीजपूर। इन्हें पीसकर तीन बार मस्तक पर लेप लगाने से जलन नष्ट होती है। इससे पुराने बुखार में होने वाली जलन भी दूर हो जाती है।

केले या नीम के पत्तों पर पीठ के बल लेटे हुए रोगी के नाभिस्थल में एक काँसे का पात्र रखकर शीतल जल की तेज धारा गिराने से शीघ्र ही जलन मिट जाती है। अथवा जिस नारी का कंठप्रदेश गलहार से विभूषित हो, उसके अंग-प्रत्यंग शीतल चन्दन से लिप्त हों तथा उसके स्तन, जाँघें और नितम्ब के भाग परिपुष्ट हों—ऐसी कल्याणमयी नवयौवना नारी का प्रेमालिंगन करने पर तत्काल ही शारीरिक जलन शांत हो जाती है।

कमलपुष्पों तथा हंसों का समूह, फौव्वारे से युक्त वापी तथा चंदन से लेपित

शरीरांगी सुखदायिनी स्त्री भी दाहहारिणी होती है। अथवा पित्तज्वर से ग्रस्त रोगी यदि जलहीन मेघों के समान शुभ्र, निर्मल, चंद्रकिरणों से शीतल तथा चंदनाभिषिक्त स्थान में निवास करें तो भी पित्तज्वर का नाश हो जाता है।

केश, त्वचा, तालु और जीभ की शुष्कता में सेंधानमक के साथ मधु मिलाकर बीजपूर की केशर के सहित मस्तक पर लेपित करने से उत्तम फल मिलता है।

हरड़, प्रियंगु का पुष्प, पिप्पली (छोटी पीपर), लोध, दोनों हलदी (हलदी एवं दारुहलदी) और आँवला। इन सब वस्तुओं से कुल्ला करने पर मुख की कडुआहट दूर होती है। मुखशोधन के परिणामस्वरूप भोजन के प्रति रुचि भी बढ़ती है।

कफज्वर का उपचार

कूठ, इन्द्रयव, मरोड़फली और परवल। इन सबका कषाय निर्मित कर उसमें कालीमिर्च और शहद मिलाकर पान करने से कफज्वर का प्रकोप नष्ट होता है। परवल, त्रिफला, गिलोय, कूड़ा, कुटकी, वच (कुलंजन) अथवा दशमूल (शालपर्णी, पृश्निपर्णी, खम्भारी, गोखरू, बेल, श्योनाक (सोनापाठा), पाढल, अरणी, दोनों कटेरी (छोटी एवं बड़ी) और बाँसा—इन्हें दशमूल कहा जाता है।) का काढ़ा बनाकर मधु के साथ पीना कफज्वर में लाभकारी होता है।

स्नेहसंज्ञक क्वाथों में घृत और मधु डालकर एक साथ ही पाक करें। यहां यह ध्यान रहे कि कार्तिक मास का निकाला हुआ मधु और घी पुराना होना आवश्यक है। दश साल का रखा हुआ घी पुराना माना जाता है।

आँवला, हरड़, पिप्पली और त्रिफला। इन सबका एकीकृत योग अग्निदीपक, दोषशामक, कफनाशक तथा सम्पूर्ण ज्वरों का निवारक होता है।

कायफल (कट्फल), पुष्पकरमूल, छोटी पीपर और कर्कटशृंगी (काकड़ासिंगी)—इन चार वस्तुओं का लेह मधु के साथ सेवन करने पर श्वास, कास (खाँसी), कफ और ज्वर का विनाश हो जाता है। उक्त रोगों का नाशक होने के अतिरिक्त यह प्लीहा (बरवट, तिल्ली), हिचकी तथा बालरोगों में भी लाभप्रद होता है।

उपर्युक्त औषधों के चूर्णित कल्क की वटिकाओं की मात्रा पाँच रत्ती होनी चाहिए तथा गीले रस को सीपी द्वारा चाटना उपयुक्त होता है। अथवा सुविज्ञ चिकित्सक को इसकी मात्रा का निर्धारण ज्वरदोषबल, औदरिक अग्निबल, शारीरिक बल, अवस्था, औषधबल तथा आमाशयिक बल को ध्यान में रखकर ही करना चाहिए।

छोटी पीपर, करीर, चव्य, चित्रक, अतीस, सोंठ, स्याह एवं श्वेत जीरा, पाठा, हींग, रेणुका, दाख, सफेद सरसों, कुटकी, महानिम्ब, इन्द्रयव, अजमोदा, छोटी इलायची, भारंगी और वायविडंग (भाभीरंग)—इन बीस वस्तुओं से सम्मिलित योग से पाचित किया हुआ यह कृष्णादिगण कफरोगविनाशक माना गया है।

वातपित्तज्वर का उपचार

मिलित दोषों में मिलित औषधों का पाचन (दोषशामक कषाय या काढ़ा) देना लाभकारी होता है। इसके लिए त्रिफला, शाल्मलि (सेमल), रास्ना, अमलतास और बाँसा—इनका क्वाथ पान करने से वातपित्तज्वर तत्क्षण ही नष्ट हो जाता है।

अतीस, गुरुच, मोथा, चिरायता, लघुपञ्चमूल (सरिवन, पिठवन, दोनों कटेरी तथा गोखरू)—इनका पाचित कषाय पीने से शीघ्र ही वात-पित्तज्वर दूर हो जाता है। अथवा चिरायता, गिलोय, दाख, आँवला और कचूर—इनका काढ़ा बना गुड़ मिलाकर पीने से वातपित्तज्वर का शमन होता है।

कटेरी, खिरेंटी, रास्ना, त्रायमाण तथा लाल कचनार। इनका क्वाथ वात-पित्तज्वर को नष्ट कर देता है। अथवा गुरुच, पित्तपापड़ा, मोथा, चिरायता और सोंठ—इनके द्वारा सिद्ध पंचभद्र नामक औषध वात-पित्तज्वर में सेवनीय कहा गया है।

चिरायता, सोंठ, मोथा और गिलोय—इनका क्वाथ कफाधिक्य ज्वर में तथा पाठा, नेत्रवाला, खस या कमलगट्टायुक्त क्वाथ पित्ताधिक्य ज्वर में प्रयोज्य है। इन अवलेहिका का प्रयोग ऊर्ध्वगामी रोग में भोजनोपरांत तथा निम्नगामी रोगों में भोजन से पूर्व करना उचित है।

पाठा, रास्ना, गुरुच, सोंठ, मोथा, चिरायता और पोहकरमूल। इनका काढ़ा संधिशूल, ज्वर, श्वास, खाँसी, हिचकी तथा अरुचि में लाभकारी होता है।

कंटकारी, गुरुच, भारंगी, सोंठ, कूड़ा, जवासा, चिरायता, चंदन, मोथा, परवल और कुटकी। इनका उत्तम कषाय पीने से पित्तकफजन्य ज्वर, जलन, पिपासा, अरुचि, वमन, खाँसी एवं पार्श्वशूल (पसली का दर्द) नष्ट होता है।

गुरुच, नीम, धनिया, चंदन और पुष्करमूल—इन पंच पदार्थों से निर्मित इस गुडूच्यादि क्वाथ के पान करने से जठराग्नि का प्रज्वालन होता है। अतः यह समस्त प्रकार के ज्वर में प्रयोक्तव्य है। गिलोय, चंदन, मोथा, कमलगट्टा, पान, कूड़ा, बासाँ, जंगीहर्रै, सोंठ,खस, पाठा, धनिया, सुगन्धवाला और कुटकी। इनके कषाय को छोटी पीपर और शहद के साथ चाटने से कास, श्वास, ज्वर, वमन, पिपासा तथा जलन दूर होती है।

परवल, चंदन, मरोड़फली, पाठा, कुटकी और गिलोय। इन सब वस्तुओं

को पटोलादिगण कहते हैं। इसके द्वारा पित्तज-कफज ज्वर, वमन, दाह, ग्लानि और पिपासा दूर होती है।

पत्र-पुष्प के साथ निचोड़ा हुआ अड़ूसे का रस, क्षुद्रशर्करा (यावनालशर्करा) को एक साथ पीने से कफ-पित्तजन्य ज्वर, छिन्नपित्त तथा कामला रोग (पीलिया) नष्ट हो जाता है।

केवल एक कुटकी को नियमपूर्वक गरम जल के साथ सेवन करने पर कफ-पित्तज्वर का रोगी रोग से छुटकारा पा सकता है। अथवा परवल, नीम, त्रिफला, मुलेठी और वरुना का कषाय पान करना कफ-पित्तमिश्रित ज्वर में लाभकारी होता है।

गुरुच, इन्द्रयव, नीम, परवल, कुटकी, सोंठ, चंदन तथा मोथा। इन आठ वस्तुओं से निर्मित अमृताष्टक नामक क्वाथ पीने से पित्त-कफ का ज्वर छूट जाता है।

मिट्टी के खप्पर पर गरम की हुई बालुका को बिस्तर के अध:पुट में स्थापित बासी तक्रजल (मट्ठे का पानी) में बिखरने से उत्पन्न होने वाला स्वेद, वात, कफ, शिर:शूल तथा अंग-भंग आदि रोगों को दूर कर देता है।

उक्त प्रकार का बालुकास्वेद नाड़ीस्रोत की कठोरता हटाकर उसे आमाशय में पहुँचाकर वात-कफ के स्तंभ को नष्ट कर देता और ज्वर को दूर भगा देता है।

बिजौरा नीबू के फल का केशर तथा लाल सहिजन के फूल कालीमिर्च के साथ मुख में धारण करने पर वात, कफ, मुखरोग, मुख का सूखापन, जकड़न और अरुचि को दूर करता है।

पिप्पली, पिपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ। इन पाँच वस्तुओं का समूह क्षुधावर्धक तथा कफ-पित्तज्वर निवारक होता है।

अमलतास, करीर, कुटकी, मोथा और हरड़। इनका निर्मित कषाय आमाशयिक शूल, कफज-वातजज्वरनाशक, पाचक तथा दीप्तिकारक होता है।

पिप्पलियों से निकाला हुआ जल, चक्षु रोगनाशक तथा पाचक होता है जिसके फलस्वरूप यह वात-कफ के दोष, ज्वर एवं प्लीहा (बरवट) के रोगों का नाशक होता है।

मोथा, पित्तपापड़ा, जवासा, गिलोय और सोंठ। इन सबसे सिद्ध किया हुआ जल वात, कफ, भोजन में अनिच्छा, शारीरिक जलन, वमन, सूखापन और ज्वर को हटाता है।

कटेरी, गिलोय, सोंठ और पोहकरमूल। इनका निर्मित कषाय पान करने से कफ-वाताधिक्य ज्वर, श्वास, खाँसी, अरुचि, पार्श्वशूल के कारण उद्भूत ज्वर तथा त्रिदोषज ज्वर नष्ट होता है।

दशमूल (संरिवन, पिठवन, बेल, सोनापाठा, परवल, खम्भारी, अरणी, छोटी एवं बड़ी कटेरी और गोखरू) का रस छोटी पीपर के साथ पीने से कफ-वातज्वर, अरुचि, निद्रालुता, पसली का दर्द, श्वास, कास आदि रोग निर्मूल हो जाते हैं।

सन्निपातज्वर का उपचार

सर्वप्रथम सन्निपात ज्वर में कफ पर नियंत्रण करना अत्यन्त आवश्यक होता है। कफ को नियंत्रित कर लेने पर वात-पित्त पर विजय पाना सरल हो जाता है। वात, पित्त और कफ—इन तीनों के बलवान हो जाने या विलोम की अवस्था में आने पर उसे सन्निपात के नाम से जाना जाता है। गहरे जल में किसी डूबते हुए व्यक्ति के समान सन्निपातग्रस्त रोगी को अपनी बुद्धि के द्वारा आश्रय देकर उसे बाहर खींच लाना ही सुयोग्य चिकित्सक का कर्तव्य माना जाता है।

जिस समय रोगी की पिपासा शान्त होकर उसे नींद आने लगे और शरीर में हलकेपन की अनुभूति हो तो सन्निपातज्वर की निर्बलता समझ लेनी चाहिए। सान्निपातिक ज्वर में लंघन, बालुका स्वेदन, नस्य (नाक द्वारा सूँघने की वस्तु), कुल्ला, अवलेह तथा अंजनादि के प्रयोग करने चाहिए।

सन्निपातज्वर में तीन दिन, पाँच दिन या दश दिन अथवा जब तक आरोग्यता का अवलोकन न हो तब तक उसे लंघन कराना उचित है, क्योंकि लंघनों की सहनीय शक्ति ही दोषों की शक्ति का प्रतीक होता है। दोषों का दमन होने के पश्चात् लंघन-शक्ति में असमर्थता आ जाती है।

कफ और पित्त—ये दोनों ही धातु पदार्थ होने के फलस्वरूप दीर्घकालिक लंघन का सहन कर सकते हैं, किन्तु वायु पर नियंत्रण हो जाने के उपरांत उसे क्षणमात्र भी आमाशय सहन नहीं कर सकता। इसके लिए अदरक के रस में सेंधा नमक और त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च, पीपर) मिलाकर उसे गले तक रख लें और बार-बार उससे कुल्ला करते रहें।

इस प्रक्रिया के द्वारा रोगी के हृदय में जमा हुआ सूखा कफ धीरे-धीरे पसली, शिर और गले के द्वारा खिंचकर बाहर निकल आयगा और कफ की क्षीणता हो जायगी जिसके परिणामस्वरूप इसके सभी औपद्रविक लक्षण जैसे—ग्रंथिभेद, ज्वर, नींद का अभाव, श्वास, कास, गलरोग, मुख और नेत्रों की भीषणता, अचैन्यता तथा उत्क्लेश आदि शान्त हो जाते हैं।

रोगी के दोषों के बलाबल का विचार कर उससे दिन में एक से चार बार तक उक्त कथित रीति से कुल्ला करायें। सन्निपात ज्वरग्रस्त व्यक्तियों के लिए यह विधि एक परमौषधस्वरूप है।

बिजौरा नीबू, और अदरक के रस को हलका गरम कर उसमें त्रिलवण (सेंधा नमक, सोंचर नमक और काला नमक) मिलाकर सन्निपात रोगी को नाक से सूँघने के लिए दें। अथवा इसके अतिरिक्त किसी अन्य अनुभूत एवं तीक्ष्ण नस्य का भी प्रयोग कर सकते हैं। नस्य प्रयोग के द्वारा शुष्क कफ का भेदन होने से वह गीला हो जाता है। इसके अतिरिक्त इससे शिर, हृदय, कंठप्रदेश, मुख तथा पसली के रोगों का भी शमन हो जाता है।

चिरायता, कालाजीरक, कुटकी, वच और कायफल। इनके चूर्ण को रोगी के शरीर पर मलने से सान्निपातिकज्वर में निकलने वाला पसीना सूख जाता है। अथवा गोपीचंदन, लोध, कालाजीरा, चिरायता, कुटकी, वच, भूरिछड़ीला तथा पंचलवण (सेंधा नमक, साँभरनमक, खारा नमक, सौचर नमक और कचलोन) का सिद्ध गुंडन भी सान्निपातिक पसीने को रोकता है।

शिरीष के बीज, गोमूत्र, पिप्पली, कालीमरिच, सेंधानमक, लहसुन, मैनसिल तथा वच। इनसे सिद्ध किया हुआ अंजन मूर्च्छितावस्था में प्रयुक्त करने से रोगी में चेतनता आती है।

कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासिंगी, सोंठ, कालीमरिच, पीपर, भूरिछड़ीला। इन सबका महीन चूर्ण बनाकर शहद के साथ चाटने से सन्निपात में लाभ होता है।

इस अवलेह के द्वारा कठिनतम सन्निपात का विनाश होने के साथ ही हिचकी, श्वास, खाँसी तथा गला रूँधने में भी लाभ मिलता है। उक्त कथित चूर्ण का प्रयोग कफाधिक्य सन्निपात में अदरख के रस के साथ करना लाभप्रद सिद्ध होता है।

हलदी, भद्रमुस्तक (विशेष प्रकार का नागरमोथा), त्रिफला, कटुकी, नीम, परवल, देवदारु और कटेरी।

उक्त वस्तुओं का कषाय निर्मित कर पीने से सन्निपात दूर होता है। इसके साथ ही अविपाक, पसीना निकलना, खाँसी, सूखापन, अरुचि आदि ज्वरावस्था में पाये जाने पर उन औपद्रविक लक्षणों को भी उसी प्रकार नष्ट कर डालता है जिस प्रकार वज्राघात से पर्वतों के पंख नष्ट हो जाते हैं।

सभी सान्निपातिक ज्वरों में मधु का प्रयोग अनुचित कहा गया है, क्योंकि यह शीतवर्धक होता है। इसी प्रकार दुग्धप्रयोग की भी मनाही की गयी है। त्रिदोषज ज्वर में बलाबल के अनुसार उसके समतुल्य क्रियाओं का प्रयोग अच्छा होता है। इसका कारण यह है कि भिन्न रूपवाले औषधों के प्रयोग से दोषवर्धन होता है।

सन्निपात ज्वर की आरंभिक अवस्था में लंघनोपरांत रोगी को कवलग्रह से अच्छा लाभ मिलता है। अतः इसमें सेंधा नमक के साथ लावा का पीसा हुआ सत्तू

हितकर पथ्य होता है। किसी-किसी के मत से जल में सिद्ध लावा का सत्तू भी शीतल होने के कारण पित्त में हितकारक तथा दाहज्वरनाशक होता है।

सन्निपात में पञ्चमुष्टिकयूषपथ्य महत्त्व

सन्निपात में त्रिकंटक (बृहती, अग्निदमनी, जवासा) अथवा केवल गोखरू के साथ पकाया हुआ पंचमुष्टिकयूष ही दोषों के शमन होने तक पर्याप्त लाभकारी होता है।

पंचकोल (छोटी पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) तथा कुलथी, मूँग और पुष्करमूल—इनमें से प्रत्येक वस्तुओं को एक-एक मुट्ठी-भर लेकर चूर्ण कर लें। पुनः इन्हें अठगुने जल में पका लेने पर पंचमुष्टिक यूष तैयार हो जाता है। इस यूष को वात-पित्त की अधिकता वाले सन्निपात, गुल्म, श्वास-कास तथा क्षयज्वर (तपेदिक) में प्रयोग करने से उत्तम फल मिलता है।

यहाँ उक्त पंचकोल में सोंठ की मात्रा एक मुट्ठी-भर, शेष अन्य चारों की मात्रा एक मुट्ठी-भर में होनी चाहिए।

द्वात्रिंशाङ्गक्वाथ का योग और उपयोग

द्वात्रिंशांग क्वाथ का निर्माण करने के लिए निम्नलिखित बत्तीस वस्तुएँ प्रयुक्त की जाती हैं जो इस प्रकार से हैं—

कायफल, मोथा, वचा, पाठा, पुष्करमूल, कालाजीरक, पित्तपापड़ा, देवदारु, हरड़, काकड़ासिंगी, बहेड़ा, चिरायता, सोंठ, भारंगी, कूड़ा, कटुकी, कचूर, धनिया, रोहिस नामक तृण, दशमूल, अदरख और हींग।

उक्त प्रकार का द्वात्रिंशाङ्ग क्वाथ गलगण्ड, गण्डमाला, स्वरभंग, कफ, कर्णमूल, सन्निपात, ग्रंथिरोग तथा कण्ठरोग का शमन करने वाला होता है।

चतुर्भद्रकपञ्चमूल का लाभ और योग

लघुपंचमूल, किरातादिगण (चिरायता, मोथा, गुरुच और सोंठ)। इनका क्वाथ पित्त की अधिकता वाले सन्निपात में सौंफ के साथ तथा कफाधिक्य सन्निपात ज्वर में पीपर के साथ सेवन करना प्रशस्त माना जाता है अथवा कफ की अधिकता में काला नमक के साथ भी प्रयुक्त हो सकता है।

सोंठ, अतीस और मोथा—इन तीनों को एक-एक कर्ष की मात्रा में लेकर गुरुच मिला देने पर चातुर्भद्रिक क्वाथ कहा जाता है। बिल्व (बेल), सोनापाठा, खम्भारी, लाल रंग का लोध और अगेयु वृक्ष मिलाकर पकाया हुआ काढ़ा बृहत् पंचमूल नाम से जाना जाता है। यह अग्निदीपक और कफ-वात का नाश करने वाला होता है।

पञ्चमूल का योग एवं लाभ

दशमूल की दश वस्तुओं में से सरिवन, पिठवन, बृहती कंटकारी और गोखरू—इन पंचमूलों को शुष्क गोबर के साथ साधित करने पर यह वात-पित्तहारक तथा वीर्यपुष्टिकारक हो जाता है।

अब दशमूल की शेष बची हुई पाँच वस्तुओं को उक्त पंचमूल में समाविष्ट कर देने पर सन्निपातज ज्वर, श्वास, कास, तन्द्रा (आलस्य) तथा पार्श्वशूल में लाभकारी होता है।

इसके अतिरिक्त इसे नियमित रूप से पीपलचूर्ण के साथ सेवन करने पर कंठग्रह, हृदयग्रह आदि समस्त उपद्रवों का यह शमन कर देता है। एरण्ड (रेंड़, अण्डी) के रस में पिप्पली मिलाकर इसका प्रयोग एकोत्तरवृद्धि (एक-एक की संख्या प्रतिदिन बढ़ाना) क्रमानुसार तीन, पाँच, सात या दश दिनों तक करने पर इससे खाँसी, श्वास, ज्वर, उदर का गर, बवासीर तथ मन्दाग्नि रोग का नाश हो जाता है।

चतुर्दशाङ्ग का योग एवं लाभ

पित्तज्वर, वात-पित्त के औपद्रविक लक्षण तथा सन्निपात के दोषशमनार्थ दशमूल के साथ किरातादिगण को निशोध के साथ प्रयोग करना आवश्यक होता है।

अष्टदशाङ्ग का योग एवं लाभ

दशमूल, कचूर, काकड़ासिंगी, पुष्करमूल, भारंगी, दुरालभा, कूड़ा के बीज, परवल और कटुकी। इन अट्ठारह वस्तुओं का मिश्रित रस अष्टादशांग कहलाता है। इसका रस त्रिदोषज ज्वर, श्वास, कास, हृदयग्रह, पार्श्वशूल, हिचकी तथा वमन को दूर करने वाला होता है।

चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ, मोथा, कूड़ा के बीज, धनिया, नागकेशर और छोटी पीपर। इनका कषाय पीने से आलस्य, प्रलाप (व्यर्थ की बकवास), खाँसी, भोजन में अनिच्छा, जलन, मूर्छा तथा श्वासादि लक्षणों वाले ज्वर शीघ्र ही दूर हो जाते हैं।

मुस्ताद्योगण का योग एवं लाभ

मोथा, पित्तपापड़ा, खस (एक प्रकार का सुगंधित तृण), देवदारु, सोंठ, त्रिफला, जवासा, नील, कबीला, निशोथ, चिरायता, पाठा, वच, कटुकी, मुलेठी और पिपरामूल का समायोजन ही मुस्तादिगण कहलाता है।

यद्यपि अष्टादशांग रस तथा मुस्तादिगण सन्निपातनाशक होते हैं, किन्तु आयुर्वेदज्ञों का मानना है कि ये औषधियाँ प्रायः पित्ताधिक्य वाले सन्निपात में ही अपना गुण प्रकट करती हैं।

शठ्यादि द्रव्य योग के लाभ

कचूर, पोहकरमूल, गुरुच, सोंठ, परवल, त्रायमाण, दुरालभा, पिप्पली, कटेहरी, पित्तपापड़ा, रास्ना, हरीतकी (हरड़), कटुकी, देवदारु और भारंगी—इन्हें सम परिमाण में सिद्ध किया हुआ।

बृहत् शठ्यादिगण सन्निपात को नष्ट करने के साथ-ही-साथ खाँसी, श्वास, दिन में नींद आना, रात्रि में जागना, मुख का सूखना तथा आंगिक जलन में भी लाभकारी होता है।

योगराज रस के योग एवं लाभ

सोंठ, धनिया, भारंगी, पोहकरमूल, चंदन, परवल, नीम, त्रिफला, मुलेठी, खिरेंटी, खांड़, कुटकी, मोथा, गजपिप्पली, गेंठी या अमलतास, चिरायता, गुरुच, दशमूल, कटेरी। इनके सम्मिश्रण से निर्मित क्वाथ द्वारा सन्निपातज्वर नष्ट होता है। इसके द्वारा सन्निपात उत्पन्न करने वाली निकटतम मृत्यु पर भी विजय-लाभ किया जा सकता है।

कारव्यादि द्रव्य योग के लाभ

कारवल्ली, पुष्करमूल, अण्डी, त्रायमाण, वासा (अडूसा नामक पौधा), गिलोय, दशमूल, कचूर, काकड़ासिंगी, तेजपात, भारंगी, पुनर्नवा (गदहपूरना नामक घास)। इन सब चीजों को समान भाग में लेकर काढ़ा बना पीने से शोथरोग (सूजन) तथा अत्यन्त प्रबल सन्निपातज्वर निर्मूल हो जाता है।

सान्निपातिक ज्वर में पसीने की उत्पत्ति होने पर कुलथी का चूर्ण बिखेरने से उत्तम फल मिलता है, क्योंकि प्रान्तर भागों में निरन्तर गीला पसीना निकलते रहने से रोगी की मृत्यु अवश्यंभावी होती है। जिस शीतग्रस्त सन्निपात रोगी के ललाट से अतिशीतल स्वेद का नि:सरण हो अथवा कण्ठोत्पन्न पसीना वक्ष:स्थल की ओर अग्रसर हो रहा हो तो ऐसा रोगी शीघ्र ही काल के गाल में समा जाता है।

निशोथ, इन्द्रायण (इनारुन), त्रिफला, कुटकी और अमलतास। इन सबके साथ पकाया हुआ सर्वज्वरनाशक तथा दोषभेदक क्वाथ जवाखार के साथ पीना लाभकारी सिद्ध होता है। इस क्वाथ को पित्ताधिक्य सन्निपात में दश दिन, कफाधिक्य में बारह दिन तथा वाताधिक्य में सात दिनों तक पीने से त्रिदोष को नष्ट कर दूषित रक्त, मज्जादि धातुओं तथा मल को परिपक्व कर देता है।

निगृहीत व्यक्ति का परित्याग करने या उसके वधार्थ सन्निपात का सीमा-काल ७/९/११/१४/१८ या २२ दिनों का माना जाता है।

सन्निपात में निषेध

जो वैद्य सन्निपात के आवेश में कंपित एवं प्रलपित रोगी को मांस-भक्षण कराता है वह वैद्य कहलाने का अधिकारी नहीं होता। सन्निपातज्वर में जलनयुक्त रोगी को शीतल जल से सिंचित करने वाला भी वैद्य नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसी अवस्था में ज्वरातुर किस प्रकार जीवन धारण कर सकता है?।

सन्निपातरूपी गहरे सागर में निमज्जित हो रहे रोगी को बाहर निकालने वाला चिकित्सक ही धर्मात्मा और पूजनीय होता है। सन्निपात की चिकित्सा करना मृत्यु के साथ युद्ध करने के समान होता है। अत: सन्निपात पर विजय पाने वाला ही समस्त रोगों को पराजित करने में सफल होता है।

सन्निपात उपचार कर्ता का कर्तव्य

सन्निपात रोगी में औषध-प्रयोग की निष्फलता से निराश हुए चिकित्सक को दाहाकुल और पिपासु को शीतलजल का प्रयोग कदापि नहीं कराना चाहिए। सन्निपात ज्वरोपरांत कर्णमूल में अत्यन्त दुर्दमनीय सूजन उत्पन्न हो जाती है जिसकी असहनीय पीड़ा से कोई विरला रोगी ही बच पाता है।

इसके लिए कलिहारी का सेवन या घृतपान कराना उचित होता है। तत्पश्चात् वात-पित्तनाशक लेप और तत्क्षण साधित कवलग्रहों का प्रयोग करना चाहिए। सोंठ, देवदारु, रास्ना और चित्रक—इन्हें पीसकर लेप लगाने से कानों की सूजन दूर होती है।

कुलथी, कायफल, सोंठ तथा कारवल्ली। इनका चूर्ण जटामांसी के साथ गरमाकर कुछ उष्ण रहने पर बार-बार कर्णमूल में लेपित करना आवश्यक होता है।

आभिचारिक प्रयोगों तथा गुरुजनों के शाप से शापित होने के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले ज्वरों को हवनादि, देवार्चन, शुभ कर्मों के द्वारा तथा औत्पातिक ग्रहों में दान, स्वस्तिवाचन एवं अतिथि-सत्कार से दबाना चाहिए। देशकाल के विचारक प्रबुद्ध चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि वह वानस्पतिक गंध तथा विषोत्पन्न ज्वरों को पित्तोपयोगी एवं विषोपयोगी कषायों का सेवन कराकर विजित करे।

क्रोधोत्पन्न ज्वर मनोरथ की सिद्धि तथा कामज ज्वर कामोपभोग से दूर होते हैं। अथवा काम, क्रोध या भय से उत्पन्न होने वाले ज्वर सान्त्वना देने, इच्छित वस्तु को पाने तथा मन को हर्षोल्लसित करने से नष्ट होते हैं। भूताभिषंग द्वारा प्रादुर्भूत ज्वर को भूतविद्या में कथित बंधन, आवेशन तथा ताड़न आदि प्रयोगों द्वारा विजित करें। किन्तु इस संदर्भ में यह स्मरण रहे कि वातादि दोषों के अभाव में ज्वरोत्पत्ति नहीं हो सकती।

माहेश्वरधूप का निर्माण व लाभ

सरलवृक्ष का गोंद, देवदारु, हींग, मोथा, कटुक (एक प्रकार का सुगंधित तृण), कटुकी, सर्षप (सरसों), नीम के पत्ते, मदनफल, दोनों बृहती, साँप की केंचुल, बिनौला, यव, बहेड़ा या धान की भूसी, गाय के गिरे हुए सींग, खुर और बाल, मोरपंख, बिल्ली का मल।

बकरी के रोम तथा घृत—इन सब पदार्थों को गौ के बछड़े के मूत्र के साथ मिलाकर सिद्ध करने से माहेश्वरधूप तैयार होता है। इस धूप की अग्नि में धूनी देने पर सभी प्रकार के भूत-ग्रहादिकों की बाधा दूर हो जाती है।

जीर्णज्वर का उपचार

कटेरी, सोंठ, गुरुच—इनके क्वाथ में छोटी पीपर मिलाकर जीर्णज्वर, श्वास, कास, शूल, जठराग्निमंदता और नासिका रोगों में पान करना हितकारी होता है (इतिनिदिग्धिकादि:)। कास, श्वास, अपच, अरुचि, पांडुरोग कृमिजन्य औपद्रविक रोगों, जीर्णज्वर तथा मन्दाग्नि में गुड़-पिप्पली का सेवन लाभप्रद सिद्ध होता है।

गुरुच के काढ़ा में पीपर का चूर्ण मिलाकर पान करने या पंचमूलीघृत का सेवन करने से पुराना बुखार और कफ का उन्मूलन होता है। काली अगरु का जुलाब शिर के भारीपन और शूल का नाशक होता है। इससे इंद्रियों की सक्रियता तथा जीर्णज्वर में रुचि उत्पन्न होती है। अत: यह प्रयोग करने योग्य है।

निरन्तर बना रहने वाला विषमज्वर तथा दीर्घकालिक जीर्णज्वर में ज्वरहारक पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिए। चौलाई, वास्तूक (बथुआ), छोटी मूली, पित्तपापड़ा, गिलोय और परवल का पत्ता—इनका शाक बनाकर खाना जीर्णज्वर में लाभकारी होता है।

सुविज्ञ चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि वह रोगी को पुत्री (शाकविशेष) के साथ तुम्बी आदि लाभकारी शाकों का भी सेवन कराये। ज्वर से निर्बल होने वाले व्यक्ति में वमन, विरेचन आदि कर्म नहीं करने चाहिए, बल्कि दुग्ध या निरूह कर्म के द्वारा संचित मलों को निकालना ही उचित होता हैं। भोजन में अरुचि और शारीरिक निर्बलता के फलस्वरूप मल-मूत्र में विवर्णता रहती है।

ज्वरशांति के पश्चात् उसका पुनरावर्तन रोकने के उद्देश्य से रोगी का शोधन करते रहना आवश्यक होता है। ज्वर के जीर्ण और कफ के क्षीण होने की दशा में दूध अमृततुल्य गुणकारी होता है, किन्तु वही दूध ज्वर की तरुणावस्था में विष बनकर रोगी की मृत्यु को आमंत्रित करता है। पिप्पली-चूर्ण मिलाकर दुग्धपान करने से कफ का उन्मूलन होता है।

लघुपंचमूल द्वारा निर्मित दुग्धपान करने वाला व्यक्ति कास, श्वास, शिरःशूल, पार्श्वशूल तथा नासिका रोग से विमुक्त हो जाताहै। गोखरू, वच, कटेरी, गुड़ और मोथा—इनसे पाचित रसदुग्ध शोषनाशक, ज्वरापहारक तथा मल-मूत्रावरोध निवारक कहा गया है।

जीरकपाक के निर्माण हेतु अठगुना जीरा और जीरा से चौगुना जल डालकर आग पर पकावें। जब पकाने पर केवल जीरा ही शेष रह जाय तब जीरकपाक को पककर तैयार समझना चाहिए। उक्त जीरकपाक जीर्णज्वर में वज्रप्रहार के समतुल्य होता है तथा श्वास, खाँसी और मन्दाग्नि को भी दूर करता है।

ज्वररहित होने वाले दुर्बल तथा मिथ्याहारी व्यक्तियों में ज्वर का स्वल्पांश रहने से वायु की प्रेरणावश वे पुनः पूर्ववत् आक्रमण कर देते हैं।

ऐसे दोष प्रतिदिन-रात एक स्थान से दूसरे स्थान को आच्छादित करते हुए परिव्याप्त रहते हैं। ऐसी अवस्था में सुधार लाने के लिए निम्न प्रकार के पंचकषायों के प्रयोग विभिन्न रीतियों से करने चाहिए—

१. इन्द्रयव, परवल के पत्ते और कटुकी, २. परवल, सरिवन, मोथा, पाठा और कटुकी, ३. नीम, परवल, त्रिफला, दाख, मोथा तथा कूड़ा, ४. चिरायता, गिलोय, चंदन तथा सोंठ एवं ५. गिलोय, आँवला और मोथा।

उक्त प्रकार का कषाय ऐकाहिक (एक दिन के अंतर पर आने वाला), द्वयाहिक (दो दिन के अन्तर पर), त्र्याहिक (तीन दिनों के अन्तराल से) और चातुर्थिक (चार दिनों के अन्तर पर) ज्वर, सम या वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज तथा त्रैदोषिक (सान्निपातिक)—इन पाँच प्रकार के ज्वरों का दमन करके रोग से कृशांग मनुष्यों के अंग-प्रत्यंगों में बलवर्धन करता है। गुड़मिश्रित कालीजीरक के सेवन से विषमज्वर (टायफायड) का नाश होता है। इससे मन्दाग्नि दूर होकर वातज रोगों का भी शमन होता है।

विषमज्वर से आक्रान्त व्यक्ति को गुड़मिश्रित त्रिफला का क्वाथ अथवा सम परिमाणिक गिलोय, मोथा और आँवला का निर्मित कषाय पान करना लाभकारी होता है। अथवा मोथा, आँवला, गुरुच, सोंठ और कटेरी—इनका काढ़ा बनाकर पीने या छोटी पीपर के चूर्ण को मधु के साथ चाटने से विषमज्वर का अन्त हो जाता है।

परवल, सारिवा (सरिवन), मोथा और कूड़ा। इनका क्वाथ पीने से दूसरे दिन आने वाला ज्वर शीघ्र ही उतर जाता है।

उक्त प्रकार के ज्वराक्रांत रोगी को प्रतिदिन प्रातःकाल घृत के साथ लहसुन अथवा दूध के साथ पिप्पली तथा अंडी के रस का पान करना चाहिए। अथवा प्रथम

बार पाँच पिप्पली खाकर दुग्धपान करें। तदनन्तर प्रतिदिन एक-एक पिप्पली की संख्या बढ़ाते हुए एक सौ पिप्पली तक प्रयोग करें। सौ की संख्या पूरी हो जाने पर उसे क्रमशः घटाकर पाँच पर ले आवें। इस पिप्पली सेवनकाल में दूध अथवा दुग्धनिर्मित पदार्थ ही पथ्य के रूप में लेने चाहिए।

पिप्पली और एरण्ड (रेंड़) तैल के सेवन से वात,रक्तपित्त, श्वास, पाण्डुरोग (पीलिया), बवासीर, गुल्म तथा शोथरोग का नाश होता है। इसके सेवन से विषमज्वर में भी बल मिलता है।

एकान्तर-चातुर्थिकज्वर का उपचार

एक दिन के अंतराल पर पुनरावर्तित होने वाला ज्वर त्र्याहिक तथा दो दिनों के अन्तर पर आने वाला ज्वर चातुर्थिक कहलाता है। त्र्याहिक और चातुर्थिक ज्वर में साधारण प्रयोगों से काम नहीं चलता। इसे विशिष्ट चिकित्सा के द्वारा ही दबाया जा सकता है।

सोंठ, गुरुच, मोथा, चन्दन, खस और धनिया। इनके संमिश्रण से पाचित क्वाथ शक्कर और मधु के साथ पीने पर त्र्याहिक ज्वर जाता रहता है। रविवार के दिन अपामार्ग (चिचिड़ा) की जड़ को सात लाल धागों में लपेटकर कमर में बाँध लेने से त्र्याहिक ज्वर भाग जाता है।

गंगा के उत्तरी छोर पर एक निःसन्तान तपस्वी मृत हो गया था। उसके लिए तिलांजलि देने से ऐकाहिक ज्वर उतर जाता है। 'अरे ज्वर! अंग, बंग, कलिंग, सौराष्ट्र, मगध तथा वाराणसी में जो वार्ता हुई थी,उसे क्या तू भूल गया?'—इस मंत्र का उच्चारण करते हुए रोगी के हाथ में पीपल वृक्ष के पत्ते को समर्पित कर देना चाहिए।

सूर्यरश्मि के सदृश, अरुण कान्ति सम्पन्न वानर के दिव्य मुख का स्मरण करने मात्र से ही कठिन से कठिनतम ऐकाहिक ज्वर छूट जाता है। वासा (अड़ूसा), आँवला, सरिवन, दारुहलदी, हरड़ और सोंठ। इन सब वस्तुओं का काढ़ा शहद और शक्कर मिला कर पीने से चातुर्थिक ज्वर का निवारण होता है।

अगस्ति (हथिया) वृक्ष के पत्तों से सिद्ध किया हुआ नस्य लेने से अतिप्रचण्ड चातुर्थिक ज्वर निर्मूल हो जाता है। अथवा अतिप्राचीन घी के साथ हींग का सेवन करना भी उक्त फल दिलाता है। यदि विषमज्वर से ग्रस्त व्यक्ति नित्य लहसुन के छिलकों का तिलतैल के साथ सेवन करे तो वह निश्चय ही ज्वर को मार भगाता है तथा सभी वातरोगों से छूट जाता है।

गूगल, नीम के पत्ते, वचा, कूड़ा, हरड़, सरसों, यव और घी—इनका धूप

देना भी विषमज्वर का उन्मूलन कर देता है। अथवा नागरमोथा, गन्धेज तृण, वचा, सरलवृक्ष की राल, नीम, अर्क, अगरु, देवदारु और बिलाव का विष्ठा। इनका धूप देने से ज्वर से कम्पायमान व्यक्ति भी स्वस्थ हो जाता है। भूतावेशित ज्वरों में प्राय: अपराजिता (लशुनिया नामक घास) का प्रयोग करना लाभकारी होता है।

बकरी की खाल और बाल, वचा, कूड़ा, गुग्गुलु, निम्बपत्र—इनमें मधु मिलाकर धूपन करने से ज्वर नष्ट हो जाता है।

उक्त ज्वर शांत मंत्र

निम्नलिखित मंत्रों को भोजपत्र पर लिखकर विषमज्वराक्रांत व्यक्ति की दाहिनी भुजा में बाँध देने से ज्वरोन्मूलन होता है। मंत्र इस प्रकार है—

ॐ ठः ठः ठः सः सः हूं हः—इत्येतानि मन्त्रपदानिभूर्जपत्रे लिखित्वा बन्धनीयानि विषमार्तस्य दक्षिणभुजे ।

उक्त मंत्र के अतिरिक्त रुग्ण व्यक्ति की भुजा में निम्न मंत्र भी लिखकर बाँध देना उचित है। मंत्र इस प्रकार है—

ॐ हूँ हूँ हूँ विकृतानन! अमुकस्य ऐकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकं ज्वरं नाशय नाशय इति च पत्रे लिखित्वा बन्धनीयम् ।

सोमदेव के अनुचरों सहित तथा मातृमण्डल के साथ शिवजी के अर्चन-पूजन से भी मानव विषमज्वर से रहित हो जाता है। अथवा त्रैलोक्य के स्वामी सहस्रों शिरवाले विष्णुदेव की पूजा उनके सहस्र नामों की स्तुति द्वारा किये जाने पर मनुष्य समस्त प्रकार के ज्वरों से त्राण पा लेता है।

भूमिजयंती, खिरेंटी (सहदेई नामक तृणविशेष) अथवा चौलाई की जड़ को शिर पर बाँधने से ज्वर नहीं रह जाता। अथवा हरड़ का सेवन मधु के साथ करने पर ज्वर छूट जाता है। इसके साथ भोजन में सोंठ का भी उपयोग करणीय होता है।

ज्वरकाल में ज्वर की प्रबलता तथा कालचिन्तन से व्यथित व्यक्ति को अभीष्ट वचनों द्वारा उसकी मानसिकता को दूर करने चाहिए।

पिप्पल्याद्य घृत के लाभ

ज्वर के समय कफ की क्षीणता में बारह रात्रि तक निम्नलिखित घृत का पान रोगी को कराना चाहिए जो इस प्रकार से है—छोटी पीपर, चंदन, मोथा, खस, कटुकी, इन्द्रयव, शालपर्णी (सरिवन), आँवला, कालीसर, अतीस, काकोल, दाख, कर्करा, बेल, त्रायमाण और कटेरी।

इनके मिश्रण से पाचित घृत का सेवन करने से सभी प्रकार के ज्वरों का शीघ्र ही निवारण हो जाता है।

उक्त प्रकार का घृत ज्वरों के अतिरिक्त क्षय, खाँसी, शिरःशूल, पार्श्वशूल, अरुचि, समस्त शरीरांगों में जलन तथा विषमज्वरादि में दमनात्मक रूप से साबित होता है। घृतनिर्माण में औषधिपिष्ट (कल्क) से चौगुना स्नेह, स्नेह से चौगुना क्वाथ और क्वाथ से चौगुना जल का परिमाण रखा जाता है।

घृतनिर्माण की मंद विधि में चौगुना, तीव्र विधि में अठगुना तथा तीक्ष्ण से तीक्ष्णतम विधि में सोलह गुना जल का प्रयोग उचित होता है।

दशमूली घृत के लाभ

दशमूली के रस में घी, दूध, क्षार (जवाखार, सज्जीखार, सुहागा) और पिप्पली आदि पंचकोल की वस्तुएँ मिलाकर पाक कर लें। इस घृत से ज्वर, खाँसी और मन्दाग्नि रोग दूर होते हैं। इसके अतिरिक्त इससे वात, पित्त, कफ, प्लीहा (तिल्ली), पाण्डुरोगादि नष्ट होकर अंग-प्रत्यङ्गों में निखार आकर बलवर्धन होता है।

पुनः उक्त रोग शान्ति के मन्त्र

निम्नलिखित मंत्र को भोजपत्र या काँसे के पात्र पर लिखकर रोगी को दिखलाना चाहिए। मंत्र इस प्रकार से है—

"ॐ नारदग्रामान्नारदपत्तनान्नारदो भिक्षुर्नारदगुहायां सर्वज्वरान् समादि-शति, वातिकपैत्तिकश्लैष्मिकसान्निपातिकैकाहिकद्व्याहिकत्र्याहिकचातुर्थिक-ज्वरान्समादिशति। लेखदर्शनाद् भवद्भिरमुकशरीरे क्षणमपि न स्थातव्यम् ॐ सः ॐ ठः स्वविषये स्वाहा–इत्येतदूं भूर्ज्जपत्रं कांस्यपात्रे वा लिखित्वा दर्शयेत्।

सफेद कनेर की जड़ हाथ में बाँध देने से ऐकाहिक, चातुर्थिक आदि ज्वर नहीं आते। अथवा छुछुन्दरी का चूर्ण, शिवार्पित पदार्थ, घुँघची की जड़। इनके साथ भैंस का मक्खन मिलाकर धूप देने से ऐकाहिक, द्वयाहिक, त्र्याहिक, चातुर्थिक, पाक्षिक तथा अविराम ज्वर का नाश हो जाता है।

घी, तैल और गुड़ आदि पदार्थों को लगातार कई दिनों तक सिद्ध करने का विधान है, क्योंकि दीर्घकालिक घी, तैल या गुड़ में सामान्य की अपेक्षा अधिक गुण पाया जाता है।

कल्याणघृत निर्माण एवं उपयोग

इन्द्रायण, त्रिफला, कौन्ती (रेणुका—गंधद्रव्य विशेष), देवदारु, एलुवा (मुसव्वर), शालपर्णी (सरिवन), तगरमूल, दोनों हलदी (हलदी, दारुहलदी), दोनों सारिवा (गौरी आसाऊ, करिया वासाऊ), प्रियंगु, नीलपद्म, इलायची, मंजीठ, दन्ती, अनार, केशर, वायविडंग (भाभीरंग), पृश्निपर्णी (पिठवन), कूड़ा, चंदन, पद्माख (कमलगट्टा), तालीसपत्र, कंटकारी तथा मालती का नूतन पुष्प—इन अट्ठाइस

वस्तुओं को एक साथ पीसकर सिद्ध किये हुए कल्क से चौगुना जल मिलाकर एक प्रस्थ घी के साथ पाक करने पर कल्याणघृत तैयार हो जाता है। यह घृत ऐसे व्यक्तियों के लिए लाभकारी होता है जिन्हें मृगी, ज्वर, खाँसी, शोष (सूखापन), क्षय, अग्निमांद्य, पीनस (नाक से रक्त प्रवाह का होना, नकसीर), तृतीयक-चातुर्थिक ज्वर, वमन, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र (रुक-रुककर कष्टपूर्वक पेशाब का आना), विसर्प (कुष्ठ का एक प्रकार), दाद, खाज-खुजली, पाण्डुरोग, उन्माद, विष तथा प्रमेह (धातुरोग) आदि रोग हो। इसके अतिरिक्त भूतज्वर से व्यथित हृदय वाले तथा वन्ध्या नारियों के लिए भी यह परमोपयोगी सिद्ध होता है। यह आयु और बलवर्धक घी सभी प्रकार से प्रशंसनीय होता है।

यह कल्याणघृत दु:ख-दारिद्रयनिवारक, पापनाशक, राक्षसों का हन्ता तथा समस्त ग्रह-बाधाओं को दूर भगाने वाला होता है।

बृहत् कल्याणघृत निर्माण एवं उपयोग

पूर्वोल्लिखित २८ पदार्थों में से प्रथम २१ पदार्थों को जल में पकाने से निकलने वाले रस में एक बार की ब्याई हुई गाय का चौगुना दूध डालकर पका लें। तदनन्तर उसमें २-२ माशा की मात्रा में काकोली, केंवाँच, ऋद्धिनाम्नी औषधि, मेदा तथा महामेदा—इनका कल्क मिलाकर पुन: पकाने से बृहत् कल्याण घृत तैयार होता है। यह वीर्यवर्धक तथा सन्निपात उन्मूलक है।

सज्जीखार, नागरमोथा, कूड़ा, मरोड़फली, लाख (लाक्षा), दारुहलदी और मंजीठ। इनके साथ छहगुने छौछ में सिद्ध किये गये तैल को पकाये। पक जाने पर उतार लें। इसके मालिश करने से शीत और दाह का विनाश होता है।

लाक्षादितैल से भूतादि बाधा नाश

लाक्षा का रस और तैल समान भाग में लेकर इसमें चौगुना जल तथा रास्ना, चंदन, राई, मोथा, असगन्ध, हलदी, सौंफ, शतावरी, देवदारु, मुलेठी, मरोड़फली, मुष्कदाना और रेणुका—इनका कल्क बना पकाया गया तैल बालकों की भूत-प्रेतादिक बाधा को दूर कर ज्वर को नष्ट करता है। शरीर पर इसके मालिश से बल की वृद्धि होती है।

पाक तैल के लक्षण

जब स्नेह कल्क अंगुलियों से आवर्तित करने पर भी अनावर्तित के समान जान पड़े तथा आग में डालने पर शब्दित न हो तो उस तैल को परिपक्व हुआ समझना चाहिए। जब शब्द का निकलना और झाग का उठना बन्द हो जाय तथा रसादिकों की गंध एवं उनके रंग दूसरे रूप में परिवर्तित हो जाये तो तैलपाक की पूर्णता समझनी चाहिए।

इसी प्रकार कुशल चिकित्सक को घृतपाक की भी पहचान करनी चाहिए। तैलपाक में केवल झाग अधिक उठता है, किन्तु अन्य लक्षणों में समानता रहती है।

ज्वर से मुक्त होने के लक्षण

ज्वरमुक्त होने के निम्न लक्षण कहे गये हैं, जैसे—शरीर का हलकापन, मानसिक ग्लानि, मोह तथा ताप का मिट जाना, मुख में पाक, इंद्रियों में हर्ष, किसी प्रकार की पीड़ा की अनुभवहीनता, पसीने का नि:सरण न होना, मन में अन्न के प्रति रुचि उत्पन्न होना तथा शिर में खुजली की अनुभूति होना। ज्वरमुक्त व्यक्ति को अपनी पूर्वावस्था न आने तक उसे व्यायाम, मैथुन, स्नान, अपथ्य आहार का परित्याग कर देना उचित होता है।

ज्वरातिसार का उपचार

प्रत्येक चिकित्सक के लिए रोग निदानानुसर चिकित्सा कार्य करना अनिवार्य होता है,किन्तु निदान द्वारा ज्वरातिसार का निर्णयात्मक स्वरूप प्रत्यक्ष नहीं हो पाता।

अत: ज्वरातिसार की गणना विषम रोगों में की जाती है। ज्वर और अतिसार की चिकित्सा विभिन्न रीतियों से की जाती है, किन्तु उन दोनों का पारस्परिक संबंध होने पर उनकी चिकित्सा विभिन्न रीतियों से नहीं की जानी चाहिए अन्यथा वे उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होते जाते हैं।

अर्थात् केवल ज्वर की चिकित्सा- मात्र से अतिसार की वृद्धि तथा अतिसार की चिकित्सामात्र से ज्वर की वृद्धि होती रहती है।

ज्वर तथा अतिसार की चिकित्सा विशिष्ट प्रयोगों द्वारा ही की जानी चाहिए। ज्वरातिसार में चना आदि रूखी वस्तु, तक्र (मट्ठा) आदि अम्ल वस्तु, अरारोट आदि कोमल वस्तु तथा जवाखार आदि क्षार पदार्थों का प्रयोग करना उचित होता है।

ज्वर तथा अतिसार—इन दोनों रोगों में ऋषियों ने प्रथमतया लंघन कराने का आदेश दिया है। तदनन्तर वक्ष्यमाण उत्पलादि षट् पदार्थों से साधित पेया, लाजा एवं मण्डादि का पथ्य देना श्रेयस्कर होता है। इसके लिए नीलकमल, पृश्निपर्णी (पिठवन), बला (खिरेंटी), बेल, धनिया और सोंठ—इनके द्वारा सिद्ध पेया, छाँछ आदि अम्ल पदार्थों का सेवन अतिसार वाले ज्वर में कराना हितकर होता है।

नागरादि द्रव्य का लाभ

सोंठ, अतीस, मोथा, चिरायता, गुरुच और इन्द्रयव। इनके मिश्रण से पकाया हुआ क्वाथ सभी प्रकार के ज्वर और अतिसार में उपयोगी सिद्ध होता है।

पाठेन्द्रादि द्रव्य का लाभ

पाठा, इन्द्रयव, चिरायता, मोथा, पित्तपापड़ा और गिलोय। इन सब वस्तुओं का सेवन सोंठ के साथ किये जाने पर आमातिसार और आमज्वर नष्ट होते हैं।

हीवेरादि द्रव्य का लाभ

सुगंधवाला, अतीस, मोथा, बेल, सोंठ और धनिया—इनका पकाया हुआ रसपान करना योग्य है। पथ्य में मांड़रहित चावल का भात खायें। इसके प्रयोग से अफरा (पेट फूलना), शूल आदि नष्ट होकर आम का परिपाक होता है।

गुडूच्यादि द्रव्य का लाभ

गिलोय (गुरुच), अतीस, धनिया, सोंठ, बिल्वादिगण, सुगंधवाला, पाठा, चिरायता, कूड़ा,चन्दन, खस और कमलगट्टा। इनके द्वारा पाचित कषाय शीतलता के फलस्वरूप मिचली, अरुचि, वमन, प्यास और जलन आदि औपद्रविक लक्षणों का शमनकारक होता है। अत: यह ज्वरातिसार में भी प्रयोक्तव्य कहा गया है।

कलिङ्गादि द्रव्य का लाभ

इन्द्रयव, अतीस, सोंठ, चिरायता, चकवँड़ (चक्रमर्द) और वासा (अड़ूसा)। इनका पकाया हुआ कषाय ज्वरातिसार के ताप को निश्चय ही नष्ट कर देता है।

वत्सकादि द्रव्य का लाभ

१. कूड़े का फल, दारुहरिद्रा, कटुकी और गजपीपर। २. गोखरू, छोटी पीपर, धनिया, बेल, पाठा और अजवायन। यहाँ पर कथित ये दोनों सिद्ध नामक रस ज्वरातिसार का दमन करके दाह का भी शमन करते हैं।

पञ्चमूल्यादि द्रव्य का लाभ

पंचमूल, बला (खिरेंटी) बेल, गिलोय, मोथा, सोंठ, पाठा, चिरायता, सुगंधवाला तथा कूड़ा की छाल और फल। इन सबका नि:सृत रस समस्त प्रकार के अतिसार, ज्वर, वमन, शूल, श्वास और भयंकर खाँसी को भी नष्ट कर देता है। पंचमूल के संबंध में निर्णयात्मक मत यह है कि पित्ताधिक्य में लघुपंचमूल तथा वात-कफाधिक्य में बृहत् पंचमूल का प्रयोग करना उत्तम होता है।

पुरनंप्युत्पलादि द्रव्य का विशेष लाभ

नीलपद्म, अनार का छिलका और कमलकेशर (पराग)। इन सब वस्तुओं को चावल की धोवन के साथ पीसकर पान करने से ज्वरातिसार में लाभकर होता है।

उशीरादि द्रव्य का लाभ

खस, सुगंधवाला, मोथा, धनिया, बेल, खिरेंटी, धव के फूल, लोध और सोंठ। इनसे सिद्ध किया हुआ औषध अग्निदीपक, पाचक, अरुचि, आमदोष, अफरा (पेट का फूलना), शूल, मलावरोध तथा ज्वर के सहित एवं ज्वररहित रक्तातिसार को मिटा देता है।

उक्त दशमूल के लाभ

इस दशमूल कषाय के साथ दो-दो तोले सोंठचूर्ण का सेवन करने से ज्वर, अतिसार, सूजन और संग्रहणी रोग का नाश हो जाता है।

विडङ्गादि का लाभ

वायाविडंग (भाभीरंग), अतीस, मोथा, दारुहरिद्रा, पाठा और इन्द्रयव। इनका कषाय कालीमरिच के साथ पान करने से शोथयुक्त अतिसार का उन्मूलन होता है।

गुडूच्यादि द्रव्य का विशेष लाभ

गुरुच, करंज, मोथा, लालचंदन और सुगंधवाला। इनके कषाय को कूड़ा नामक औषध के साथ सेवन करने से ज्वरातिसार और सूजन दूर होती है।

किराताादि द्रव्य का लाभ

चिरायता, मोथा, गिलोय, सोंठ, सुगंधवाला और कूड़ा। इनसे पकाया हुआ रस पान करने से अतिसार तथा मुख्यत: ज्वर का निवारण होता है।

ज्वरनाश के निमित्त लंघन के अतिरिक्त जगत् में कोई अन्य उपाय या औषधि नहीं है। लंघन के द्वारा उत्थित दोष परिपक्व होकर दूर हो जाते हैं। जिस व्यक्ति में अत्यधिक पतले मल निकल रहे हों उसके लिए लावा का सत्तू और मसूर का यूष अत्यन्त उपयोगी पथ्य होता है।

बृहच्छालपर्ण्यादि द्रव्य का लाभ

सरिवन, पिठवन, कटेहरी, कंटकारी, बला, गोखरू, बेल, पाठा, सोंठ और धनिया। इनका पकाया हुआ रस सभी प्रकार के अतिसार में लाभदायक होता है।

लघु शालपर्ण्यादि के लाभ

सरिवन, खिरेंटी, बेल, पिठवन तथा अनार—इनके द्वारा निर्मित पेया पित्तज तथा कफज अतिसार में लाभकारी होता है। वातज-कफज अतिसार में चिकित्सक को धान्यपंचक, धनिया या सोंठ से पाचित आहार देने की व्यवस्था करनी चाहिए।

लघु पंचमूल से सिद्ध रस वातज-पित्तज अतिसार में उपयोगी माना गया है, किन्तु इससे पूर्व चिकित्सक को पक्व तथा अपक्व आम के लक्षणों पर भली-भाँति विचार कर लेना आवश्यक होता है। आमातिसार के गरिष्ठ होने पर वह गहराई में चला जाता तथा पक्वावस्था में उभर कर ऊपर आ जाता है। अत: आमातिसार को बाँधने वाले औषधों का प्रयोग करना उचित नहीं है।

आमावस्था में बंधित अतिसार के द्वारा सूजन, पाण्डु, कुष्ठ, गुल्म, औदरिक रोग तथा प्लीहा (तिल्ली, बरवट) आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। आम की दशा में अवरोधित अतिसार, अफरा (पेट का फूलना), लीवर के रोग, ग्रहणी तथा बवासीर आदि का उत्पत्तिकारक हो जाता है।

आमावस्था में धातुक्षीण एवं बलहीन हो जाने वाले दोषपूर्ण और आर्द्र आमातिसार का बंधन अवश्य ही कर लेना चाहिए अन्यथा रोगी में परिपक्वावस्था

आने तक उसकी मृत्यु होने की सम्भावना बनी रहती है। जिस रोगी में थोड़ा-थोड़ा करके या तेज दर्द के साथ अतिसार निकल रहा हो उसे हरड़ और पिप्पली के कल्क का हल्का गरम विरेचन देना उचित होता है।

प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि आमातिसार में वह हरिद्रादिगण, वचादिगण अथवा पिप्पल्यादियुक्त किसी यवागू या यूष का पान करे। धनिया, सोंठ, मोथा, सुगंधवाला और बेल। इनसे पकाया हुआ काढ़ा पीने से **आमातिसार**, **शूल** तथा **विबंध** दूर होकर **क्षुधावृद्धि** होती है।

पित्तज अतिसार में सोंठ के अतिरिक्त धनिया आदि चार वस्तुओं को लाभकारी बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त सोंठ के सहित चार वस्तुओं को भी गुणकारी कहा गया है। अतिसार की परिपक्वता तथा क्षुधाग्नि नाड़ी की कोमलता में शीघ्र ही बंध कर लेना आवश्यक होता है।

वातोत्पन्न अतिसार रोगी को, पंचमूल, बला, सोंठ, धनिया, नीलकमल और बेल के फल मट्ठा या किसी अन्य वस्तु के साथ देने चाहिए।

कञ्चटादि द्रव्य का लाभ

कफोत्पन्न अतिसार में निम्नलिखित वस्तुओं का योग गंगधारा के समान प्रवाहित होने वाले अतिसार को भी रोक देता है, जैसे—जलचौलाई, उमारे, अनार, सिंघाड़ा, पत्रज, बेल, सुगंधवाला, मोथा और सोंठ।

पित्तोत्पन्न अतिसार में चिरायता, मोथा, कूड़ा और रसोत—इन्हें मधु के साथ सेवन कराने से होने वाली पीड़ा भी दूर हो जाती है। अतः पित्तातिसार में यह सदैव ही सेवनीय है। अथवा कूड़ा के बीज से निकाले गये जल को एक पल की मात्रा में पान करने से यह पित्तातिसार के अतिरिक्त अन्य औदरिक रोगों को भी नष्ट कर डालता है।

पित्त-कफोत्पन्न अतिसार के रोगियों में कूड़ा, अतीस, मोथा, हलदी, दारुहलदी, मुद्गपर्णी, और माषपर्णी—इनका सम्मिलित योग शहद और शक्कर के साथ देना लाभप्रद सिद्ध होता है।

कूड़े का छिलका और उसका फल तथा मोथा—इनका काढ़ा बनाकर मधु और शक्कर के साथ पीने से तत्काल ही **अतिसार** नष्ट हो जाता है।

बेल और आम की गुठली का काढ़ा शहद और शक्कर के साथ पीने से **वमनरूप अतिसार** उसी प्रकार भस्म हो उठता है जिस प्रकार अग्नि में दी गयी आहुतियाँ भस्म हो जाया करती है। अथवा प्रियंगु, रसोत और मोथा। इनका काढ़ा बनाकर पीने से **पिपासा**, **अतिसार** और **वमन** का नाश होता है। इसे चावल की धोवन में मधु मिलाकर पिलाना उचित है।

परवल, इन्द्रयव, धनिया—इनका क्वाथ मधु और शक्कर डालकर उपयोग करने से **वमनयुक्त अतिसार** नष्ट होता है। अतः यह भी सेवनीय है। सर्वप्रथम कफातिसार में लंघन और पाचनकर्म रोगी में उपकारी होते हैं। अतएव **कफातिसार** के अतिरिक्त **आमातिसार** में उक्त कंचटादि दीपनगण का प्रयोग करणीय होता है।

त्रिकटु (सोंठ, कालीमरिच, पीपर), अतीस, हींग, वच, कालानमक और हरड़। इनका चूर्ण गुनगुने जल के साथ पान करने पर प्रबल आमातिसार भी नष्ट होता है। समुद्रफली का दलोत्पन्न रस या कूड़े के छिलके का काढ़ा मधु के साथ पीने से **आमातिसार** दूर होता है।

अनार के पत्ते, सिंघाड़ा, पाठा का मूलकंद, चित्रक, एक दिन का रखा हुआ चौलाई का बासी जल और पका हुआ बेल—इनका कषाय बनाकर गुड़ और सोंठ के साथ खाना उपयोगी होता है। यह दाड़िमादि कषाय **पित्तोत्पन्न अतिसार** में दुर्निवार ग्रहणी रोग को भी शीघ्र ही अवरुद्ध कर डालता है।

बकरी के दूध में पाचित तथा शक्कर, सेमल वृक्ष के गोंद और इन्द्रयव के चूर्ण के साथ मिलाया हुआ बेल रक्तातिसार को दूर कर देता हैं, जल की सहायता से संयंत्र द्वारा पीसी गयी सोंठ का गोला बनाकर उसे रेंड़ के पत्ते से लपेट कर उसके बाहर से मिट्टी का लेप लगा दें। पुनः उसे धीमी आँच पर पकावें। अच्छी प्रकार सिद्ध हो जाने पर उसे मधु के साथ चटाने पर यह शुण्ठीपाक **आमातिसार**, **अरुचि** और **शूल** को निर्मूल कर देता है।

कपित्थ (बेल के आकार का कैथ नामक फलविशेष) का रस अथवा कायफल को मधु के साथ चटाने से **उदरविकार** शीघ्र ही दूर हो जाता है। छोटी पीपर को मधु के साथ चाटने या चिरशोधित चित्रक के साथ मट्ठा पीने तथा छोटे बेल की गुद्दी खाने से उदर-संबंधी **अतिसार** के सभी रोग दूर होते हैं।

कूड़े की छाल का घना काढ़ा अतीस के साथ प्रयोग करने पर समस्त प्रकार के अतिसार दूर होते हैं। जहाँ लेह विधान में रस और कल्क की मात्रा निर्धारित नहीं की गयी है वहाँ सुविज्ञ चिकित्सक को रस का चतुर्थांश भाग कल्क में ग्रहण करना चाहिए।

इसी भाँति खरल में पेषित कपास और पाकड़ का रस मधु के साथ, अनार तथा कूड़ा की छाल का कषाय भी शहद के साथ तथा बेल के गूदे को गुड़ के साथ देने से दुर्निवार रक्तातिसार दूर होकर आमशूल, विबंध तथा कुक्षिरोगों का भी विनाश होता है।

सलई वृक्ष, बेर, जामुन, चिरौंजी का वृक्ष तथा अर्जुन वृक्ष। इनकी छाल से निर्मित कषाय दूध के साथ पान करने तथा मधुमिश्रित जल को अलग से चाटने पर **रक्तातिसार** का निवारण होता है। अथवा शतावरी के कल्क को दूध के साथ पीकर दुग्धनिर्मित अन्न का पथ्य ग्रहण करने से रक्तातिसार जाता रहता है। इसके अतिरिक्त शतावरी घृत का प्रयोग भी आशातीत फल दिखाता है।

मधुमिश्रित प्रियंगु का कल्क चावल की धोवन के साथ पान करने पर **रक्तातिसार** नष्ट होकर शरीरस्थ धातुओं पर भी रस का संप्रेक्षण होता है। अथवा काले तिलों में एक भाग शक्कर मिलाकर घी-दूध के साथ पीने से **रक्तातिसार** पर शीघ्र नियंत्रण होता है।

कूड़ा, अतीस, बेलगिरी (बेल का गूदा), सुगंधवाला और मोथा। इनके द्वारा पकाया हुआ कषाय दीर्घकालिक वेदना तथा रक्तयुक्त आमातिसार में अत्यन्त लाभदायक होता है।

भयग्रस्तता तथा शोकाकुलता के फलस्वरूप प्रादुर्भूत अतिसार हेतु वातातिसार में वर्णित औषधियाँ ही उपयुक्त होती हैं,किन्तु सभी प्रकार के बहुवर्णीय अतिसार में पुटपाक विधि पर निर्भर रहना पड़ता है। तीक्ष्ण क्षुधाग्नि वाले व्यक्ति के दीर्घकालिक, पीड़ारहित तथा विविधवर्णीय परिपक्व अतिसार में पुटपाक विधि से औषधोपचार करणीय होता है।

कीड़े-मकोड़े से अभक्षित कुटज वृक्ष की चिकनी छाल को लेकर उसे तुरन्त अच्छी तरह से पीस डालें। पुनः उसका गोला बना तंडुलतैल से अभिसिंचित करके जामुन के पत्तों के पुट पर कुशा से बाँध दें। तदनन्तर उसके चतुर्दिक् गाढ़ी मिट्टी का लेप लगाकर उसे धीमी आँच पर पकावें। पक जाने पर पाकपुट के उस पेषित पदार्थ को निचोड़कर उसके रस को मधु मिलाकर **रक्तातिसारी** को पान करायें तो निश्चय ही रोग पर नियंत्रण होता है। ऐसा कथन व्यास, आत्रेय आदि महर्षियों का है।

सोनापाठा की छाल को पीसकर कल्क बना लें तथा बिरिया नमक को खम्भारी के पत्तों से अच्छी तरह आवेष्टित कर बाहर से मिट्टी का लेप लगा उसे आग के अंगारों के मध्य स्थापित कर दें। भली प्रकार से पक जाने पर निकालकर उसका रस निचोड़ लें। रस के ठण्ढा हो जाने पर उसमें मधु मिलाकर रोगी को पान करायें। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि पकाने के समय जब उसका रंग लाल हो जाय तो उसे परिपक्व समझना चाहिए।

सबसे पहले कूड़ा नामक औषध को एक सौ पल लेकर जल में पकावें। तदनन्तर उसमें से जितना रस निकले उसमें १-१ पल की मात्रा में सेंमल का गोंद,

सुपारी, पाठा, समंगा, अतीस, मोथा, बेलगिरी और धाय के फूल—इन सब वस्तुओं का बारीक कल्क मिलाकर उसे पुन: तबतक पकाते रहें जबतक कि वह गाढ़ा होकर करछुल पर चिपकने न लग जाय।

देशकाल के मर्मज्ञ चिकित्सक द्वारा इस सिद्धरस का प्रयोग चावल के माँड़, जल या बकरी के दूध के साथ रोगी पर किये जाने से रक्त, नील और पीत रंग वाले सभी प्रकार के **दारुण अतिसार** नष्ट हो जाते हैं।

कूड़ा को एक पल की मात्रा में लेकर अठगुने जल में पका लें। तदनंतर उसे अनार के रस के साथ पुन: पाचित करें। पक जाने पर एक तोले परिमाण में **रक्तातिसार** में पान करने से मरणासन्न रोगी भी मृत्य के चंगुल से छूट जाता है।

उक्त क्वाथ के निर्माण में अनार के रस को कूड़े के क्वाथ के समान ही पूर्वकालीन तार्किक सिद्धाचार्यों ने माना है।

कूड़ा के बीज (इन्द्रयव), दारुहलदी, दूधिया नामक घास, छोटी पीपर, सोंठ, लाक्षा और कुटकी। इन छह प्रकार की वस्तुओं से परिपाक किया हुआ घृत मण्ड-पथ्य के साथ पान करने पर **त्रिदोषोत्पन्न अतिसार** को भी शीघ्र ही अपने नियंत्रण में ले लेता है।

सप्ताङ्गघृत का लाभ

दारुहलदी, लाक्षा, कटुकी, बेल का गूदा, कूड़े की छाल, इन्द्रयव तथा पिप्पली। इन सप्त पदार्थों से सिद्ध घृत, मण्ड के साथ पान करने से सभी **अतिसार** नष्ट हो जाते हैं।

चाङ्गेरीघृत का लाभ

सरलवृक्ष का गोंद, सोंठ अम्ल लोन, कोल, दही का पानी और काँजी। इनके साथ पकाया हुआ एक प्रस्थ परिमाण का घृत **वेदनायुक्त अतिसार** के लिए लाभकारी होता है।

आमावस्था से रहित, शूलार्त लंघनादि के फलस्वरूप शारीरिक दुर्बलता तथा कुछ-कुछ क्षुधाग्नि की जागृति देखकर पूर्वकथित घृत को दूध के साथ परिपक्व करना चाहिए। **अतिसार** रोगियों के लिए दुग्धप्रयोग अमृत के समान गुणकारी होता है, किन्तु दीर्घकालिक अतिसार में दुग्धपान के समय तीन भाग जल मिलाना उचित है।

रक्त और मल का नि:सरण समाप्त होने के पश्चात् वायुविकार के परिणामस्वरूप मलरहित जो फेनिल पदार्थ निकलता है उसे प्रवाहिका कहते हैं। इसके लिए छोटे बेल का गूदा, गुड़, तेल, पिप्पली तथा सोंठ—इनका लेह बनाकर वायु के शमन हो जाने पर प्रगोग करना चाहिए।

एरण्ड (रेंड़), बेल का गूदा, इन्द्रयव, गोखरू और कांजी के साथ पकायी

गयी हरड़ को मधु या गुड़ के साथ खाने से भयंकर वमन, अतिवेदना और महारक्तातिसार भी नष्ट हो जाता है।

प्रवाहिकाग्रस्त रोगी सारयुक्त दही और मधु के साथ पूर्वोक्त हरड़ का सेवन करे अथवा गरम कड़ाह में पकाये गये दूध को ठण्ढा करके मधु के साथ पकाकर उक्त हरड़ के अनुपान द्वारा पान करें।

देवदारु का गोंद, अंकोट (ढेरा वृक्ष) और पाठा का मूल, कूड़ा की छाल, सेमल तथा शीशम का गोंद, धाय का फूल, लोध और अनार। इन सबको पीसकर चावल की धोवन के साथ एक कर्ष परिमाण की गोली बना लें। इसे प्रतिदिन प्रात:काल १-१ गोली चावल की धोवन और शहद के साथ खाने से **समस्त अतिसारों** का निवारण होता है।

यदि अतिसार के कारण मलद्वार में क्षत या जलन हो तो परवल और मुलेठी के रस या बकरी के दूध से गुदाद्वार का सिंचन करने पर लाभ होता हैं। गुदभ्रंश की अवस्था में मूषिकामांस के द्वारा स्वेदनकर्म (भाप देना) तथा गोधा (गोह नामक साँपविशेष) के मांसरस का प्रोक्षण करना उचित है। इसके अतिरिक्त चांगेरी घृत का प्रयोग भी लाभकारी सिद्ध होता है।

कुशल चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने अनुभूत प्रयोगों द्वारा अतिसार के अंत में दिखाई पड़ने वाले शोथादि का उपचार करे, किन्तु अतिसारावस्था में यदि सूजन, दर्द, ज्वर, प्यास, खाँसी, अरुचि, वमन, मूर्च्छा तथा हिचकी आदि के लक्षण भी विद्यमान हों तो ऐसे रोगी का परित्याग कर देना चाहिए। **अतिसार** के रोगी को स्नान, जल में तैरना, तैल मालिश, गरिष्ठ और भारी पदार्थों का भोजन, व्यायाम तथा अग्निसेवन आदि कर्म नहीं करने चाहिए।

अतिसार रोगी में भूख जगने और पेट के हलका होने पर उदरविकार का शमन होना समझना चाहिए। रोगमुक्ति के पश्चात् कुछ दिनों तक रोगी को वातकारक पदार्थों के सेवन से बचना आवश्यक रहता है।

ग्रहणी का उपचार

ग्रहणी (अग्निवर्धक नाड़ी) के आश्रित अजीर्णविकार का शीघ्र ही उपचार करना आवश्यक होता है। इसमें सबसे पहले पूर्वकथित अतिसार विधि से आमाशय का परिपाक करना चाहिए।

तदनन्तर कैथ नामक फल, बेल का गूदा, अम्ललोना, मट्ठा और अनार—इनसे पकायी गयी यवागू देने से आमाशय का परिपाक होकर ठीक प्रकार से मल का परिवर्तन होता है।

लघुपंचमूल, पंचकोल, पाठा, बेल का गूदा, इमली और अनार। इनके द्वारा अन्न को सम्पादित करना चाहिए। ग्रहणी रोगी के निमित्त मट्ठा (छाँछ) ग्रहस्थान को हलका करके अग्निदीपन करता तथा मधुपाक के फलस्वरूप पथ्य होता है। इसके द्वारा कभी पित्त का प्रकोप नहीं होता।

निम्नांकित कषाय खाँसीनिवारक तथा रूखा होने से कफोत्पन्न संग्रहणी में उपकारी होता है। यह सरस और अम्लरस से पूरित होने के फलस्वरूप **वातोत्पन्न ग्रहणी** तथा **कृमिविनाशक** होता है।

पाठा, इन्द्रयव, चित्रक और सोंठ। इनका काढ़ा बनाकर पान करें अथवा महीन चूर्ण का गरम जल के साथ सेवन करें।

निरन्तर आमभाव की स्थिरता, अग्नि की मन्दता तथा आमाशयिक **ग्रहणी रोग** में जल के साथ पक्वित समान मात्रा की सोंठ, मोथा, अतीस और गुरुच— इनका काढ़ा बनाकर पान करें।

अथवा धनिया, अतीस, सुगंधवाला, यवानी, मोथा, सोंठ, बला, मुगवन, मषवन (माषपर्णी) और हरड़। इन सबका क्वाथ अग्निदीपन तथा क्षुधावर्धन करने वाला होता है। अतः यह **संग्रहणी** में प्रयोक्तव्य है।

चित्रक (चीता), पिपरामूल, जवाखार, सज्जीखार, पंचलवण, व्योष (सोंठ, कालीमरिच, पीपर), हींग, अजमोद और चव्य। इन सबको चूर्णित कर उसमें बिजौरा नीबू अथवा अनार का रस मिलाकर वटी बना लें। इस वटी के सेवन से आमाशय का परिपाक होकर क्षुधाग्नि की वृद्धि होती है।

कच्चे बेल के गूदे या कल्क सोंठचूर्ण में मिलाकर गुड़ के साथ खायें और ऊपर से छाँछ का सेवन करें तो **ग्रहणी रोग** पर विजयश्री मिलती है।

जामुन, अनार, सिंघाड़ा, पाठा, जलचौलाई के पत्ते, पका हुआ एक दिन पूर्व तोड़ा हुआ बेल और गुड़—इसका सेवन सोंठ के साथ करने पर सभी प्रकार के अतिसार और ग्रहणी रोग का नाश होता है। अथवा सोंठ, अतीस और मोथा का काढ़ा पीना भी **आमाशय का परिपाक** करता है।

वातोत्पन्न ग्रहणी रोग में हिंग्वष्टक चूर्ण और अष्टफल घृत भी लाभकारी है। अथवा सोंठ, अतीस, मोथा, धाय का फूल, रसोत, कूड़ा की छाल, इन्द्रयव, बेल का गूदा, पाठा और कटुकी। इनके समान भाग चूर्ण में मधु मिलाकर चावल की धोवन के साथ पित्तोत्पन्न या **रक्तपित्तोत्पन्न ग्रहणीविकार** में पान करने से लाभ होता है। इस चूर्ण के सेवन से बवासीर, गुदशूल और प्रवाहिका रोग भी दूर होता है।

यह पूर्वोक्त नागरादि चूर्ण कृष्णात्रेय द्वारा प्रशंसा-प्राप्त है। चावल की धोवन

तैयार करने की रीति यह है कि चावलों को अठगुने जल में भिंगो दें। पुनः उस भिंगोये हुए चावल के जल को निथार कर रख लें और उपयोग करें।

भूनिम्बाद्य चूर्ण का लाभ

चिरायता, परवल, त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपर), मोथा, चीता तथा कूड़े की छाल—इन सब वस्तुओं को दो-दो भाग लेकर सबका चूर्ण बना लें। सिद्ध होने के पश्चात् गुड़ और ठण्ढे जल के साथ सेवन करने पर **ग्रहणी**, **गुल्म रोग**, **कामला**, **ज्वर**, **रक्तपीड़ा**, **प्रमेह** (धातुसंबंधी रोगविशेष), **अरुचि** तथा **अतिसार** रोग नष्ट होते हैं।

यवानी (जवायण), पिप्पलीमूल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, सोंठ, कालीमरिच, चीता, सुगंधवाला, स्याहजीरा, धनिया, काला नमक—इन्हें बराबर मात्रा में लें। पुनः अम्लबेंत, धाय, छोटी पीपर, बेल और अनार—इनका चूर्ण पहले से तिगुना, शक्कर छह गुना और इन सभी का अठगुना कैथ लेकर चूर्ण तैयार कर लें। इस चूर्ण के सेवन से **अतिसार**, **ग्रहणी**, **गुल्म**, **जलोदर**, **हिचकी**, **खाँसी**, **अरुचि** तथा **श्वास** आदि रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इसे कपित्थाष्टक चूर्ण के नाम से कहा गया है।

कफोत्पन्न ग्रहणी रोग में विधिवत् वमन कराने के पश्चात् कटु, अम्ल, लवण, क्षार और तिक्त—इन पंचरसों का प्रयोग करके क्षुधाग्नि को बढ़ाना चाहिए।

त्रिदोषज ग्रहणी में दोषों के शमनार्थ उनके तीन समान भाव का विधान वर्णित किया गया है।

अतः इसके लिए चिरायता, मोथा, गुरुच, चंदन, सुगंधवाला और कूड़ा। इनके द्वारा पकाया हुआ कषाय समस्त प्रकार की ग्रहणी को मिटा देता है।

मसूर-कषाय के साथ सोंठमिश्रित घृत का पाक करें। इस घृत के सेवन से **कुक्षिगत रोग**, **ग्रहणी**, **पाण्डु** तथा **कामला** रोग शीघ्र ही निर्मूल हो जाता है।

व्रीहि नामक धान्य और प्राण्यंग क्वाथ की मात्रा बासी होने पर २ पल कही गयी है। त्रिकटु और त्रिफला का कल्क ८ तोले, गुड़ २ पल तथा घी ८ पल। इन सबको पकाकर **अग्निमांद्य** में सेवन करना उपयोगी बतलाया गया है।

बेल का गूदा, चीता और सिंघाड़ा। इनके काढ़ा या कल्क के साथ पकाया हुआ घृत बकरी के दूध के संग सेवन करने से ग्रहणी, मलद्वार की सूजन, मन्दाग्नि और अरुचि में लाभ होता है।

मोचरस (मुसव्वर), सम्भालू, नीलकमल, त्रिकटु, लावा, बेल का गूदा,

सुगंधवाला, धाय के फूल। इन सबों को बकरी के दूध और अम्ललोना के रस में मिलाकर घृत पकायें। यह घृत विशेषत: **बालकों के ग्रहणी** में लाभकारी होता है।

सोंठ, पिप्पलीमूल, चीता, गजपिप्पली, गोखरू, छोटी पीपर, धनिया, बेल, पाठा और जवायण। इनका कल्क बना अम्ललोनी के रस में चौगुना दही मिलाकर घृतपाक करें। इस घृत से कफ, वायु, **बवासीर**, **ग्रहणी**, **मूत्रकृच्छ्र** (रुक-रुककर पेशाब का निकलना), प्रवाहिका, अधोवायु निकलने के समय होने वाली पीड़ा, मलावरोध तथा मूत्रावरोध में लाभ होता है।

कालीमरिच, पिप्पलीमूल, सोंठ, छोटी पीपर, जवायन, वायविडंग (भाभीरंग), गजपीपर, हींग, सोंचर नमक, विड्नमक, सेंधा नमक, खारी नमक, जवाखार, चीता, वच (कुलंजन)। इन सबको अर्ध पल की मात्रा में ग्रहण कर एक प्रस्थ घी में पाचित करें। इसका घृतपाक खाँसी, श्वास, क्षीणता, बवासीर, भगन्दर तथा कफज, वातज एवं कृमिज रोगों को उसी प्रकार जला डालता है जिस प्रकार कुपित दावाग्नि समूचे वनप्रान्त को भस्म कर देता है।

शुण्ठीघृत का लाभ

सोंठ के कल्क को दशमूल के रस में मिलाकर पकाया जाने वाला घृत सूजन और ग्रहणीस्थान की आमावस्था को शीघ्र ही दूर कर देता है। अथवा केवल सोंठ के कल्क के साथ पकाया हुआ घृत विकारयुक्त वायु को यथास्थान बैठाकर **ग्रहणी**, **पाण्डु**, **प्लीहा** (तिल्ली), **खाँसी** और **ज्वरादि उत्पातों** को शीघ्र ही शान्त कर देता है।

कल्याणकगुड का लाभ

शोधित थूहर (सेंहूड़ नामक पौधा) छह मांशा, पिप्पलीमूल, जीरा, चव्य, त्रिकटु, गजपीपर, हाऊबेर, अजमोदा, वायविडंग, सम्भालू, त्रिफला, जवायन (यवानी) पाठा, चीता और धनिया २-२ तोला लेकर चूर्ण बना लें। अब इनमें निशोथ ८ पल और तैल ८ पल डालकर आँवले के ३ प्रस्थ रस के साथ आग पर पकावें।

पककर तैयार हो जाने पर इस पाक को कल्याणकगुड़ कहा जाता है। इस पाक में इलायची, दालचीनी और तेजपात मिलाकर एक कर्ष की मात्रा में सेवन करने पर समस्त ग्रहणी विकार, श्वास, खाँसी स्वरभेद (गला बैठना) तथा शोथ आदि रोगों का उन्मूलन होता है। इसके अतिरिक्त इस कल्याणकगुड़ के प्रयोग से **दीर्घकालिक अग्निमांद्य** का निवारण होता, पौरुषशक्ति को बढ़ाता तथा वन्ध्या नारियों को गर्भधारण के योग्य बनाता है।

ग्रहणी रोग में जिन लक्षणों के आधार पर उसकी असाध्यता जानी जाती है, उन्हीं लक्षणों के द्वारा अतिसार की भी असाध्यता समझनी चाहिए।

वृद्धावस्था का ग्रहणी रोग प्रायः दूर नहीं होता। यदि संयोगवश दूर भी हो जाय तब भी वह पूर्णरूप से कभी निर्मूल नहीं हो सकता।

त्रिफला, मालकांगनी (मालककुनी), चव्य, बेल का गूदा, लोहधूर, कटुकी, मुश्कदाना, मोथा, कूड़ा, पाठा, हींग, सौंफ, जवाखार, बचा,मुलेठी, त्रिकटु, वायविडंग, पिप्पलीमूल सज्जीखार, नीम, तेजपात, मरोड़फली, अजमोदा, इन्द्रयव, गुरुच और देवदारु—इन सबको एक-एक कर्ष तथा पंचलवणों को एक-एक पल की मात्रा में लेकर तीन कुडव (९६ तोला) घी और तेल के साथ मिलाकर निर्धूम आँच पर धीरे-धीरे पकाकर हाथ की हथेली द्वारा सेवन करें।

इसे घी के साथ सेवन करने पर **ग्रहणी**, **पाण्डुरोगी** के **वात-कफ**, **प्लीहा**, **मूत्रावरोध**, **श्वास**, **हिचकी**, **खाँसी**, **थकावट**, **ज्वर** तथा सभी प्रकार के विष (स्थावर-जंगम) और नेत्र रोगों से छुटकारा मिलता है।

जिस रोगी को शयनावस्था में अपने दोनों ओर (पार्श्व में) घटी पर स्थापित जलाधार का-सा बोध हो तो उसे घटीयंत्रक नामक ग्रहणी रोग कहा जाता है। इसे असाध्य माना जाता है।

अर्श (बवासीर) का उपचार

बवासीर, **अतिसार** और **ग्रहणी**—ये तीनों ही विकार पारस्परिक रूप से एक-दूसरे के उत्पन्नकर्ता होते हैं। अर्थात् इन तीनों में से जिस व्यक्ति में किसी एक दोष की प्रधानता होती है उसमें शेष दो अन्य दोषों के उत्पन्न होने की भी संभावना बनी रहती है। अग्निबल के क्षीण होने से उक्त कथित तीनों रोग की वृद्धि तथा अग्निवर्धन से उनका उन्मूलन होता है। अतः उक्त रोगों की दशा में अग्निबल का अभिरक्षण करना आवश्यक है।

बवासीर के विनष्टीकरण हेतु चार प्रकार के साधन बतलाये गये हैं जिनमें पहला वनौषधियों का प्रयोग, दूसरा क्षारवस्तु का सेवन, तीसरा है शस्त्रादि द्वारा कर्तित कर उन्हें अलग करना और चौथा औषधियुक्त अग्नि द्वारा भाप लेना।

अतिसार और बवासीर में वायु और अतिसारोत्पादक वस्तुओं का उपचार करना अनुचित है। इसके लिए उदावर्त (मल-मूत्र के वेग को रोककर ऊपर की ओर चढ़ने वाला वायु ही उदावर्त होता है) नामक रोगनिग्रह की विधि अपनानी चाहिए।

छाँछ में अजवायन और विड् नमक मिलाकर पीने से मल-विबंध में गुणकारी है। छाँछ से पीड़ित होने के फलस्वरूप गुदाद्वार पर मस्से पुनः नहीं निकलते। छाँछ के सेवन से नाड़ियों तथा इन्द्रियों के स्रोत परिमार्जित हो जाते हैं। सभी रस अपने उपयुक्त स्थान में जाकर बल और आनन्द उत्पन्न करते हैं।

उक्त प्रकार से निर्मित छाँछ वात-कफ के शताधिक दोषों को मिटा देता है। अथवा पिप्पली के साथ गुड़, निशोथ और दन्ती के साथ हरड़ को घी में पकाकर सेवन करने से वातादिक विकार निर्मूल होते हैं। अथवा काला तिल और भिलावे का फल एक साथ पाचित कर खाने से भूख बढ़ती, **कुष्ठरोग नष्ट** होता तथा **बवासीर** का उन्मूलन होता है।

तिल, भल्लातक (भिलावाँ), हरड़, गुड़ और जटामांसी। इनका प्रयोग श्वास, खाँसी, पाण्डु तथा ज्वर में करना लाभकारी होता है। सूरन (जमीकन्द) के ऊपर मिट्टी का लेप लगाकर अग्नि में पका लें। तदनन्तर उसमें तैल और नमक मिलाकर खाने से **बवासीर** का नाश हो जाता है।

व्योमा (अभ्रक) क्षार के जल में उबाले हुए बैगन को घी में भूनकर निरन्तर सात दिनों तक सेवन करें। तत्पश्चात् तक्रपान करें तो **बवासीर** की वेदना के साथ ही उसके साथ के अन्य रोग भी दूर हो जाते हैं।

गुड़ के साथ हरड़ का सेवन करने पर पित्त-कफ के रोगों का शमन होता तथा मलद्वार के सभी दोष मिट जाते हैं। अथवा चीते की जड़ का छिलका पीसकर मस्से पर लेप लगायें और ऊपर से सिद्ध किया हुआ मट्ठा या दही आदि **अर्शोघ्न क्षारीय** पदार्थों का प्रयोग करें।

त्रिफला, दशमूल और दन्ती—इनको एक-एक भाग लेकर एक द्रोण जल में क्वाथ पकावें। जब जल का चौथाई भाग शेष बच रहे तब उसमें एक सौ पल अगरु मिला देना चाहिए। पुन: इस क्वाथ को किसी स्वच्छ पात्र में एक मास तक रख देने पर यह दन्त्यरिष्ट नामक क्वाथ तैयार हो जाता है। इस क्वाथ का पान करने से **मलद्वार के विकार**, **कृमि**, **उदावर्त**, **ग्रहणी** और **पाण्डु** रोगों का उन्मूलन होता है।

बवासीर के रोगी को चीता, हाऊबेर और हींग का चूर्ण बना तक्र के साथ पान करावें। अथवा इन्द्रयव और कालीमरिच का चूर्ण देने से भी लाभ मिलता है।

अभयारिष्ट का निर्माण और लाभ

अभया (हरड़) आधा प्रस्थ, आँवला एक प्रस्थ, कैथ नामक फल दश पल, इन्द्रायण पाँच पल तथा वायविडंग (भाभीरंग), छोटी पीपर, लोध, कालीमरिच और शैलबालुक—इन सबको दो-दो भाग में ग्रहण कर चार द्रोण जल में पाक करें। जब पकने पर एक द्रोण रस शेष रहे तब उसमें ठण्ढा होने पर दो सौ पल की मात्रा में गुड़ मिलाकर घी के बरतन में उस रस को पन्द्रह दिनों तक रख छोड़े। पन्द्रह दिनों के अनन्तर उसमे दालचीनी, इलायची, तेजपात, तालीसपत्र,

सोंठ, मिरच और पीपर मिलाकर रख दें। रोगी के बलाबल के अनुसार इसके सेवन की मात्रा निर्धारित करें।

इस अभयारिष्ट के सेवन से **मलद्वार के सभी विकार**, **ग्रहणी**, **पाण्डु**, **हृद्रोग**, **गुल्म**, **प्लीहा** (बरवट), **उदररोग**, **कुष्ठ**, **सूजन**, **भोजन में अरुचि**, **कमलवात**, **श्वेतकुष्ठ**, **कृमिरोग**, **अर्बुद** (चर्मकील), **ग्रंथिरोग**, **व्यंगरोग** (शरीर पर नीला दाग पड़ना), **क्षय** तथा **ज्वरादि** को नष्ट कर भूख को जगाता तथा बल को बढ़ाता है।

दुरालभाद्यरिष्ट का निर्माण और लाभ

दुरालभा एक प्रस्थ,वासा (अडूसा), चीता, हरड़, आँवला, पाठा, सोंठ और दन्ती—इन्हें तीन-तीन पल लेकर एक द्रोण जल में परिपाक करें। चौथाई भाग शेष रहकर उसके ठण्ढा हो जाने पर उसमें शक्कर डालकर घृतपात्र में छोटी पीपर, चव्य, प्रियंगु, मधु तथा घृत से लेपित कर उस रस को उसी पात्र में पन्द्रह दिनों तक स्थापित कर दें।

तत्पश्चात् शक्त्यानुसार यथावसर इसकी मात्रा का पान करें। यह दुरालभारिष्ट अर्श, ग्रहणी, उदावर्त, अरुचि, मल-मूल का दूषित निःसरण होना, कब्जियत, मन्दाग्नि, हृद्रोग तथा **पाण्डुरोग** के सभी उत्पातों को नष्ट कर देता है।

कल्याणलवण का निर्माण और लाभ

भिलावाँ, त्रिफला, दन्ती और चीता। इनको बराबर भाग में लेकर दुगुना सेंधा नमक मिला कर चूर्ण बना नारियल के खोपड़ा पर गोबर की धीमी आँच देकर पकावे। इसके सेवन से बवासीर में अत्यन्त लाभ होता है।

प्राणमोदक का निर्माण और लाभ

सोंठ ३ पल, कालीमरिच चौथाई भाग, पीपर १६ तोला, चव्य १ पल, तालीसपत्र १ पल, केशर आधा पल, पिपरामूल २ पल, तेजपात आधा कर्ष, छोटी इलायची १ कर्ष, दालचीनी और मृणाल (कमलनाल) १ कर्ष और गुड़ ३० पल। इन सबको कूट-पीसकर चूर्ण बना लें।

अब इस चूर्ण को २ तोले की मात्रा में वटी बना लें। इसे **प्राणदा वटिका** कहा जाता है। इस वटी का सेवन भोजन से पूर्व और भोजनान्त में भी करना चाहिए। इसके साथ अनुपान के रूप में मदिरा, मांसरस, यूष, दूध या जल आवश्यक है।

इस वटी के द्वारा सभी प्रकार के अर्श तथा उसके सहवर्ती रोग नष्ट होते हैं। इससे वातज, पित्तज, कफज, सान्निपातिक रोग, कृमिरोग तथा हृद्रोग भी निर्मूल होते हैं।

इसके अतिरिक्त मदात्यय, मूत्रकृच्छ्र, वातज रोग, गलग्रह, विषम ज्वर

(टायफाइड), अग्निमांद्य, पाण्डुरोग आदि भी नष्ट हो जाते हैं। वात-पित्तजनित विड्ग्रह में सोंठ की अनुपलब्धता रहने पर हरड़ का प्रयोग करना उचित है।

पूर्वकथित अनुपान की मात्रा श्लेष्मजनित रोगों में १ पल, वातजनित में २ पल तथा पित्तोत्पन्न रहने पर ३ पल लेनी चाहिए। इस गुटिका के द्रव्यों से चतुर्गुण शक्कर खरल करके मन्दाग्नि, अमलपित्त तथा बवासीर में सेवनीय है।

काङ्कायनमोदक का निर्माण और लाभ

हरड़ ५ पल, कालीमरिच आधा पल, पीपर १ पल, पिपरामूल २ पल, चव्य ३ पल, चीता ४ पल, सोंठ ५ पल, यवक्षार (जवाखार) २ पल, भिलावाँ ८ पल और इनसे दुगुना जमींकद (सूरन) तथा इन सबसे दुगुने परिमाण में गुड़ मिलाकर २-२ तोले की गोली बना इसे प्रातःकाल एक गोली खाने के पश्चात् तक्र (छाँछ) का पान करें।

यह कांकायन मोदक क्षुधाग्नि को बढ़ाकर ग्रहणी और पाण्डुरोगों को नष्ट करता है। इसे महर्षि कंकायन ने शस्त्र, क्षार और अग्नि प्रयोग के विना ही बवासीर पर विजय पाने के लिए अपने शिष्यों से वर्णन किया था। यह मोदक बवासीर विनाश के लिए अतीव लाभकारी होता है।

लवणोत्तमाद्य चूर्ण का लाभ

सेंधा नमक, चीता, इन्द्रयव, करंज और वाडनीम। इन सबको मथकर इनके रस का सात दिनों तक पान करने वाला व्यक्ति वातोत्पन्न रोगों का दमन कर डालता है।

समशर्करचूर्ण का लाभ

सोंठ, पीपर, मरिच, पान का पत्ता, दालचीनी और छोटी इलायची। इनके एकत्रित चूर्ण में बराबर का शक्कर मिलाकर प्रतिदिन मात्रा बढ़ाते हुए सेवन करें।

अंतिम दिन से पुनः उसी प्रकार मात्रा घटाते हुए समाप्त करें। इसके द्वारा मन्दाग्नि, बवासीर, गुल्म, भोजन में अनिच्छा, श्वास, कण्ठरोग तथा हृदय के रोग दूर होते हैं।

चतुःसमो मोदक का निर्माण और लाभ

जो चिकित्सक सोंठ, भिलावाँ, विधायरा और गुड़—इन चारों को समान भाग में लेकर बवासीर, संग्रहणी आदि रोगों को विदीर्ण करने वाला 'अर्द्धदारक' नामक मोदक का निर्माण करता है वह मानो एकाएक रोगग्रस्त दारक को बढ़ाता है।

व्योषादि चूर्ण का लाभ

सोंठ, मरिच, पीपर, चित्रक, भिलावाँ, वायविडंग, काला तिल, हरड़। इनके चूर्ण को गुड़ के साथ सेवन करने से बवासीर, शोथ, विष, कुष्ठ, विड् विबंध, अग्निमांद्य, कृमि तथा पाण्डुरोग दूर होते हैं।

मरिचादि चूर्ण का लाभ

कालीमरिच १ भाग, पीपर २ भाग, सोंठ ३ भाग तथा चीता ४ भाग ग्रहण करें। चीते से चौगुना जमीकंद (सूरन) मिलाकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को प्रतिदिन कौंछ और गुड़ के साथ सेवन करने से बवासीर का रोग जाता रहता है।

शूरणपिण्डी का लाभ

जमीकंद १६ भाग, चीता ८ भाग, सोंठ २ भाग तथा मरिच १ भाग। इनके द्वारा सिद्ध इस सूरणपिण्डी से बवासीर का नाश होता है।

स्वल्पसूरणो मोदक कु गुण और लाभ

कालीमरिच, सोंठ, चित्रक, जमीकंद—इन्हें क्रमानुसार द्विगुणित परिमाण में लेकर इन सबसे दुगुना गुड़ मिलाकर मोदक बना लें। यह **बवासीर** रोग में सेवनीय होता है। उक्त प्रकार का मोदक क्षुधाग्नि को बढ़ाकर शीघ्र ही शूल और गुल्मरोग का उन्मूलन कर देता है, साथ ही श्लीपद (हाथीपाँव) तथा अर्शरोग का भी विनाश कर डालता है।

बृहच्छूरणादि के योग और लाभ

सोंठ ८ भाग, कालीमरिच ४ भाग, त्रिफला ४ भाग तथा अन्य पदार्थ पूर्वकथित शूरणादिगण के समान लें। इन सबका एकत्रित परिमाण लगभग १०८ पल होना चाहिए। अथवा जमीकंद १६ भाग, चीता ८ भाग, सोंठ ८ भाग, कालीमरिच ४ भाग, त्रिफला, पिप्पली और पिप्पलीमूल २-२ भाग, सोंठ के अंश परिमाण (८-८ भाग) से तालीशपत्र, भिलावाँ तथा बायविडंग (भाभीरंग) ले लें।

चीते के परिमाण से मुसली ८ भाग, विधायरा १६ भाग, दालचीनी और इलायची ४-४ भाग । इन सबके चूर्ण में दुगुना गुड़ मिलाकर मोदक बना ले और कामोपभोग हेतु प्रयोग में लाएँ।

यह मोदक भारी, पुष्टिकर एवं वीर्यवर्धक होता है जिसके परिणामस्वरूप यह कामोपभोग से वंचित रहने वाले धनहीन व्यक्तियों के लिए अत्यन्त उपद्रवकारी सिद्ध होता है।

पूर्वकल्प में इसी योगराज के प्रभाववश पाण्डुनंदन भीम एवं महर्षि अगस्त्य भी बहुभोजी बनकर भोजनभट्ट की उपाधि से विभूषित हुए थे। यह मोदक केवल क्षुधाग्निवर्धक ही नहीं होता वरन् बवासीर रोग में शस्त्र, क्षार तथा अग्नि-प्रयोग विफल हो जाने पर भी यह रोगमुक्ति का कार्य कर दिखाता है।

इसके अतिरिक्त यह शोथ (सूजन), श्लीपद (फीलपाँव), ग्रहणी, वात-पित्त-कफ, वलीपलित (असमय में ही केशों की श्वेतता तथा चमड़े पर झुर्री पड़ना)

आदि रोगों को भी नष्ट करने में पूर्णतया सफल रहता है। अतः सुयोग्य चिकित्सक को इसका निर्माण यत्नपूर्वक करना उचित होता है।

चव्यादि घृत का गुण व लाभ

चव्य, सोंठ, कालीमरिच, पीपल, पाठा, जवाखार, धनिया, अजवायन, पिप्पलीमूल, विड् नमक, सेंधा नमक, चित्रक, बेल का गूदा और हरड़। इन सबका चूर्ण घी में पाचित कर लें। पुनः मलदोष को हटाकर धातुओं के अनुकूल बनाने के लिए इसकी समूची मात्रा में चौगुने दही में इस घृत को मिलाकर प्रयोग करें।

यह प्रवाहिका, गुदभ्रंश (काँच निकलना), मूत्रकृच्छ्र, परिस्रव, मलद्वार, जाँघ और जोड़ों की पीड़ा को दूर करता है।

पिप्पल्यादि तैल घृत का लाभ

छोटी पीपर, मुलेठी, बोल, सौंफ, मैनफल, वचा, कूठ, सोंठ, चीता और देवदारु। इन सब वस्तुओं को एक साथ पीसकर दुगुने दूध में पका लें। पक जाने पर इस तैल के द्वारा **बवासीर** तथा **मूर्छित वायु** वाले रोगियों में बस्तिकर्म करना श्रेष्ठ कहा गया है।

इस तैल से बस्तिकर्म करने पर गुदभ्रंश, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, कमर, जाँघ तथा पृष्ठभाग की कमजोरी, जाँघों की जोड़ का आनाह (एक प्रकार का वातशूल), पिच्छास्राव, मलद्वार की सूजन, वायु से कान्तिलोप तथा बवासीर का पुनरावर्तन आदि दूर होते हैं।

कल्याणलेह या बहुलाशक गुड के लाभ

निशोथ, तेजबल, दन्ती, गोखरू, चित्रक, कचूर, सोंठ, इन्द्रायण, मोथा, नागरमोथा, वायविडंग (भाभीरंग) तथा हरीतकी (हरड़)—इनके निर्मितीकरण के लिए ये सभी वस्तुएँ १-१ पल, भिलावाँ ८ पल, विधायरा ६ पल, जमीकंद १६ पल लेकर २ द्रोण जल में पकावें। पक जाने के पश्चात् जब चौथाई भाग शेष रह जाय और रस परिपक्व हो जाय तब उसमें तीन गुना गुड़ मिला लें। जब यह पककर गाढ़ा हो जाय और करछुल में चिपकने लगे तब इसे आग से नीचे उतारकर कथित वस्तुओं के चूर्ण को मिला देवें।

इसमें मिलाने वाली वस्तुएँ इस प्रकार से हैं—निशोथ, तेजबल, जमीकंद (सूरन) और चित्रक २-२ पल, इलायची, दालचीनी, कालीमरिच और नागकेशर ६-६ पल। इन सबके मिश्रण से चूर्ण का परिमाण ३२ पल बनाकर लेह में मिलाकर किसी पात्र से ढँक दें। तदनन्तर मात्रानुसार सेवन करें। औषधि का पाचन हो जाने पर दूध या मांसरस का आहार ग्रहण करें।

इस लेह के सेवन से पंचगुल्म (पार्श्वगुल्म, हृदगुल्म, नाभिगुल्म, बस्तिगुल्म तथा नाभिहृदयान्तरालग्रंथि गुल्म), प्रमेह (धातु-संबंधी रोग विशेष), पाण्डुरोग, श्वास, समस्त प्रकार के बवासीर तथा सम्पूर्ण औदरिक रोगों का नाश हो जाता है।

यह **ग्रहणी रोग** से उत्पन्न होने वाली सुस्ती को दूर कर **राजयक्ष्मा** का भी विनाश कर डालता है। यह लेह **पीनस रोग** (नाक से होने वाला रक्तस्राव), अस्थिगत वायु तथा अन्यान्य प्रकार के रोगों में भी गुणकारी माना गया है।

इस बाहुलाशक नामक गुड़ के प्रयोग से बारम्बार उत्पन्न होने वाला अर्श रोग निर्मूल हो जाता है। यह **आयुवर्धक**, **वलीपलितनाशक**, **वृद्धत्वनिवारक** तथा **अर्शोन्मूलक** है।

यहाँ गुड़पाक की पहचान इस प्रकार बतलायी गयी है कि जब जलपूर्ण पात्र में डाला हुआ गुड़ नीचे डूब जाय और बिना विकीर्ण हुए एक ही स्थान में स्थिर रहे तो उस गुड़पाक को सिद्ध समझना चाहिए। अथवा पाक के गाढ़ा होकर करछुल में चिपकने पर उसे परिपक्व जानना चाहिए। गुड़पाक की परिपक्वता हो जाने पर वह सरलतापूर्वक मसलने, स्पर्श करने योग्य बन जाता है। ऐसी दशा में वह रसपूर्ण तथा सुंदर वर्णवाला हो जाता है।

भल्लातक गुड का लाभ

इसके लिए सबसे पहले एक द्रोण जल में दो हजार की संख्या में भिलावें के फल को पकावें। जब पककर रस का चौथाई भाग शेष रह जाय तो उसमें १०० पल (१६ सेर ४ पल) गुड़ डालकर पकावें। तदनन्तर ५०० भिलावाँफलों को उसमें छीलकर पुन: मिला दें।

उसके पूर्णरूप से पक जाने पर त्रिफला, त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पीपर), अजवायन, मोथा, सेंधा नमक, दालचीनी, इलायची, तेजपात और केशर— इन सबको १-१ कर्ष की मात्रा में लेकर चूर्ण बना उस रस में मिला दें।

प्रात:काल नित्यप्रति इस गुड़ का सेवन करने से क्षुधाग्नि का वर्धन होता है।

इस गुड़ के द्वारा **कुष्ठ**, **बवासीर**, **कामला**, **प्रमेह**, **ग्रहणी**, **गुल्म**, **पाण्डुरोग**, **प्लीहा** (तिल्ली) तथा समस्त प्रकार के औदरिक रोगों का उन्मूलन होता है।

भल्लातकावलेह के योग और लाभ

चीता, त्रिफला, मोथा, पिप्पलीमूल, चव्य, गुरुच, गजपिप्पली (गजपीपर), अपामार्ग (चिचिड़ा), दंडोत्पल, एवं वनतुलसी (तुलसी की एक प्रजाति)। इन सब वस्तुओं को ४-४ पल की मात्रा में लेकर एक द्रोण जल में पका लें। इसमें दो हजार भिलावाँ के फलों को भी बिन-चुनकर मिला दें।

पकाने के पश्चात् जब सभी औषधियाँ चौथाई भाग में रह जायँ तब उसे एक लौहपात्र में पुनः पकावे। उसी क्षण उसमें ५० पल तीक्ष्ण लौहचूर्ण, ६४ तोला (२ कुडव) घृत, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमिर्च), त्रिफला, चित्रक, सेंधा नमक, विड् नमक, साँभर नमक, काला नमक और वायविडंग (भाभीरंग) १-१ पल, विधायरा ३२ तोला और मुसली, जमीकंद ८ पल। इन सबका चूर्ण बनाकर उक्त रस में छोड़ दें। इसके पककर ठण्ढा हो जाने पर इसमें ६४ तोला मधु मिला लें। इस अवलेह का सेवन प्रातःकाल तथा आहारकाल में प्रतिदिन करें।

इस अवलेह के सेवन से बवासीर, ग्रहणी, पाण्डु, भोजन में अनिच्छा, कृमिरोग, गुल्मरोग, पेट की पथरी (अश्मरी), प्रमेह और शूलरोग का नियंत्रण होता है। यह वीर्यवर्धन करके वलीपलित रोग को मिटाता है। इस प्रकार यह समस्त रोगों के लिए एक उत्तम रसायन-स्वरूप है।

वासा (अडूसा), सामान्य लोध, रसोत और लांगली (कलिहारी)। इन सबको समान भाग में लेकर जल में पीस नाभिस्थल के चतुर्दिक् चार अंगुल तक के स्थान में लेप लगाने से पुनः बवासीर के उत्पन्न होने की सम्भावन नहीं रह जाती।

प्रारम्भिक काल में रक्तज बवासीर से स्रवित होने वाले दूषित रक्त को रोकना कदापि उचित नहीं होता, क्योंकि एकाएक रक्त को अवरुद्ध कर देने से अफरा तथा रक्तविकार उत्पन्न होने की सम्भावना बनी रहती है।

मक्खन और तिल अथवा केशर, मक्खन और शर्करा या दही की मलाई या मट्ठे के सेवन करने से रक्तवाहिनी बवासीर का विनाश होता है।

मंजीठ, नीलकमल, मोचरस, लोध, तिल और चन्दन। इन सब वस्तुओं को बकरी के दूध में पीसकर प्रयोग करने से अर्श का निवारण होता है।

कूठ के फल और उसका छिलका, केशर, नीलकमल, लोध, धाय (धव या धावड़ा)। इन्हें जल में पीसकर घी में पकाकर देने से रक्तार्श (खूनी बवासीर) में लाभ होता है।

कूड़ा के कल्क को छाँछ के साथ पीसकर पीने से बवासीर का रक्त शीघ्र ही रुक जाता है।

कुटजावलेह के गुण और लाभ

एक सौ पल कूड़े की छाल को पीसकर एक द्रोण जल में पाक करें। पकने पर जब अष्टमांश शेष रह जाय तब उसे नीचे उतार कर कपड़े से छान लें और पुनः आग पर पकावें। पकने के पश्चात् लेह के समान गाढ़ा हो जाने पर उसमें भिलावाँ, वायविडंग, त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च, पीपर), त्रिफला, रसोत, चित्रक, कूड़ा के

फल, वचा, अतीस और बेल का गूदा। इन सबको एक-एक पल तथा तीस पल गुड़ मिला दें। पुनः उसमें ३२ तोले मधु और ३२ तोले घी को भी डाल दें।

इस प्रकार से पकाया गया कुटज अवलेह वातज, पितज, कफज, त्रिदोष और रक्तार्श को शान्त करता है। इसके द्वारा अम्लपित्त, अतिसार, पाण्डु, अरुचि, ग्रहणी, कोमलता, दुर्बलता, शोथ तथा कामला रोग उन्मूलित होता है।

इसके अनुपान हेतु घृत, मधु, मट्ठा, जल और दूध का उपयोग करना चाहिए। यह कुटजावलेह अनेकानेक रोगों को निर्मूल करने में सक्षम कहा गया है।

शतमस्वाक्षार का लाभ

चार प्रस्थ भस्म को कठपाडर के छहगुने जल में डालकर किसी मजबूत लोहे के बरतन में आग पर पकावें। पकाते समय उसे करछुल से धीरे-धीरे चलाते भी रहें। जब थोड़ा अंश शेष रह जाय तब नाभिशंख के अनेक टुकड़ों को आग में जलाकर उसकी राख मिला दें।

इस प्रकार परिपक्व किया हुआ क्षार शताधिक रोगों को जलाकर भस्मीभूत कर डालता है। जिस पाक में गाढ़ापन या पतलापन अधिक मात्रा में न हो तो उसे 'स्मरपाक' कहा जाता है। इस प्रकार का क्षार अर्शादि रोगों में उपचारार्थ प्रयुक्त होता है।

क्षीरसूत्र का लाभ

थूहर (सेंहुड़) के दूध में हलदी का चूर्ण मिलाकर उसमें सूत्र को कई बार सिद्ध कर **बवासीर के मस्सों** पर कसकर बाँध देने से उसे काट देता है, साथ ही **भगन्दर रोग** को भी दूर कर देता है।

यन्त्रादि क्रिया

अर्श रोग में सबसे पहले दायीं ओर, फिर बायीं ओर, पुनः पीछे की ओर तथा अंत में अगले भाग के मस्सों को पंचतिक्त के द्वारा चिकना बनाकर क्षार या अग्नि से जलाना चाहिए।

वातज, पित्तज, कफज, तथा रक्तज अर्शांकुरों का पथरी और निर्गुण्डी (सम्भालू) के पत्तों से लेखन करने के पश्चात् क्षारयुक्त लेप लगायें।

तत्पश्चात् अर्शोयन्त्र के द्वार को हाथ से आच्छादित कर सौ अक्षर के उच्चारण काल तक स्थिरता बनाये रखें। पुनः हाथ हटा लेने पर यदि वे मस्से पके हुए जामुन के वर्ण वाले दीख पड़े तो लेप की सफलता समझनी चाहिए।

इसकी विपरीतता में पुनः क्षारयुक्त गाढ़ा लेप लगाना चाहिए। लेप के सफल हो जाने पर दही अथवा दही के पानी से उन क्षारयुक्त मस्सों को प्रक्षालित कर दें।

तदनन्तर मुलेठी के कल्क का लेप लगायें। जो मस्से ताड़ के समान कठोर

होने के फलस्वरूप बाधित न हो सके हों उन्हें अग्नि द्वारा दाग दें। ऐसा करने पर यदि दाहजनित पीड़ा हो तो मधु-घृत के द्वारा इन्हें निर्वापित कर दें। जब वे मस्से अच्छी तरह से दग्ध हो जायँ तो उन पर वट, सेंहुड़, पाकड़, चन्दन, गेरू या गुरुच के कल्क में घी मिलाकर लेप लगा देने चाहिए।

इस प्रक्रिया के अनन्तर रोगी को एक मुहूर्त (२ घटी) तक जलपूर्ण पात्र में बैठाये रखना आवश्यक है। तत्पश्चात् पूर्वोक्त क्षार को गरम जल के द्वारा मस्सों के स्थान में पहुँचा दें।

ऐसा करने से मल-मूत्र की तीव्रता बढ़ती हैं। दग्ध करने से उत्पन्न होने वाली जलन में सौ बार धोये हुए घी का लेप लगाना उचित होता है।

व्रण को पकाने के लिए नवान्न, उड़द तथा मट्ठे आदि का सेवन निर्धारित मात्रा के अनुसार करें। व्रणशोधन के निमित्त गूगुल के साथ त्रिफला का काढ़ा पान करें। जीर्णावस्था में धान, मूँग, सेंधा नमक तथा तिक्त पदार्थों का पथ्यरूप में सेवन करें। इस प्रकार इस बलवान रोग की गहरी जड़ को काटकर निर्मूल कर डालें। इस प्रक्रिया के पश्चात् भी ऐसे पदार्थों से दूर रहें जिनसे इनकी पुनरावृत्ति होती हो।

क्षुधा या भूख वृद्धि के उपचार

क्षुधाग्नि की साम्यावस्था में मिताहार के द्वारा उस अग्नि का अभिरक्षण करना आवश्यक होता है। इसका कारण यह है कि समाग्नि की अवस्था में किसी प्रकार के दोष की उत्पत्ति संभव नहीं होती। किन्तु इस अग्नि के विषमावस्था में होने पर वात का, तीक्ष्ण होने पर पित्त का और मंद होने पर कफ का नियंत्रण करना चाहिए।

इस प्रकार करने से उन्माद, राजयक्ष्मा आदि दुर्दम्य रोगों के आक्रमण से बचा जा सकता है।

हिङ्वष्टक चूर्ण के योग व लाभ

त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमिर्च) ३, अजवायन ४, सेंधा नमक ५ जीरा ६ और स्याहजीरा ७। इन सभी का समान भाग में चूर्ण बनाकर इसमें आठवाँ भाग हींग मिला दें।

इसे प्रतिदिन भोजन के समय प्रथम कौर में घी के साथ सेवन करने से जठराग्नि बढ़ती है, साथ ही वातरोगों का भी विनष्टीकरण होता है।

राजमण्ड के योग और लाभ

चावल के गरम माँड़ को हींग और साँभर नमक (समुद्री नमक) मिलाकर पीने से **विषमाग्नि** तथा **मन्दाग्नि** में लाभ होता है।

यदि चावलों का माँड़ निम्नलिखित आठ वस्तुओं के सार से संयुक्त कर सेवन किया जाय तो क्षुधाग्नि की वृद्धि, बस्तिस्थान का शुद्धिकरण, प्राण एवं रक्त का वर्धन, ज्वर तथा कफ-पित्त का दूरीकरण एंव वायु का प्रशमन होता है।

चावल २ पल, मूँग १ पल तथा सोंठ, कालीमिर्च, पीपर, धनिया, सेंधा नमक, हींग और तैल। इसी के योग से यह मंड तैयार किया जाता है। अथवा मूँग २ पल और चावल—इन दोनों को चौगुने जल में उबालकर पकने पर मांड़ निथार लें और उसे गोघृत में भून डालें।

तत्पश्चात् भुनी हुई हींग १ माशा लेकर सेंधा नमक, त्रिकटु, और धनिया का चूर्ण बनाकर उसमें मिला दें और किसी स्वच्छ पात्र में रख दें। पुनः उसे किसी चतुर नायिका के हाथ में देकर किसी निर्जल, निर्जन और वातरहित स्थान में ले जायँ। वहाँ जाने पर उस नायिका को मधुर कटाक्ष के द्वारा अपनी ओर आकर्षित कर रोगी को वह मंड प्रेमपूर्वक दिखावे। इस प्रक्रिया के अनन्तर उस राजमंड का पान करने से रोगी का त्रिदोष नष्ट हो जाता है।

नागरमोथा, गुड़ या सेंधा नमक के साथ हरड़ का सेवन **क्षुधाग्विर्धक** होता है।

भोजन के प्रारंभ में नित्यप्रति अदरक और सेंधा नमक का सेवन करना **रुचिकारक** और **अग्निवर्धक** होता है। इसके अतिरिक्त जिह्वा और कंठप्रदेश का भी विशुद्धिकरण करता है।

सेंधा नमक, हरड़, सफेद जीरा और चित्रक। इनके चूर्ण में घी मिलाकर गरम जल से सेवन करने पर **मंदाग्नि** तथा **दुर्बलाङ्गी** व्यक्ति भी गरिष्ठ खाद्य पदार्थ को शीघ्र ही पाचित कर लेता है।

अतीस, हरड़, गिलोय (गुरुच)—इनके कषाय में त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पीपर) को तेजपत्र और दालचीनी के द्वारा सुवासित करके खाने से मन्दाग्नि और कफोत्पन्न उपद्रव शान्त होते हैं।

गुड़ के समान भाग में सैंधव नमक, हींग, त्रिफला, अजवायन और त्रिकटु को लेकर खरल में घोंटकर गुटिका बना लें। इसके सेवन करने वाले की क्षुधाग्नि इतनी तीव्र हो जाती है कि वह अपनी इच्छित वस्तु को भरपेट खा लेने पर भी ऊबता नहीं है।

सोंठ अथवा पीपर या हरड़ किंवा दाड़िम (अनार) को गुड़ के साथ नित्य सेवन करने के फलस्वरूप आम, अनपच, मलद्वार के रोग तथा विड्विबंध का निवारण होता है।

वायविडंग (भाभीरंग), भल्लातक (भिलावाँ), चित्रक (चीता) अमृता (हरड़) और सोंठ। इन सब पदार्थों के सम परिमाण को गुड़ के साथ मिलाकर घी के साथ सेवन किये जाने पर रोगी की **क्षुधाग्नि** बालकों के समान प्रज्वलित हो उठती है।

हरड़ के चूर्ण को धनिया के तुषोदक से सिद्ध करके छोटी पीपर, सेंधा नमक और हींग को उसमें मिश्रित कर दें।

इसके सेवन से वमन-संबंधी उपद्रव तथा वर्धित अजीर्ण का शमन होकर भूख की उत्पत्ति होती है।

चित्रकगुड का लाभ

चीता और दशमूल २०० पल अथवा गिलोय १०० पल। इनका काढ़ा बना लें। पक जाने पर उसमें हरड़ ८ सेर और गुड़ १०० पल को भी मिलाकर तब तक उसे पकावें जब तक पूर्णरूप से गुड़पाक न हो जाय। पकने के पश्चात् ठंढा होने पर दूसरे दिन ६४ तोला मधु, त्रिसुगंध (इलायची, तेजपात, दालचीनी) २ पल और त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमिर्च) २ पल भी उसमें मिश्रित कर दें। तदनंतर उसमें जवाखार भी २ कर्ष की मात्रा में मिला दें। इस प्रकार यह एक श्रेष्ठ रसायन के रूप में तैयार हो जाता है।

इसके द्वारा मानव की जठराग्नि इतनी प्रज्वलित हो उठती है कि वह शुष्क काष्ठ को भी सहज ही पचा डालने में समर्थ हो जाता है।

इससे श्वास (दमा), खाँसी, क्षय, कृमिरोग, गुल्म, उंदर, बवासीर और कुष्ठ रोग का विनाश हो जाता है। इसके सेवन से दुःसाध्य पीनस (नकसीर) रोग का भी विनष्टीकरण होता है।

भोजन की विषमता (कमो-बेशी) के परिणामस्वरूप प्रायः अजीर्ण रोग की उत्पत्ति हुआ करती है। यह अजीर्ण ही रोगों का मूल कारण माना जाता है। अजीर्ण का निवारण न होने तक रोगमुक्ति भी संभव नहीं होती।

इसके सामान्य लक्षण इस प्रकार कहे गये हैं, जैसे—शरीर में ग्लानि, भारीपन, आलस्य, तंद्रा, भ्रम, वायु के कारण अचेतना, मल का रुक जाना अथवा आमावस्था (अपरिपक्वावस्था) में निकलना आदि।

दिन में सोते समय हींग, त्रिकटु और सेंधा नमक का लेप पेट पर लगाने से अजीर्ण का निवारण होता है।

दिन में शयन की आवश्यकता

निम्नलिखित व्यक्तियों को दिन में शयन कराना आवश्यक बतलाया गया है जैसे—व्यायाम, मैथुन तथा घुड़सवारी से क्लान्त होने पर, अतिसार रोग से ग्रस्त,

शूल, श्वास, प्यास से आकुल, हिचकी आने से क्लेशित, दुर्बल, क्षीण कद वाले, बालक, मादक पदार्थों के सेवन से व्यथित, वृद्ध, घी-दूध आदि के सेवन से अजीर्णग्रस्त, रात्रिजागरण तथा त्रिकालभोजी होने पर।

देवदारु, वचा, मोथा, सोंठ, अतीस और हरड़। इनके रस को पीने से सभी प्रकार के अजीर्ण नष्ट हो जाते हैं।

भोजनपरान्त तुरन्त ही आचमन करके रात्रि में शुचितापूर्वक गुनगुना अथवा शीतल जल पीने से जठराग्नि प्रज्वलित होती है।

जल में धनिया और सोंठ को पकाकर सुयोग्य चिकित्सक को अजीर्ण रोग में पान कराना उचित है। इस प्रकार का पक्व जल कच्चे अजीर्ण को पकाता, शूल को मिटाता तथा बस्ति का शुद्धिकरण करता है।

अजीर्ण रोग में हरड़ और छोटी पीपर के चूर्ण में सौवर्चल (सोंचर) नमक मिलाकर दही के पानी या गरम जल के साथ रोगी के बलाबल के अनुसार पान कराने से अजीर्ण दूर होता है।

इस चूर्ण के द्वारा चार प्रकार के अजीर्ण (मन्दाग्नि, अरुचि, आनाह और वातगुल्म) शान्त होकर शूलवेदना भी नष्ट होती है।

जिस किसी शक्तिशाली व्यक्ति में स्नेहपान के परिणामस्वरूप अजीर्ण उत्पन्न होने की आशंका हो उसे भोजनकाल में सबसे पहले सोंठ खाकर भोजन करना चाहिए। तदनन्तर हरड़ का सेवन करें।

जलन का शमन

भोजनोपरान्त जिसके हृदय, कोष्ठ तथा कण्ठनली में जलन की अनुभूति हो उसे अंगूर, शक्कर तथा हरड़ के साथ मधु का सेवन करना उचित होता है।

हींग १ भाग, वचा २ भाग, पीपर ३ भाग, अदरक ४ भाग, अजवायन ५ भाग, हरड़ ६ भाग, चित्रक ७ भाग और कूठ ८ भाग। इनका चूर्ण दही या दही के पानी, मदिरा या गुनगुना जल के साथ सेवन किये जाने से वात का शमन, शोथ, विवर्णता, अजीर्ण, प्लीहा (तिल्ली) तथा औदरिक रोगों का विनष्टीकरण, बल, बुद्धि, तेज तथा पुष्टि का वर्धन होता है।

जीर्ण-शीर्ण अंगों तथा विषपायी व्यक्तियों के लिए यह अग्निमुख नामक चूर्ण अत्यन्त लाभकारी है। इसके अतिरिक्त यह बवासीर, श्लेष्मा (बलगम), गुल्म, खाँसी, श्वास (दमा), **क्षयनाशक** तथा **क्षुधाग्निवर्धक** भी होता है। इसका प्रयोग निरापद रूप में सभी रोगों में किया जा सकता है।

बृहदग्निमुख चूर्ण का योग और लाभ

दोनों क्षार (जवाखार, सज्जीखार), चित्रक, पाठा, करंज, पंचलवण, छोटी इलायची, तेजपात, भारंगी, वायविडंग (भाभीरंग), हींग, कूठ, कचूर, दारुहलदी, निशोथ, मोथा, वचा, इन्द्रयव, आँवला, जीरा, विषाविल, हरड़, स्याहजीरा, अम्लवेंत, इमली, अनार, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमरिच), भिलावाँ, अजमोदा, अजवायन, देवदारु, अतीस, विधायरा, हाऊबेर और अमलतास—ये सब चीजें सम भाग और तिल, कठपाडर, सहिजन, तालमखाना, ढाक (पलाश), आसन (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, काकोली, क्षीरकाकोली अर्क, धव, पिप्पल, इमली, कोट, शोधित लौहमल और चूने का भस्म)।

उक्त वस्तुओं को भी समान परिमाण में लेकर महीन चूर्ण बना लें। तत्पश्चात् तीन दिनों तक बिजौरा नीबू के रस और पुन: तीन दिन तक मक्खन और अदरख के रस में सिद्ध कर लें।

इस प्रकार 'बृहद्‌ग्निमुख' नामक चूर्ण तैयार हो जाता है। यह जलती हुई अग्नि के समान तेजस्वी और जठराग्निवर्धक होता है।

इसका सेवन विधानपूर्वक किये जाने पर अपच, गुल्म, प्लीहा (तिल्ली, बरवट), बवासीर, औदरिक रोग, **आँतों की वृद्धि** तथा वातगतरक्त में यह लाभ पहुँचाता है, साथ ही **मंदाग्नि** को भी दूर करता है।

अथ भास्करलवण

पिपरामूल, धनिया, स्याहजीरा, सेंधा नमक, विड् नमक, चव्य, तेजपात, तालीशपत्र और केशर। इन सबका २-२ पल भाग, काला नमक ५ भाग, कालीमरिच, जीरा और सोंठ १-१ पल, इनसे दालचीनी और इलायची आधा भाग, समुद्री नमक ६४ तोला, अनार ३२ तोला तथा अम्लबेंत २ पल।

इन सबको खरल में एक साथ चूर्णित करने पर श्रेष्ठ 'भास्करलवण' चूर्ण का निर्माण होता है। इसे जगत के हितार्थ सूर्यदेव ने निष्पादित किया है। यह वात, कफ, वातगुल्म तथा वातपीड़ा का निवारण करता है।

इस चूर्ण का प्रयोग मट्ठा, दही का पानी, मदिरा, सिम्हालू-रस, चित्रकरस या इनकी कांजी के साथ अथवा जांगलदेशीय हिरन के मांसरस या अन्य प्रकार के रुचिकारक रसों के साथ करना उपयोगी होता है।

उक्त विधि से इस चूर्ण के सेवन करने पर मंदाग्नि में तीव्रता आती है। इसके अतिरिक्त **अर्श**, **ग्रहणी**, **कोढ़**, **भगन्दर** (गुदा का रोगविशेष), हृद्रोग, **आमदोष**, **पेट की कब्जियत**, **प्लीहा**, **पथरी**, **साँस फूलना** (दमा),

खाँसी, **औदरिक रोग**, **शर्करा प्रमेह** (बीस प्रकार के प्रमेहों में से एक) तथा **पाण्डुरोग** का नाश हो जाता है।

वार्ताकु गुटिका के योग और लाभ

थूहर (सेंहुँड़) ४ पल, त्रिलवण (सेंधा नमक, विड् नमक, काला नमक) ३ पल, बैंगन ३२ तोला, अर्क ८ पल और चित्रक २ पल। इन सब चीजों को बैंगन के रस में जलाकर गोली बना लें। इसे भोजनोपरान्त सेवन करने से भक्षित पदार्थ का पाचक शीघ्र ही हो जाता है।

इसके अतिरिक्त यह वटी श्वास (दमा), खाँसी, बवासीर, विषूचिका, पीनस (नकसीर) और हृद्रोग में भी परम उपयोगी है। अजीर्ण और ग्रहणी रोग में इसका प्रयोग अमोघ कहा गया है।

अग्निघृत का योग और लाभ

पिप्पली (छोटी पीपर), पिप्पलीमूल, गजपिप्पली, चित्रक, हींग, वचा, अजमोदा और पाँच प्रकार के नमक, सज्जीखार, जवाखार, हाऊबेर—ये सब वस्तुएं आधा-आधा पल। इन्हें एक प्रस्थ घी में पकावें। इसमें घी के बराबर दही, कांजी तथा चूकन को पहले से ही मिला दें।

इस प्रकार से यह अग्निघृत निर्मित होता है। यह मंदाग्नि रोग में परमोपयोगी होता है। इसके साथ ही यह अर्श, गुल्म, औदरिक रोग, अरुचि, कफ, खाँसी, मज्जागत वायु, ग्रहणी, शोथ, भगन्दर, बस्ति तथा कुक्षिरोगों को उसी प्रकार मिटा देता है जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अँधेरा मिट जाता है।

चुक्रसन्धान के योग और लाभ

चावल का जल १ प्रस्थ, छाँछ और कांजी ३ पल, दही आधा प्रस्थ, अम्लबेंत और मूली ८ पल, गुड़ २ सेर, सोंठ २ पल (मतान्तर से), सफेद सोहागा २ पल, कालीजीरी २ पल, पीपर और कालीमरिच २ पल तथा हलदी २ पल।

इन सब पदार्थों को किसी चिकने और मजबूत बरतन में रखकर धान्य या यव की ढेरी में स्थापित कर बासी बनावें।

अर्थात् इन्हें निम्न समयावधि तक उस अन्न की ढेरी में रखे रहें, जैसे—ग्रीष्मकाल और शरद् ऋतु में तीन दिन, वर्षाऋतु में चार दिन, वसन्त ऋतु में छह दिन और हेमन्तकाल में आठ दिनों तक रखकर बासी बना लें। तदनन्तर उसे उबालकर फाड़ दें तो यह चुक्र (कांजी) सिद्ध हो जाता है।

शार्दूलकाञ्जिक का योग और लाभ

गुड़, शहद, कांजी और दही का पानी। इन्हें क्रमशः बढ़ाते हुए दुगुने

परिमाण में लेने चाहिए। तत्पश्चात् छोटी पीपर, अदरक, देवदारु, चीता, चव्य, बेल का गूदा, जटामांसी, अजवायन, अजमोदा, हरड़, सोंठ, धनिया, कालीमरिच, जीरा और हींग। इन सब वस्तुओं को बराबर भाग में मिलाकर कांजिक को सिद्ध कर लें।

सिद्धिप्राप्त यह काञ्चिक श्वास, खाँसी, अतिसार, पाण्डुरोग, कामला (पीलिया), आमदोष, गुल्मपीड़ा, वातपीड़ा, सामान्य वेदना, सूजन आदि रोग समूल नष्ट कर देता है।

विसूचिका रोग का उपचार

कूड़ा और सेंधा नमक के कल्क में चुक्र (कांजी) और तैल को मिलाकर किंचित् गरम कर लें। इसे विषूचिका रोग में मालिश करने से हाथ-पैरों की पीड़ा (ऐंठन) तथा शूल का निवारण होता है।

चुक्र के अभाव में तिलकांजिक का ग्रहण करना चाहिए। करंज, नीम, चुरनहार, गुरुच, कोह और कूड़ा। इनका सिद्ध किया हुआ कषाय भीषण विसूचिका का भी विनाश कर डालता है।

त्रिकटु (सोंठ, कालीमरिच, पीपर), करंज का फल और हलदी की जड़। इनको बिजौरा नीबू के रस में साधित कर वटी बना कर छाया में सुखा लें। विषूचिका रोग में यह वटी अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होती है।

अथवा दालचीनी, तेजपात, रास्ना, अगरु, सहिजन, कूड़ा, वचा और सौंफ। इनके चूर्ण को मट्ठे में सिद्ध करके उबटन लगाने से हाथ-पैरों की अकड़न और विसूचिका का नाश होता है। इसका पकाया हुआ तैल भी गुणकारी कहा गया है।

बढ़ी हुई प्यास तथा उत्क्लेश की अवस्था में लौंग का जल पीना हितकर है। अथवा जायफल और भद्रवन का ठण्ढा क्वाथ भी लाभदायक सिद्ध होता है।

आमरोग के फलस्वरूप वर्धित विसूचिका में पैर की एड़ी में जलन होना एक शुभ संकेत माना जाता है। जब इस रोग की वर्तमानता या निवृत्ति में मल का निकलना रुक जाय तब देवदारु, हरड़, कूड़ा, सौंफ, हींग और सेंधा नमक को मट्ठे में पीसकर उदर पर लेपित कर देना उचित है।

जवाखार के साथ जौ का चूर्ण मट्ठे में मिला गरम करके प्रयुक्त किये जाने पर उदर की पीड़ा शांत होती है। अथवा कूड़ा के गरम रस से परिपूरित घड़ी के द्वारा बस्तिकर्म करने या हाथ-पैरों को तपाने से भी विषूचिका दूर होती है।

अजीर्णावस्था में तेज पीड़ा होने पर भी दर्दनिवारक औषधियों का पान करना कदापि उचित नहीं है, क्योंकि अग्नि के दोषाच्छादित रहने पर वह दोषशामक औषधियों को पाचित करने में अक्षम रहता है।

रोगी में वमन, विरेचन, लंघन आदि की प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात् जब वह क्षुधातुर हो रहा हो तब चिकित्सक को दीपन, पाचन और पेय पदार्थों से उसका उपचार करना आवश्यक होता है। ऐसा न करने पर उसमें आमाशयिक उपद्रव होने की आशंका बनी रहती है।

मोथा, वायविडंग (भाभीरंग), पंच लवण, जवाखार, चीता, हर्रे, पाठा, पिप्पलीमूल, कूड़ा, सज्जीखार,। इनका मिश्रित चूर्ण अत्यन्त रुचिकर होता है। इस चूर्ण को कटूष्ण जल या ऐसे मट्ठे के साथ सेवन करना चाहिए जिसमें आधा जल मिलाया गया हो।

इससे रोगी की क्षुधाग्नि वर्धित होकर उसमें बल और तेज का प्रादुर्भाव होने लगता है।

कृमिरोग का उपचार

प्रात:काल उठते ही गुड़ खाकर बासी पानी के साथ तेजपात और अजवायन का सेवन करने पर आँतों में रहने वाले कीड़े मल के साथ निकल जाया करते हैं।

कृमिरोग में कूड़ा के पत्तों के रस में शहद मिलाकर सेवन करने से लाभ होता हैं। अथवा केउँआ या पत्तूर के रस का प्रयोग करें। कृमियों के विनष्टीकरण तथा क्षुधाग्निवर्धन हेतु वायविडंग और त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च, पीपर) के चूर्ण के साथ राजमण्ड का उपयोग करना अच्छा होता है।

कृमिसमूहों को नष्ट करने के निमित्त वायविडंग (भाभीरंग) अथवा श्वासरोगोक्त चूर्ण को मधु मिलाकर लेह्य के समान चाटें। कृमिरोग में इन्द्रायण की जड़ को कालीमरिच के साथ पीसकर पान करने से कृमियों का निर्मूलन होकर जठराग्नि की वृद्धि होती है।

वायविडंग, तंडुल, त्रिकटु, सहिजन और कालीमरिच—इनके साथ रक्त में सिद्ध की गयी जवाखार के साथ यवागू भी **कृमिनिवारक** होती है।

मोथा, मूसाकानी का फल, देवदारु और सहिजन—इनके क्वाथ में पीपर और वायविडंग के कल्क (जल के साथ पीसी हुई औषधि) को मिलाकर पान करने से मलद्वार और जननेंद्रिय तक फैले हुए दीर्घकालिक कृमियों का नाश हो जाता है।

मूषकपर्णी (मूसाकानी) के पत्तों को पीसकर पीठीं के संग मालपूआ बनाकर खायें। तदनन्तर कृमिविनाशक सौवीर कांजी का पान करें। तेजपात के बीज के रस को मधु के साथ अथवा इसके बीज को कल्क के रूप में मट्ठे के साथ पीने से कृमि नष्ट होते हैं।

इसके अतिरिक्त आँवला रस के साथ बकरे का मूत्र या सुरसादिगण का

प्रयोग भी लाभकारी सिद्ध होता है। अथवा त्रिफला, निशोथ, दन्ती, वचा और कबीला—इनके साथ गोमूत्र में साधित घृत (त्रिफलादिघृत) भी कृमिनाशक होता है।

धतूरा या पान के पत्तों का निकाला हुआ रस पारद में मिलाकर पेट और नाभि पर लेप लगाने से जूएँ नष्ट होते हैं। कृमिरोगी को दूध, मांस, गुड़, घी, दही, शाक, अम्ल या मधुर पदार्थों का परित्याग कर देना चाहिए क्योंकि ये सभी पदार्थ कृमियों को बढ़ावा देते हैं।

पाण्डुरोग का उपचार

सर्वप्रथम पाण्डुरोगी के चिकित्सार्थ रोग की साध्यता-असाध्यता का विचार करते हुए उसे घृत द्वारा चिकना बनाकर मधु-घृत के साथ हरड़ का चूर्ण प्रयोग कराकर वमन-विरेचन कर्म कराना चाहिए।

यंत्र में पीसी हुई हलदी के साथ पकाया हुआ घी या फल (त्रिफला, जायफल आदि) या उपयोगी तैल का पान कराना उचित है। इसके अतिरिक्त सेवनीय औषधों का विरेचन लें या घी के साथ रेचक (दस्तावर) पदार्थों का प्रयोग करें।

वातजन्य पाण्डुरोग में स्निग्ध (आर्द्र-उष्ण) तथा पित्तज में सिद्धशीत (शुष्कता और उष्णतारहित शीतल प्रयोग) तथा कफजनित पाण्डुरोग में कड़ुआ, रूखा और उष्ण प्रयोग एवं मिश्रित दोष में मिश्रित प्रयोग करने चाहिए। पित्तजन्य पाण्डु में निशोथ चूर्ण में दुगुना शक्कर मिलाकर आधा पल की मात्रा में ग्रहण करना चाहिए। वातज पाण्डु में शोधित शिलाजतु को केशर और मिश्रीमिलित बकरी के दूध के साथ प्रयोग करना गुणकारी होता है।

कफजनित पाण्डुरोग, ज्वर, अतिसार (बार-बार पतला दस्त आना), शोथ, ग्रहणी, साँस फूलना, खाँसी, भोजन में अनिच्छा, कंठरोग तथा हृदय के रोगों में दशमूल का काढ़ा सेवनीय होता है। त्रिफला, गुरुच, वासा (अडूसा नामक पौधा), कुटकी, चिरायता और नीम—इनके साथ पकाया हुआ क्वाथ मधु के साथ लेने से पाण्डु एवं कामला रोग नष्ट होते हैं।

हरें, कालातिल, त्रिकटु—ये सब १-१ तोला लेकर इनके समान परिमाण में स्वर्णमाक्षिक (सोनामाखी) मिलाकर चूर्ण बना लें। पुनः इसे मधु के साथ मोदक बनाकर पाण्डुरोग के अंत में नित्यप्रति सेवन करना आवश्यक कहा गया हैं। बकरी की तप्त लेंड़ी (मल) को एक-दो बार गोमूत्र में भिंगोगर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को मधु और घी के साथ भात के संग खावें। यह चूर्ण दीपन और जठराग्निवर्धक होने के कारण शोथ तथा पाण्डुरोग का उन्मूलन कर देता है।

नवायसचूर्ण के योग और लाभ

त्रिकटु (सोंठ, कालीमरिच, पीपर), त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला), मोथा, वायविडंग (भाभीरंग) और त्रिफला। इन सब वस्तुओं के सम परिमाण में लौहचूर्ण को ९ भाग मिलाकर चूर्ण तैयार कर लें। इसके घी और मधु के साथ नित्य सेवन करने से पाण्डुरोग, हृद्रोग, कोढ़ और कामला रोग का निर्मूलन होता है।

योगराज चूर्ण का योग व लाभ

त्रिफला ३ भाग, त्रिकटु ३ भाग, चीता ३ भाग, वायविडंग ३ भाग, शिलाजीत ५ भाग, रौप्यमल (चाँदी का किट्ट) ५ भाग, सोनामाखी ५ भाग, लौहचूर्ण ५ भाग, तथा शक्कर ८ भाग। इन सबका बारीक चूर्ण बनाकर मधु में डुबो दें। तदनन्तर उसे एक लौह के स्वच्छ पात्र में रख छोड़े।

अब इसे गूलर के फल के बराबर की मात्रा में नियमित रूप से सेवन करते रहे। इसकी जीर्णावस्था में कुलथी, काकमाची (मकोय) और कपोत के अतिरिक्त अन्य प्रकतिरंजक पदार्थों का भरपूर उपभोग किया जा सकता है। इस अमृतोपम योग को योगराज के नाम से अभिहित किया गया है।

यह समस्त रोगों का विनाशक और अत्युत्तम मंगलकारी रसायन हैं। यह योगराज चूर्ण **पाण्डु**, **विष**, **खाँसी**, **क्षयरोग**, **विषमज्वर**, **अरोचकता**, **मृगी**, **कामला** तथा **बवासीर** को मिटाने वाला कहा गया है।

कामला और पाण्डु रोग का उपचार

कामला रोगी के चिकित्सार्थ पहले चिकित्सक को चाहिए कि वह रोगी को स्निग्ध बनाकर रेचक औषधों का प्रयोग करे। इसके पश्चात् ही रोगनिवारक औषधि का सेवन कराये।

हलदी, त्रिफला, त्रिकटु, वायविडंग और मण्डूर। इनके मिलित चूर्ण को घी और मधु के साथ कामला रोगी को दे। अथवा हलदी, दारुहलदी, मंडूर, त्रिफला, कुटकी के चूर्ण को घृत और शहद के साथ चाटने में उपयोग करायें।

हर्रे और हलदी—इनके समान परिमाण में मंडूर मिलाकर चूर्ण बना लें। तत्पश्चात् गुड़, मधु और जल के साथ सेवन करें। अथवा त्रिफला या गुरुच या हलदी या नीम का रस घी और शहद मिलाकर पान करने से कामला रोग जाता रहता है।

गूमा के फल का रस आँखों में अंजन के समान प्रयुक्त करना अथवा हलदी, गेरू और आँवला का चूर्ण सेवन करना लाभकारी सिद्ध होता है। आँवला, मण्डूर (लौहकिट्ट), त्रिकटु, हलदी, मधु, घी तथा शक्कर आदि पदार्थ भी कामला रोग का अतिशीघ्र नाश कर देते हैं।

विडङ्गादि लोह के योग और लाभ

वायविडंग (भाभीरंग), मुस्तक (मोथा), त्रिफला, देवदारु, षड्‌षण (सोंठ, कालीमिर्च, पीपर पिपरामूल, चव्य और चित्रक)—इनके समान भाग में मण्डूर चूर्ण को मिलाकर अठगुने गोमूत्र में डाल कर आग पर पका लें। तदनन्तर २-२ तोला की गोली बनाकर प्रतिदिन सेवन करने पर कामला और पाण्डुरोग का शीघ्र ही उन्मूलन हो जाता है।

जलाये हुए अक्षकाष्ठ तथा लौहकिट्ट को आठ बार गोमूत्र में भिगोकर चूर्ण बना लें। पुन: इसे मधु के साथ दीर्घकाल तक सेवन करते रहने पर कुम्भक नामक **पांडुरोग** भी नष्ट हो जाया करता है।

त्रिकटु, चित्रक, वायविडंग, त्रिफला, मोथा और इनके बराबर मंडूर को चूर्णित कर मट्ठा, घी, मधु या किंचित् उष्ण जल के साथ सेवन करने से कामला, पाण्डु, हृद्रोग, कोढ़, अर्श, मूर्च्छा आदि रोग दूर होते हैं। इसके अतिरिक्त कामला और पाण्डुरोग में जो-जो क्रियाएँ की जाती या सुनी जाती हैं उन्हें ही हलीमक रोग (हकलाना, तुतलाना) में भी अपनानी चाहिए।

हरिद्रादि घृत के योग व लाभ

हलदी, त्रिफला, नीम, बला (खिरेंटी) और मुलेठी। इनके द्वारा साधित सदुग्ध भैंस का घी भी कामला रोग में उपयोगी होता है।

मूर्व्वादि घृत का लाभ

मरोड़फली, कुटकी, हलदी, वासा (अडूसा), छोटीपीपर, चंदन, पितपापड़ा, त्रायमाण, कूड़ा, चिरायता, और परवल। इन सबको २-२ तोला लेकर कल्क बना लें। तदनन्तर उसे चौगुने दूध में एक प्रस्थ घी डालकर पकावे। पक जाने पर इस घृत के सेवन से **पाण्डुरोग**, **ज्वर**, **विस्फोटक शोथ**, **बवासीर** और **रक्तपित्त** का निवारण होता है।

व्योषादि घृत का लाभ

त्रिकटु, बेल का गूदा, हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, पुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा (लाल गदहपूरना), मोथा, मंडूर, पाठा, वायविडंग (भाभीरंग), देवदारु, वृश्चिकाली (एक प्रकार का पौधा) और भारंगी।

इनका कल्क बना दूध डालकर घी में परिपाक करने से व्योषाद्य घृत तैयार होता है। इस घृत के सेवन से सम्पूर्ण रोगों का शमन होना सम्भव होता है।

तिक्तक घृत का लाभ

त्रिफला, दोनों हलदी (हलदी एवं दारुहलदी), वासा (अडूसा), कचूर, कूड़ा, पितपापड़ा, त्रायमाण, कटुकी और नीम। इनको २-२ पल की मात्रा में लेकर

एक द्रोण जल में पाचित कर लें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें छोटी पीपर, मोथा, चन्दन, त्रायमाण, कूड़ा तथा चिरायते का कल्क बनाकर एक प्रस्थ घी में पका लेने पर तिक्तक घृत निर्मित होता है।

इस घृत के प्रयोग से **कुष्ठ**, **ज्वर**, **बवासीर**, **शोथ**, **ग्रहणी**, **पाण्डु**, **दाद-खाज** तथा **नामर्दी** दूर होती है।

मण्डूर वटिका का निर्माण व लाभ

त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमरिच), त्रिफला, मोथा, वायविडंग, चव्य, चीता, दारुहलदी, दालचीनी, स्वर्णमाक्षिक (सोनामाखी), गठिवन और देवदारु। इनको २-२ पल परिमाण में लेकर पृथक्-पृथक् चूर्णित कर लें।

पुन: अंजन के सदृश शुद्ध मण्डूर का दोगुना भाग लेकर अठगुने गोमूत्र में पकाकर पहले से तैयार चूर्ण में एकीकृत करके गूलर के फल के बराबर या जठराग्नि बल के अनुरूप वटी बना डालें।

इस वटी को मट्ठे के अनुपान द्वारा सेवन करें। पुराना रोग होने पर इच्छा के अनुरूप रुचिकर आहार ग्रहण करें। पाण्डुरोगियों के निमित्त यह मण्डूरवटिका जीवनदाता के रूप में सिद्ध होता है।

इसके अतिरिक्त यह कुष्ठ, अजरक, सूजन, ऊरुस्तंभ, कफज रोग, कामला, प्रमेह (धातुसंबंधी विकार), बवासीर तथा प्लीहा (तिल्ली) रोग को भी निर्मूल करता है।

पुनर्नवामण्डूर का निर्माण व लाभ

पुनर्नवा (गदहपूरना नामक घास), निशोत, सोंठ,पीपर, कालीमरिच,वायविडंग (भाभीरंग), देवदारु, चित्रक, रक्तपुनर्नवा (लाल रंग का गदहपूरना), हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, दन्ती, चविका, अजवायन, इन्द्रायण (कूड़े का फल), कटुकी, पिपरामूल और मोथा।

इन सबको समान भाग में लें और इनसे दुगुनी मात्रा में मंडूर लेकर अठगुने गोमूत्र में पका लें।

तत्पश्चात् इसे किसी चिकने पात्र में रखकर प्रतिदिन सेवन करते रहें तो यह पाण्डु, शोथ, उदरशूल, अर्श,कृमि तथा प्लीहा (तिल्ली) आदि रोगों का विनाश कर डालता है।

पंचकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ), कालीमरिच, देवदारु, त्रिफला, वायविडंग, मोथा और कटुकी। इन्हें १-१ पल लेकर चूर्ण बना लें। तदनन्तर उक्त चूर्ण से दुगुनी मात्रा में मंडूर को लेकर अठगुने गोमूत्र में पका लें। पक कर गाढ़ा हो जाने पर उसे निकाल कर रख छोड़े।

उक्त औषध की वटी २-२ तोले के परिमाण में बनाकर सेवन करने पर **पाण्डुरोग**, **अग्निमांद्य**, **अरोचकता**, **अर्श**, **ग्रहणी**, **ऊरुस्तंभ**, **हलीमक** (हकलाकर बोलना), **कृमि**, **प्लीहा** (बरवट, तिल्ली), **औदरिक** तथा **गलरोग**-समूहों का विनष्टीकरण कर डालता है।

विडङ्गादि लौह का निर्माण व लाभ

वायविडंग, त्रिफला, त्रिकटु, दारुहलदी, पीपर और मण्डूर। इसके चूर्ण का सेवन घृत-मधु के साथ किये जाने पर कामला और पाण्डुरोग का निवारण होता है।

मण्डूर, हलदी, दारुहलदी, त्रिफला और कटुकी। इनका चूर्ण घृत-मधु के साथ **कामला रोग** में लाभकारी होता हैं।

कामला तथा पाण्डुरोग में जौ, गेहूँ, चावल, मृग का मांसरस, मूँग, अरहर तथा मसूर आदि उपयोगी आहार कहे गये हैं।

रक्तपित्त रोग का उपचार

रक्तपित्त रोगी के दोष जब तक ऊर्ध्वगामी रहें और उसमें बल, मांसादि की क्षीणता न हुई हो तभी उसका रोगाकर्षण कर लेना ही उपयुक्त माना जाता है। रक्तपित्त व्यक्ति के लिए मटर का यूष तथा शक्करमिश्रित लावा का सत्तू पथ्यस्वरूप होता है। रक्तपित्त की ऊर्ध्वगामी अवस्था में सर्वप्रथम रेचक तथा अधोगामी संचरण में वामनिक औषधों का प्रयोग लाभकारी रहता है।

निशोथ, त्रिफला, सारिवा, छोटीपीपर और शक्कर। इनका मिश्रित मोदक सान्निपातिक **रक्तपित्तज्वर** का उन्मूलक होता है।

मोथा, इन्द्रयव, मुलेठी और मैनफल (मदनफल)। इनके साथ मधु और दूध मिलाकर शिशिर पदार्थों का प्रदत्त वमनकारी औषध द्वारा **रक्तपित्त** को नष्ट करता है।

सरिवन, पिठवन, मुगवन आदि वस्तुओं को मिलाकर सिद्ध की हुई पेया रक्तपित्त की अधोगामी अवस्था में लाभदायक होती है। इसमें रक्तातिसार-नाशक प्रयोग भी पूर्णरूप से किये जाने चाहिए। मांसक्षीण तथा बलहीन, बालक, वृद्ध तथा शोष रोगी में वमन-विरेचन कर्म अयोग्य है। उनमें केवल स्तम्भक प्रयोग ही किये जाने चाहिए।

अडूसा के पत्तों के निचोड़े हुए रस में मधु और शक्कर मिलाकर पान करने से भीषण रक्तपित्त का भी शमन हो जाता है।

अथवा अडूसा का कषाय, गोपीचंदन, नीलकमल, प्रियंगु, लोध, रसोत और कमलकेशर; इनको मधु और शक्कर के साथ पीने से रक्तपित्त का प्रचण्ड वेग अतिशीघ्र रुक जाता है।

'जब तक वासा तब तक जीवन की आसा'—यह एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है। अर्थात् जब तक धरती पर अडूसा की वर्तमानता है तब तक रक्तपित्ती, क्षयी और खाँसी से पीड़ित व्यक्ति के लिए चिन्ता की कोई बात नहीं है।

खरल में पेषित अडूसा के रस में तालीसपत्र मिलाकर मधु के साथ पान करने से यह रस कफ, पित्त, श्वास, खाँसी, स्वरभंग (गला बैठना) और प्रबल रक्तपित्त को नष्ट कर देता है। अडूसा, अंगूर, और हर्रे। इनके क्वाथ में शक्कर और मधु मिलाकर सेवन करना लाभकारी है। इसके द्वारा दमा, खाँसी और रक्तपित्त का विनाशन होता है।

कठूमर फल के रस में मधु मिलाकर पान करने से शीघ्र ही रक्तपित्त का नाश होता है। अंगूर, मुगवन, खिरेंटी, मुलेठी, गोखरू या शतावरी के साथ पकाया हुआ काढ़ा रक्तपित्त का दमनकारी सिद्ध होता है।

परिपक्व गूलर और गंभारी, हर्रे, खजूर और अंगूर। इन पदार्थों के साथ मधु मिलाकर अलग-अलग सेवन करने से रक्तपित्त का निवारण होता है।

इसी भाँति खदिर (खैर), प्रियंगु, कचनार और शाल्मलि (सेमल) के फूलों का चूर्ण भी मधु के साथ प्रयोग करने पर रक्तपित्त का नाश होता है।

अडूसा के रस में सात बार भिगोये हुए हरड़ या पीपर का चूर्ण बना मधु के साथ सेवन करने के फलस्वरूप रक्तपित्त का निर्मूलन होता है।

औषधों का कल्क औषध-रस में मिलित होकर पूर्णतया आर्द्र हो जाने पर ही उसका सिद्ध होना समझना चाहिए। चिकित्सकों ने भावना विधि में इसी को प्रामाणिक रूप माना है।

मधुमिश्रित हरड़ दीपक और पाचक हुआ करता है। इससे कफ, रक्तपित्त और तीव्र शूलवेदना दूर होती है।

जिस क्षण रक्तपित्ती का मुखश्वास लौह गंधवत् तथा डकार धूम के समान निकल रही हो उस समय उसे छोटी इलायची में दुगुना शक्कर मिलाकर सेवन करना उपयुक्त होता है।

एलादि गुटिका का निर्माण व लाभ

इलायची, तेजपात, दालचीनी, दाख और पीपर—इन्हें आधा पल लेवें। तदनन्तर शक्कर, मुलेठी, खजूर और अंगूरी दाख—इन्हें २-२ पल ले लें।

इन सब में मधु मिलाकर अक्ष परिमाण की गोली बना लें। इसकी एक-एक गोली प्रतिदिन खानी चाहिए।

इसके सेवन से खाँसी, साँस फूलना, ज्वर, हिचकी आना, वमन, मूर्च्छा,

मद, श्रम, थूक या कफ से रक्त आना, पिपासा, पार्श्वशूल (पसली का दर्द), अरोचकता, क्षयरोग, प्लीहा-संबंधी वायु, स्वरभंग (आवाज में भारीपन), क्षतक्षय (वक्षःस्थल का व्रण) और रक्तपित्त का उन्मूलन होता है। यह गुटिका अप्यायनकारिणी और पुष्टिदायिका होती है।

आँवले के सूक्ष्म चूर्ण को घी में भूनकर शिर पर लेपित करने से नाक से होने वाला रक्तस्राव उसी प्रकार रुक जाता है जिस प्रकार नदी के तटबंध द्वारा जल का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है।

अथवा नासा रक्तस्राव में शीघ्र ही नासिका द्वारा जल, शक्करमिश्रित दुग्ध, दाख का रस, सशर्कर हैयंगवीन घृत या गन्ने का रस डालना लाभकारी सिद्ध होता है।

अनार वृक्ष के पुष्प, दूब, आम की गुठली या परवल के पत्तों के रस का नस्य लेने से छींक के कारण उत्पन्न होने वाले रक्तस्राव को बंद कर देता है।

अथवा प्रियंगु, गोपीचंदन, लोध, रसोत को अड़ूसा के रस और मधु के साथ प्रयोग करना उचित कहा गया है। इस प्रयोग से नासिका, मुख, योनि तथा जननेंद्रिय से स्रवित होता हुआ रक्त भी रुक जाता है।

इसके अतिरिक्त शस्त्राघात से प्रवाहित होने वाला रक्त भी इस चूर्ण के द्वारा अवरुद्ध हो जाता है।

बकरी के दूध में शक्कर और अनार के फूलों का रस मिलाकर पान करने से भी रक्तप्रवाह नष्ट होता है।

जिस समय जननेंद्रिय से अधिक रक्तस्राव हो रहा हो उस समय उत्तरवस्तिकर्म करना आवश्यक बतलाया गया है। अथवा कुश, कास नामक तृण, रामशर, काले रंग का गन्ना तथा धान। इनके द्वारा निर्मित दुग्धपान करना उचित है।

दूर्वाद्य घृत का लाभ

दूर्वा (दूब), कमल पुष्प के साथ कमलकेशर, मंजीठ, शैलवालुक, शक्कर, खस, मोथा, चन्दन और पद्माख (कमलगट्टा)। इन्हें एक कर्ष की मात्रा में लेकर कल्क बना उसे चौगुने बकरी के दूध और चावल की धोवन के साथ बकरी के घी में पका लें।

उक्त घृत के पक जाने पर पान करने से नाक से होने वाला रक्स्राव (नकसीर) नष्ट होता है। कानों या नेत्रों से होने वाले रक्तस्राव में इस घृत को उस स्थान में पूरित कर देना चाहिए। अथवा श्रीखंड चंदन का उन स्थानों पर लेप लगाना भी गुणकारी होता है।

गूलर के पके हुए फल को गुड़ या मधु के साथ प्रयुक्त किये जाने पर नाक से निकलने वाला रक्त बन्द हो जाता है।

वासादि घृत का लाभ

अडूसा के सभी अंगो—फल, फूल, मूल और शाखादि को काट-छाँट कर कषाय का निर्माण करें। उस कषाय में अडूसा के कल्क (जल में पीसा हुआ औषधद्रव्य) को डालकर घी के साथ पका लें। पकने के पश्चात् इस वासादिघृत में मधु मिलाकर सेवन करने से शीघ्र ही **रक्तपित्त** का शमन हो जाता है।

शतावरी घृत का लाभ

शतावरी की जड़ का निकाला हुआ रस २ प्रस्थ, इस रस के बराबर दूध तथा घी १ प्रस्थ। इनकों आग पर रखकर एक साथ पकावें। पकाते समय उसमें जीवक, काकड़ासिंघी, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, अंगूरी दाख, मुलेठी, मुगवन, मषवन, बिदारीकन्द और रक्तचन्दन। इनका कल्क बनाकर उसके सिद्ध हो जाने पर शक्कर और शहद मिलाकर उबालें।

इस भाँति निर्मित किया हुआ यह घृत रक्तपित्त और वातरक्त संबंधी रोगों में लाभकारी होता है। यह एक प्रकार का उत्तम वाजीकरण भी कहा जाता है। इससे **अंगदाह**, **शिरोदाह**, **पित्तजज्वर**, **योनिशूल**, **योनिदाह** तथा **पित्तोत्पन्न मूत्रकृच्छ्र** रोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार वायु के प्रबल झोंके से मेघ समूह तितर-बितर हो जाते हैं। इसके द्वारा शक्ति, तेज और जठराग्नि का वर्धन होता है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि इस शतावरी घृत में चौथाई शक्कर और मधु की मात्रा मिलानी चाहिए, किन्तु वासाघृत में केवल चौथाई मधु का ही मिश्रण करना उचित है।

खण्डकूष्माण्डक घृत का लाभ

सर्वप्रथम कुम्हड़े के छिलके तथा बीज आदि निकालकर उसे १ तुला (१०० पल) लेकर आग पर पकावें। जब वह पककर स्वेदित हो जाय तब उसे तपाये हुए ताँबे के पात्र में १प्रस्थ घी के साथ उन स्वेदित टुकड़ों को डालकर कलछी से घोंटते हुए पकावें।

पकने पर जब उस पाक का रंग मधु-जैसा दीख पड़े तब उसमें पीपर और अदरक २-२ पल, जीरक २ पल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, कालीमिर्च और धनिया आधा-आधा पल मिला दें। तदनन्तर उसे कलछी से घोंटता रहे।

पूर्णरूप से पाक तैयार हो जाने पर किसी स्वच्छ पात्र में रखकर घी से आधा भाग मधु का मिश्रण कर दें।

इस रीति से परिपक्व किया हुआ कूष्मांडघृत रक्तपित्त, क्षतक्षय (वक्षःस्थल में व्रण), खाँसी, साँस फूलना, दुर्बलता, वमन, प्यास तथा ज्वर में बलाबल के अनुसार सेवन करें।

यह अपनी पौष्टिकता के फलस्वरूप मानव को तरुणावस्था में लाकर नवीन उत्साह पैदा करता है। साथ-ही-साथ क्षतक्षय रोगों को दूर कर स्वरभंग को नष्ट करता है।

इस कूष्माण्ड रसायन को स्वयं देवचिकित्सक अश्विनीकुमारों ने निर्मित किया है। अतः इसे ब्रह्मचारी, अक्रोधी और सत्यभाषी व्यक्ति को प्रयोग में लाना चाहिए।

शतावरी, गुरुच, गोरखमुण्डी, खिरेंटी, मुसली, खदिर, त्रिफला, दालचीनी, भारंगी, पुष्करमूल—ये सब वस्तुएँ ५ पल की मात्रा में लेकर एक द्रोण जल में पकावें।

आठवाँ भाग शेष रह जाने पर त्रिफला या माक्षिक द्वारा मारित उत्तम लौहचूर्ण को उसमें १२ पल मिला दें। पुनः उसमें १६ पल घी डालकर किसी ताँबे के पात्र में गुड़पाक की भाँति आग पर पकावें।

पक जाने पर उसमें आधा पल मधु मिलाकर उसके साथ वंशलोचन, शिलाजीत, दालचीनी, काकड़ासिंघी, वायविडंग (भाभीरंग), पीपर, सोंठ और स्याहजीरा। इन सबको १-१ पल तथा त्रिफला, धनिया, तेजपात, कालीमिर्च और केशर— इनके २-२ पल लेकर चूर्णित कर मिला दें।

इस प्रकार निर्मित द्रव्य को किसी चिकने पात्र में रखकर शीतऋतु में २ तोले की मात्रा में सेवन करें। इसके अनुपानस्वरूप गाय का दूध, मांसरस, पौष्टिक और भारी आहार आदि ग्रहण करें।

इसके प्रयोग द्वारा प्रदूषित रक्तपित्त, क्षयरोग, दुर्बलता, वातपित्त, शीतपित्त (जुलपित्ती), प्रमेह, क्लेद, शोथ, पाण्डु, कोढ़, प्लीहा (तिल्ली), जलोदर, रक्तस्राव, निरोध एवं अम्लपित्त (भोज्य पदार्थ का खट्टा होना) आदि का निवारण होकर **नेत्रज्योति** का वर्धन होता है।

यह पौष्टिक, **प्रीतिवर्धक**, **नीरोगताकारक**, **पुत्रदायक**, **जठराग्निवर्धक**, **कान्तिवर्धक** तथा **स्फूर्तिदायक** कहा गया है।

रक्तपित्त रोगी का पथ्य

बकरी, कबूतर, तीतर, मुरगा, कुलिंग, रुरु मृग आदि जीवों का मांस रक्तपित्त में प्रयोग करना उपयोगी होता है। इसके अतिरिक्त नारियल का पानी, चौपतिया, बथुआ नामक शाक, सूखी मूली, जीवन्ती, परवल, तुम्बीफल या वार्ताकुफल, बैगन, पक्वान्न, खर्जूर, मीठा, अनार, ककार आदि वाले पदार्थ, क्षतक्षय में गुणकारी पदार्थ, धान, साठी, नीवार आदि धान्य तथा मूँग, मसूर आदि की दालें भी **रक्तपित्त** में लाभदायक होती हैं।

असाध्य रक्तपित्त का निदान

धूप, व्यायाम, शोक, मार्गगमन तथा मैथुन आदि के अतिसेवन, तीक्ष्ण, उष्ण, क्षार, नमकीन, खट्टा और कड़ुआ रसों के सेवन करने से पित्त प्रकुपित होकर अपने-अपने धातुओं के साथ जलनशील हो उठता है जिसके परिणामस्वरूप ऊर्ध्वद्वार, अधोद्वार अथवा दोनों ही मार्गों से रक्तस्राव का संचरण होने लगता है।

ऊर्ध्वमार्ग में रक्तसंचरण होने से नाक, कान, आँख और मुख तथा निम्नमार्गगामी होने पर जननेंद्रिय, गुदा या योनि से रक्तप्रवाह होने लग जाता है।

इसका असाध्य लक्षण इस प्रकार से कहा गया है—जब रोगी लाल-लाल आँखे किये मुख से रक्तवमन करने के पश्चात् उसे ध्यान से देख रहा हो अथवा रक्तवमन के अनन्तर मैथुन कर्म करने वाले रक्तपित्ती के प्राण नहीं बचते। वह अवश्य ही मृत्यु का ग्रास बन जाता है।

राजयक्ष्मा-क्षय रोग (टी.बी.) का उपचार

षडङ्गयूष का निर्माण और लाभ

कुम्हड़ा, जौ, कुलथी, सोंठ, अनार और आँवला। इन छह पदार्थों को समाविष्ट करके बकरी के मांसरस का पान करना शोष (सूखा रोग) रोग में लाभप्रद सिद्ध होता है। इस रस के सेवन से पीनस (नकसीर) का रोग निर्मूल हो जाता है।

इसकी निर्माण विधि इस प्रकार बतलायी गयी है—औषध पदार्थों से अठगुना मांस और समस्त मिलित द्रव्यों से अठगुना जल डाल कर अग्नि पर पकावें। पकने पर जब चौथाई भाग शेष रह जाय तब उसे घी में संस्कारित कर लें। इसी को षडंगयूष नाम दिया गया है।

त्रयोदशाङ्ग का योग और लाभ

धनिया, छोटीपीपर, सोंठ और दशमूल। इनके जल का पान करने से पार्श्वशूल (पसली की पीड़ा), ज्वर, श्वास तथा पीनस आदि रोगों से मुक्ति मिलती है।

अश्वगंधा (असगंध), गुरुच, शतावर, दशमूल, बला (खिरैंटी), अड़ूसा, कूड़ा और अतीस। इनके दुग्धरस के पान करने पर क्षयरोग का विनाश होता है।

अथवा दशमूल, खिरेंटी, रास्ना, कूड़ा, देवदारु और सोंठ। इनके साथ पकाया गया काढ़ा पीने से **क्षयरोग** में होने वाले घाव, खाँसी आदि औपद्रविक लक्षणों का शमन होता है।

वायविडंग (भाभीरंग), शिलाजीत, कान्तिसार, गिलोय (गुरुच) और हरड़। इनके सेवन से प्रबलतम क्षयरोग का भी निवारण होता है।

क्षयी रोगी के लिए मक्खन में शक्कर और मधु मिलाकर चाटना उपयोगी होता है।

इसके अतिरिक्त गाय के थन से तुरन्त का निकाला हुआ दूध तथा घी में मधु मिलाकर सेवन करने से भी पुष्टिककरण होता है। शीतावला (कगहिया), वंशलोचन, पीपर, और दालचीनी।

इन्हें एक मास तक मधु-घृत के साथ सेवन करने के पश्चात् इसकी मात्रा बढ़ाकर दुगुनी कर देनी चाहिए।

धान, साठी का चावल (दो मास में पककर तैयार हो जाने वाला चावल), गेहूँ, जौ, मूँग तथा दिव्य औषधियों से निःसृत मदिरा, जांगल प्रदेशीय पक्षी तथा हिरन आदि भी शोषग्रस्त व्यक्तियों के लिए पथ्यस्वरूप हितकारी होते हैं।

दशमूल में दूध डालकर उससे निकाले गये घृत में मधु मिलाकर अथवा मट्ठे के साथ सेवन करने से स्वरभंग का शुद्धिकरण होता है।

इसके अतिरिक्त यह **शिरोवेदना**, **पार्श्वशूल**, **श्वास**, **खाँसी** तथा **ज्वर** को भी नष्ट कर डालता है। इतना ही नहीं, बल्कि यह **शोषरोगी** के लिए परमौषधि के रूप में सिद्ध होता है।

सौंफ, तगर, कूड़ा (कोरैया), मुलेठी और देवदारु। इन्हें पीसकर घी में मिला पीठ, पसली और कंधों में लेप लगाने से उनकी पीड़ा का निवारण होता है। कोह के चूर्ण को कई बार अडूसे के रस में भिंगोकर घी, मधु और मिश्री मिलाकर चाटने से क्षय, खाँसी और रक्तपित्त दूर होता है।

बलादिमन्थ घृत का लाभ

खिरेंटी, अजमोदा, आँवला, हरड़, बहेड़ा, खैर वृक्ष की गोंद, साल (सखुआ) वृक्ष की राख, वायविडंग (भाभीरंग), भिलावाँ, चित्रक, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमिर्च) तथा काली मूँग। पहले इन सब को जल में पकाकर काढ़ा बना लें।

पुनः इस क्वाथ में घी मिलाकर दोबारा पका डालें। पक जाने पर आग से नीचे उतारकर इसमें मिश्री ३० पल, वंशलोचन ६ पल मिला दें।

अब उक्त क्वाथ में घी से दुगुना मधु मिलाकर मथनी से मथ डालें। इसे प्रातःकाल नित्यप्रति १ पल की मात्रा में खाकर तत्क्षण ही दुग्धपान कर लें। यह घृत अत्यन्त विशुद्ध, नेत्रज्योतिवर्धक तथा आयुष्यवर्धक होता है।

इसी कारण यह प्रबल **यक्ष्मा**, **पाण्डुरोग** तथा **भगन्दर** (गुदाद्वार का रोगविशेष) रोगनाशक होता है।

इसके पकाने की विधि यह है कि उक्त औषधद्रव्य (खिरेंटी, अजमोदा आदि) २-२ पल तथा उससे अठगुना जल रहे। जब पकाने पर आठवाँ भाग शेष रह जाय तब इसमें १ प्रस्थ घी डालकर पका लेना चाहिए।

गेहूँ, पीपर, वासा (अडूसा) और सिंघाड़ा। इनके चूर्ण में मधु मिलाकर उसे खज से मूर्छित कर लें। तत्पश्चात् गुड़ और घी में भिंगोकर भोजपत्र में लपेट लें। एक पल की मात्रा में सेवन करने के अनन्तर बाद में दूध या मदिरा का पान करें तो यह सर्पिगुड़ सूखापन, खाँसी, छाती के घाव, काम या स्त्रीभार से खिंचे होने पर, रक्तवमन, ज्वर, पीनस, पसली का दर्द, शिरोव्यथा, स्वरभंग तथा वर्णभेद को दूर करता है।

च्यवनप्राश का निर्माण और लाभ

बेल का गूदा, अरणिकाष्ठ, सोनापाठा, कम्भारी, लालवर्णीय लोध, चारों पर्णी (सरिवन, पिठवन, मुगवन, मषवन), पीपर, गोखरू, दोनों कटेरी (छोटी एवं बड़ी), अतीस, आँवला, दाख, जीवन्ती, कोरैया, अगरु, हर्रे, गुरुच (नीमवृक्ष पर फैलने वाली एक लताविशेष), ऋद्धि, जीवक, काकड़ासिंघी, कचूर, मोथा, पुनर्नवा (गदहपूरना), मेदा, छोटी इलायची, नीलाकमल, चंदन, बिदारीकन्द, अडूसा की जड़, काकोली और काकजंघा।

ये सब वस्तुएँ १-१ पल लेकर एक द्रोण जल में ५०० नग आँवले का फल डालकर आग पर पकावें।

तदनन्तर उसमें ५० पल मिश्री डालकर लेह की भाँति गाढ़ा बना लें। इसके तैयार होकर ठंढा होने पर मधु ६ पल, वंशलोचन ४ पल, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात और केशर १०१ पल लेकर मिश्रित कर दें। इस रीति से यह उत्तम **च्यवनप्राश** निर्मित हो जाता है।

यह रसायन मुख्यतया **कास-श्वासहारक**, **क्षतक्षयविनाशक**, दुर्बल बालकों तथा वृद्धों के शरीर का पुष्टिकारक कहा गया है।

इसके प्रयोग से **स्वरभंग**, **हृद्रोग**, **छाती का व्रण**, **वातरक्त** (जब वायु का प्रवेश रक्त में हो गया हो), **पिपासा**, **मूलरोग** तथा **वीर्यविकार** भी दूर होते हैं।

इसकी उतनी ही मात्रा ग्रहण करनी चाहिए जिससे भोजन में अरुचि न उत्पन्न हो। इसके प्रयोग के परिणामस्वरूप तपस्यारत दीमकों से आच्छादित अतिवृद्ध च्यवन मुनि ने भी नवयौवन को प्राप्त कर लिया था। इसी पौराणिक कथा के आधार पर इसे च्यवनप्राश का नाम दिया गया है।

इस रसायन के सेवन से बुद्धि, स्मरण-शक्ति, तेज, नीरोगता, आयुष्यवर्धन, इंद्रिय-बलवर्धन,, पुंसत्व की प्राप्ति, जठराग्नि की प्रबलता तथा रूप-रंग का निखार होता है, साथ ही वायु की साम्यावस्था भी बनी रहती है।

अगस्तहरीतकी का निर्माण और लाभ

दशमूल, क्रौंच के बीज, शंखपुष्पी, कचूर, खिरेंटी, गजपिप्पली, अपामार्ग (चिचिड़ा), पिपरामूल, चित्रक, भारंगी और पुष्करमूल—इन सबको २-२ पल, यव ४ प्रस्थ और हरड़ १०० नग। इन सबको २० प्रस्थ जल में पका लें। यव के भली प्रकार वाष्पित हो जाने पर उस काढ़े को कपड़े से छान लें।

अब उसमें हरड़ १०० नग , गुड़ १०० पल, घृत ३२ तोले और तैल भी ३२ तोले डालकर पिप्पलीचूर्ण के साथ पुन: पाचित करें। पककर ठण्ढा हो जाने पर उस लेह में १६ तोले मधु भी मिला दें। इन हरड़ों में से प्रतिदिन दो हरड़ों को खाकर लेह भी चाटें।

इस रसायन के उपयोग से वलीपलित (असमय में ही केशों की श्वेतता तथा त्वचा पर झुर्री पड़ना) और विरूपता का निवारण होकर तेज, आयु और बल का वर्धन होता है।

इसके साथ ही **क्षय**, **खाँसी**, **श्वास**, **हिचकी**, **विषमज्वर** (टायफाइड), **ग्रहणी**, **अर्श**, **हृद्रोग**, **अरोचकता**, **पीनस** आदि रोग उन्मूलित होते हैं।

यह रसायन अगस्त्य ऋषि द्वारा निर्मित कहा गया है। इसके सेवन-काल में पित्तवृद्धि की प्रतीति होने पर इसकी सायंकालीन मात्रा घटा देनी चाहिए।

जीवन्त्याद्य घृत का लाभ

जीवन्ती, मुलेठी, अंगूर, इन्द्रयव, कचूर, पुष्करमूल, कटेरी, गोखरू, गंधरस, नीलकमल का पुष्प, आँवला, दुरालभा और पीपर। इनको बराबर भाग में लेकर पीस डालें और इसे बकरी के घी में चिकित्सक पका लें।

पक जाने पर इसके सेवन से बढ़े हुए रोगों का प्रशमन होता है। इस घृत के द्वारा **राजयक्ष्मा**, **श्वास**, **खाँसी** आदि ग्यारह प्रकार के औपद्रविक लक्षणों का विनाश होता है।

षडङ्गघृत का लाभ

छोटीपीपर, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ, यवक्षार (जवाखार)। इन्हें दूध में पकाकर तैयार किये हुए घृत से नाड़ी तथा इंद्रियों का शोधन होता है। छोटीपीपर तथा गुड़ से साधित और बकरी के दूध से मिलित घृत रोगियों की भूख को बढ़ाता एवं खाँसी को मिटाता है।

छागलाद्य घृत का लाभ

३२ सेर जल में बकरी के मांस का क्वाथ तैयार कर लें। जब क्वाथ का चौथाई भाग शेष रह जाय तब उसमें एक प्रस्थ घी डालकर पाचित करें। तत्पश्चात् ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, काकड़ासिंघी, काकोली और क्षीर- काकोली—

इन्हें अलग-अलग एक-एक पल लेकर कल्क बना लेवें। अब सिद्ध किये गये उक्त घृत को उतारकर शक्कर ८ पल और शहद ३२ तोले के परिमाण में मिला दें।

इसे नित्यप्रति प्रात:काल १-१ पल की मात्रा में पान करें। यह घृत दुःसाध्य राजयक्ष्मा, क्षतक्षय, कई प्रकार की खाँसी (सूखीखाँसी, कुकुरखाँसी आदि), पसली की पीड़ा, अरोचकता, स्वरभंग, वक्षस्थल के रोग तथा कठिनतम दमा रोग का निवारण कर देता है।

इसके साथ ही मांसक्षीणता से कृशकाय व्यक्ति में मांसवर्धन, क्षुधावर्धन तथा बलवर्धन का कार्य भी निष्पन्न करता है।

मांस घृत निर्माण और लाभ

पहले २ द्रोण जल में १०० पल बकरे का मांस पकावें। पककर आठवाँ भाग शेष रह जाने पर उसमें एक प्रस्थ घी मिलाकर पुन: पका लें। तदनन्तर ३२ तोले जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा ऋद्धि, वृद्धि, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, मषवन और जीवन्ती) का कल्क बनाकर पाचित किये हुए मांसघृत में मांसरस मिलाकर पान करने से **पित्तज रोग**, **भीषण खाँसी**, **दमा**, **राजयक्ष्मा**, **पसली की पीड़ा**, **हृत्पीड़ा** तथा **मैथुनक्रिया** अधूरी रहने के फलस्वरूप उत्पन्न शोष (सूखापन, सुखंडी) का भी शमन होता है।

बलागर्भघृत का लाभ

दो प्रस्थ दशमूल के कषाय में, एक प्रस्थ मांसरस में बलागर्भ के कल्क को समायोजित कर सिद्ध किया गया तथा एक प्रस्थ दूध में संयुक्त घृत भी सभी प्रकार के आघातों से उत्पन्न यक्ष्माशूल, क्षतक्षय और खाँसी का अपहारक कहा गया है।

बलादिघृत का लाभ

बला (खिरेंटी), गोखरू, कटेरी, पिठवन, धव के फूल, काकोली, नीम, पित्तपापड़ा, पिपरामूल, त्रायमाण और दुरालभा।

इनका कषाय निर्मित कर भुईआँवला (भूमि पर फैलने वाली आँवले की एक प्रजाति जिसमें आँवले के अत्यन्त छोटे-छोटे फल लगते हैं)।

इसी से इसे भूमिआँवला कहा जाता है। इसे पीलिया रोग में अत्यधिक गुणकारी माना जाता है।

कचूर, दाख (मुनक्का), पुष्करमूल, मेदा और आँवला मिला दें। इस कषाय में पकाया हुआ घृत और दुग्ध के प्रयोग से यह **सर्वज्वरनाशक**, **क्षय** तथा **खाँसी** का निवारक एवं **शिरोव्यथा** तथा **पार्श्वशूल** का शामक बन जाता है।

चन्दनादि तैल का प्रयोग और लाभ

चन्दन, सुगन्धवाला, नखी नामक द्रव्य, कूठ, मुलेठी, शिलाजतु, कमलगट्टा,

मंजीठ, देवदारु, छोटीइलायची, रोहिष सोधिया, केशर, तेजपात, तैल, सुरामांसी, शीतलचीनी, प्रियंगु का पुष्प,मोथा, हलदी, दारुहलदी , दोनों सारिवा, कुटकी, लौंग, अगरु, कुंकुम, दालचीनी, रेणुका, मालकंगनी (ज्योतिष्मती)। इसमें चौगुना दही का पानी मिलाकर पकावें। पकने पर जब दही के पानी का रंग लाक्षा (लाह) रस के समान दिखाई दे तो इसे परिपक्व समझना चाहिए।

इस तैल से **भूत-ग्रहादिकों के उपद्रवों की शांति**, **बलवर्धन**, **रंगों का निखार**, **मृगी**, **ज्वर**, **उन्माद**, **जादू-टोना**, **अलक्ष्मी आदि का विनाश**, **आयुवर्धक**, **पुष्टिकारक** तथा एक श्रेष्ठ वशीकरण का कार्य निष्पादित होता है।

खिरेंटी, अश्वगंधा (असगंध), कम्भारी, शतावर और पुनर्नवा (गदहपूरना नामक घास)। इसे प्रतिदिन दूध के साथ सेवन करने से क्षतक्षय रोग का शमन होता है।

अथवा इक्ष्वालिका (गन्ने के समान एक तृणविशेष), मृणाल (कमल का डंठल), भद्रमोथा, कमलकेशर और चंदन। इनका काढ़ा बना दूध और मधु के साथ पान करने से वक्षस्थल में होने वाला व्रण जुड़ जाता है।

खिरेंटी, नागबला (गुलसकरी), कोह और नेत्रवाला। इनके साथ पाचित घृत में चौथाई भाग में मुलेठी के कल्क को मिलाकर सेवन करने पर **हृत्प्रदेश के रोग**, **शूल**, **क्षतक्षय**, **रक्तपित्त**, **खाँसी**, **वातरक्त** आदि रोगों का उन्मूलन होता है। क्षतक्षय रोग में पूर्वकथित कूष्माण्ड रसायन भी विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध होता है।

यक्ष्माग्रस्त रोगी के लक्षण

पूर्णरूप से यक्ष्माग्रस्त रोगी में निम्नलिखित छह या तीन प्रकार के लक्षण पाये जाते हैं जो इस प्रकार से कथित हैं, जैसे—खाँसी, अतिसार, पसली में पीड़ा, स्वरभेद और अरोचकता अथवा खाँसी, श्वास और रक्तविकार।

राजयक्ष्मा के छहों लक्षणों की उपस्थिति में अन्नारुचि, सम्पूर्ण शरीर में ज्वर का प्रकोप, खाँसी, साँस फूलना, रक्त का दिखाई पड़ना और स्वर का परिवर्तन। अर्थात् जब ये सभी लक्षण एक साथ पाये जायँ तो उसे षड्रूप यक्ष्मा कहा जाता है।

यदि कोई युवा पुरुष पूरी तरह से यक्ष्माग्रस्त होकर भी एक हजार दिनों तक जीवित रहने की आकांक्षा करता हो तो उसे श्रेष्ठ चिकित्सकों का आश्रयण कर गुरुभक्ति में संलग्न रहना उचित होता है।

उसे मांगलिक साधनों के द्वारा स्वयं को सदैव ही प्रफुल्लित रखना आवश्यक होता है। मोह-माया का परित्याग कर धैर्य धारण करने से भी वह रोगी दीर्घकाल तक जीवित रह सकता है।

क्षयी रोगी को शोक, स्त्रीप्रसंग, प्राणवियोग का भय, दुष्ट विषम तथा

भयोत्पादक कारणों को मन से निकाल देना ही हितकर है। उसे गुरुजनों, विप्रो तथा देवताओं का पूजन-अर्चन करना एवं विप्रों द्वारा कथित पुण्यमयी कथा का श्रवण करना उचित है।

ऐसा आचरण करने पर भीषण क्षयवाला रोगी चार मास, छह मास, आठ मास, एक वर्ष अथवा ढाई वर्षों तक जीवनधारण करने में समर्थ हो सकता है, किन्तु पूर्णरूपेण रोगमुक्त कदापि नहीं हो सकता।

खाँसी का उपचार

पंचमूल के क्वाथ में पीपर का चूर्ण मिलाकर दही के पानी के साथ पान करने से **वातोत्पन्न खाँसी** दूर होती है। अथवा भारंगी, दाख, कचूर, काकड़ासिंघी, छोटीपीपर और सोंठ। इन्हें गाढ़ा पकाकर गुड़ और तैल के साथ सेवन करने से भी **वातज खाँसी** निर्मूल हो जाती है।

सोंठ, जवासा, काकड़ासिंघी, दाख, कचूर और शक्कर। इनका एक साथ चूर्ण बना तैल मिलाकर गाढ़ा कर लें। इसके उपयोग से कठिन **वातजन्य खाँसी** भी नष्ट होती है।

खिरेंटी, दोनों कटेरी (छोटी-बड़ी), अडूसा और दाख। इनका काढ़ा बना जल, शक्कर मधु मिलाकर चाटने से **पित्तज खाँसी** दूर हो जाती है।

पंचमूल (रामशर, कुश, कास, डाभ और गन्ना), छोटी पीपर तथा दाख। इनके कषाय द्वारा निर्मित दूध में शक्कर और मधु मिलाकर पान करें। अथवा दाख, आँवला, खजूर, छोटी पीपर तथा कालीमिर्च।

इन्हें गाढ़ा लेह के समान बनाकर मधु और घृत के साथ प्रयोग करने से पित्तज खाँसी नष्ट हो जाती है।

खजूर, छोटीपीपर, मुनक्का, शक्कर, लावा और जटामांसी। इनका लेह मधु-घृत के साथ चाटने पर पित्तजनित कास का उन्मूलन होता है।

अथवा मूँग, आँवला, जौ, अनार, छोटी बेर (झड़बेरी), सूखा अदरक, सोंठ, पीपर और कुलथी। इन नव पदार्थों से निर्मित यूष कफज रोगों का विनाश करता है।

कूठ, कट्फल, (कायफल), भारंगी, सोंठ और पीपल। इनका क्वाथ बनाकर कफाधिक्य, खाँसी, श्वास तथा हृद्ग्रह में पान करना लाभप्रद रहता है। खरल में पीसकर निकाले हुए अदरक के रस में मधु मिलाकर पीने से श्वास, खाँसी, पीनस तथा शीतज्वर नष्ट होते हैं।

छोटीपीपर का चूर्ण दशमूल के रस में मिश्रित कर पीने से ज्वर, पसली की पीड़ा, श्वास तथा कफोत्पन्न खाँसी का उन्मूलन होता है।

कट्फल (कायफल), पिठवन, भारंगी, मोथा, धनिया, वच (कुलंजन), हर्रै, सोंठ, पित्तपापड़ा, काकड़ासिंघी और देवदारु। इनका काढ़ा जल में पकाकर हींग और मधु के साथ पान करने से वातज-कफज खाँसी, कंठरोग, मुख की पीड़ा, श्वास, ज्वर और हिचकी में लाभ मिलता है।

वात-कफोत्पन्न खाँसी में तालीसादि मोदक का उपयोग करें, किन्तु पित्तज कास में वंशलोचन के साथ सेवनीय होता है।

तालीसाद्य मोदक का प्रयोग

तालीसपत्र १ भाग, कालीमरिच २ भाग, सोंठ ३ भाग, छोटी पीपर ४ भाग, वंशलोचन ५ भाग और दालचीनी तथा इलायची आधा-आधा भाग एवं पिप्पली से अठगुना शक्कर का भाग। इन सबको एक साथ कूट-पीसकर चूर्ण बना लें।

इसके सेवन से **खाँसी, श्वास** तथा **अरोचकता** दूर होती है। यह चूर्ण अग्नि-प्रज्वालक होने के फलस्वरूप हृद्रोग, पाण्डु, ग्रहणी, प्लीहा (बरवट), सूखापन, ज्वर, वमन, अतिसार,, शूल आदि का नष्टीकरण करता है और अचेतन वायु को चेतनशील बनाता है।

इसे सितोपलादि चूर्ण के नाम से भी जाना जाता है, किन्तु इसे अग्नि में पाचित कर गुटिका का रूप देने से तालीसादिमोदक बन जाता है। अग्निसंसर्ग के परिणामस्वरूप इसमें चूर्ण से भी अधिक हलकापन आ जाता है।

पित्तज-कफज खाँसी में, विशेषतया रक्तपित्त की अवस्था में कुचलकर अड़ूसा की पत्तियों से निकाले हुए रस में मधु या शक्कर डालकर पीना उपयोगी सिद्ध होता है। क्षतज कास में बल्य तथा पौष्टिक पदार्थों (कूष्माण्डक रसायन आदि) का तथा पित्तजनित खाँसी में मधुर औषधियों का सेवन सफलताकारक होता है।

धनिया, सेंधा नमक, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमिर्च), वायविडंग (भाभीरंग), कूड़ा और हींग। इन्हें लेह की भाँति पककार उस समय प्रयुक्त करना चाहिए जिस समय खाँसी, श्वास और हिचकी की प्रबलता हो।

मुलेठी, छोटीपीपर, दाख, लावा, काकड़ासिंघी और शतावर—इनसे दुगुना वंशलोचन तथा चौगुनी मात्रा में शक्कर लेकर चूर्ण बना लें। क्षतज कास से मुक्ति पाने हेतु इस चूर्ण का उपयोग मधु और घृत के साथ करना उचित है।

पीपर, मुलेठी, मुनक्का तथा पके हुए कंटकारी के फल। इनका लेह बनाकर मधु-घृत के साथ चाटने से **क्षतज कास** का निवारण होता है। अथवा समस्त प्रकार

के श्वास-कास रोगों में हरड़, सोंठ, मोथा में गुड़ मिलाकर गोली बना मुख में धारण करने से रोगमुक्ति मिलती है। यदि केवल बहेड़े को मुख में रखकर चूसा जाय तो भी उक्त फल मिलता है।

मैनसिल, हरताल, कालीमिर्च, जटामांसी, मोथा , गुड़ तथा शिलारस के पानोपरान्त गुड़ के साथ गुनगुना दूध पीना उपयोगी कहा गया है।

उक्त प्रकार के प्रयोग द्वारा वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज तथा सन्निपातज— ये पाँचों प्रकार के **कास** निर्मूल हो जाते हैं चाहे वे कितने ही असाध्य क्यों न हों।

बेर वृक्ष की पत्तियों को मैनसिल से लेपित कर सुखा डालें। पुन: उसे खाकर दूध के साथ शिलारस के पान करने से कष्टकारी खाँसी भी दूर हो जाती है।

कालीमरिच १ कर्ष, छोटी पीपर १ कर्ष अनार आधा पल, गुड़ २ पल, जवाखार आधा पल। असाध्य खाँसी में भी इसका चूर्ण लाभप्रद होता है। अथवा खाँसी से बलगम या पीब निकलने पर भी यह उपयोगी सिद्ध होता है।

अर्क (मदार) की छाल और शक्कर, इनके अर्ध भाग में त्रिकटु का चूर्ण बनाकर अग्नि में डाल दें तथा नलिका के द्वारा इनका धूम्रपान करें। इसके पश्चात् पान या दूध का प्रयोग करे।

इस प्रक्रिया के द्वारा पंच प्रकार के कास शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है।

पीपरमिश्रित कंटकारी का क्वाथ पीने से सभी प्रकार की खाँसी दूर होती है। अथवा लौंग, जायफल और छोटी पीपर—इनके अक्ष प्रमाण की मात्रा में आधा मरिच और ४ पल सोंठ मिलाकर सेवन करना भी गुणकारी होता है।

उक्त वस्तुओं को समान भाग में लेकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण के प्रयोग से खाँसी, ज्वर, भूख का अभाव, प्रमेह, प्लीहा, श्वास, मन्दाग्नि तथा ग्रहणी रोग नष्ट हो जाते हैं।

अथवा दशमूल के काढ़ा में भारंगी का कल्क डालकर घी में पकावें। पुन: इसे मुरगा या तीतर पक्षी के मांसरस में पका लेने पर यह वातजन्य कास को दूर करता है।

दशमूल का रस ८ सेर, घी १ प्रस्थ तथा पुष्करमूल, कचूर, बोल, मोचरस, त्रिकटु और हींग १-१ अक्ष लेकर इनके कल्क को पका लें। इस घृतपान के अनन्तर दूध पीने से वातज-कफज खाँसी नहीं रह जाती।

मूल, पत्र और टहनी से निकाला हुआ कंटकारी (भटकटैया) का रस ८ सेर लेकर एक प्रस्थ घी में निम्न वस्तुओं को डालकर पकावें।

वे वस्तुएँ इस प्रकार हैं—खिरेंटी, त्रिकटु, वायविडंग, कचूर, चीता, सोंचर नमक, जवाखार, बोल, अड़ूसा, कूठ, बिछुआ नामक घास, बृहती, हर्रे, अजवायन, अनार, ऋद्धि, मुनक्का, पुनर्नवा (गदहपूरना), दुरालभा, अम्लबेंत, काकड़ासिंघी, आँवला, भारंगी, रास्ना और गोखरू। इनका कल्क डालकर घी में पकावें।

यह घृत पाँच प्रकार की खाँसी, श्वास तथा हिचकी में उत्तम फलदायक होता है। अच्छी प्रकार से पकाया हुआ यह घृत सभी **कफजनित रोगों** को दूर करता है।

रास्ना, दशमूल और शतावर—इन्हें १-१ पल लेकर एक द्रोण जल में पकावें। इसमें कुलथी, बेर और जौ १ सेर लेकर मिला दें तथा उसमें ५० पल बकरी का मांस भी डाल दें। पक कर चौथाई भाग रह जाने पर उसमें ८ सेर घी और ८ सेर दूध डालकर १-१ पल जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुलेठी, मुगवन, मषवन तथा जीवन्ती) का कल्क मिलाकर पकावें। इसे वातरोगों में अवस्थानुसार नस्य, पान तथा बस्तिकर्म द्वारा प्रयुक्त करें।

रास्ना, खिरेंटी, त्रिकटु और गोखरू। इनके कल्क के साथ पाचित घृत कंटकारी रस के साथ पान करने से पाँचों प्रकार की खाँसी का निर्मूलन होता है।

एक प्रस्थ दशमूल के रस में ४ प्रस्थ घी डालकर उसमें जवाखार, सज्जीखार तथा पंचकोल का कल्क मिलाकर पकावें। इस घृत के प्रयोग से खाँसी, हृत्शूल, पार्श्वशूल, हिचकी और श्वास के रोगों का निवारण होता है।

तालीसपत्र, चित्रक, केशर, अजवायन, सुगंधवाला, चव्य, अम्लबेंत, त्रिकटु, दालचीनी, इलायची और तेजपात। इन्हें बराबर-बराबर लेकर चूर्णित कर गुड़ में वटी बना लें।

इस वटी के सेवन से खाँसी, दमा, अरुचि, पीनस (नकसीर), हृद्रोग, कंठावरोध, वाक्रोध, ग्रहणी, बवासीर तथा अग्निमांद्य रोग नष्ट होते हैं।

हिचकी एवं श्वास का उपचार

शीतलचीनी, बहेड़ा, रसांजन, लाख (लाह), कटुकी, कचनार, गेरू, पीपर, आँवला, सोंठ, कसीस और शक्कर। इन्हें समान भाग में और इनके साथ ही कैथ (फलविशेष), पाटला के फल तथा फूल, दाख, खजूर और मोथा—इन्हें चौथाई भाग में लेकर मधु डालकर लेह के समान गाढ़ा बनाकर उपयोग करें। यह मधुमिश्रित होने के फलस्वरूप हिचकी को दूर करता है।

पीपर और शक्कर में मुलेठी को मधु के साथ तथा सोंठ और गुड़ को एक साथ मिलाकर उपयोग करना हिचकी निवारक कहा गया है।

यदि हिचकी से पीड़ित व्यक्ति दूध में मक्खी का बीट, अलक्तक (महावर)

के रस को जल के साथ या चंदनमिश्रित दुग्धपान करे तो वह हिचकी से मुक्त हो जाता है।

मधु में सोंचर नमक मिला बिजौरा नीबू के रस का पान करना श्रेष्ठ है। अथवा आँवला और पीपर, आँवला और सोंठ—इनका चूर्ण बना मधु और शक्कर के साथ हिचकी और श्वास रोग में बराबर प्रयोग करना उचित है।

श्वासावरोध में शीतल जल के सेवन करने एवं हिचकी में कषायों के प्रयोग करने अथवा मन में भय उत्पन्न करने से हिचकी बन्द हो जाती है।

हिचकी तथा श्वासाकुल व्यक्ति को तैल से सिक्त कर स्वेदित करें। उक्त प्रकार के बलवान रोगी में वमन-विरेचन देकर शोधन करें तथा निर्बल में उसके शमन का उपाय करना उचित है।

सोंठ के साथ भारंगी को गरम जल के साथ हिचकी और श्वास रोगी में प्रयुक्त करें। अथवा भारंगी, शक्कर, कालानमक—सोंठ के साथ गरम जल से पान करें। हरड़ और सोंठ के कल्क या कूठ और जवाखार के कल्क अथवा कालीमरिच और छोटीपीपर के कल्क को गरम जल के साथ सेवन करायें।

हिक्कापीड़ित और श्वासाकुल व्यक्ति में प्यास और घबराहट बढ़ने पर दशमूल या देवदारु का क्वाथ अथवा मद्यपान कराना लाभप्रद होता है। अथवा दुरालभा, रोहिणी, दाख, काकड़ासिंघी और हरड़। इनके चूर्ण का लेह बना कर मधु तथा घी के साथ सेवन करने पर खाँसी, हिचकी और निद्रा की जड़ता दूर होती है।

गुड़, पीपर, हलदी, रास्ना, दाख और जूही। इन्हें बराबर भाग में लेकर तैल के साथ लेहवत् बनाकर देने से श्वास का निवारण होता है। अथवा काकड़ासिंघी, त्रिकटु, त्रिफला, कटेरी (भटकटैया), भारंगी, कूठ, जटामांसी और पाँच प्रकार के नमक।

इनके चूर्ण का पान गरम जल के साथ करने पर **हिचकी**, **श्वास**, **ऊर्ध्वश्वास**, **खाँसी**, **अरोचता** तथा **पीनस** आदि नष्ट हो जाते हैं।

कचूर, असवण, जीवन्ती, दालचीनी, मोथा , पुष्करमूल, सुरस, भुईआँवला, इलायची, पीपर, अगर, सोंठ और सुगन्धवाला। इनको सम भाग में लेकर चूर्णित कर उसमें अठगुना शक्कर मिला सेवन करने से समस्त प्रकार के वातजन्य श्वास और हिचकी में लाभ होता है।

परवल के पत्ते, सहिजन या सूखा मूली मिलाकर पकाया हुआ यूष हिचकी और श्वास को नियंत्रित करता है। जिन औषधों या पेय पदार्थों द्वारा कफ-वात नाशन हो अथवा उष्ण प्रकृति या वायुनियंत्रक हों उन्हीं का प्रयोग श्वास तथा हिचकी में भी प्रयोक्तव्य होता है।

कुलथी, सोंठ, कटेरी, अड़ूसा और पुष्करमूल। इनका क्वाथ बनाकर पान करने से हिचकी और श्वासरोग का शमन होता है। सरसों के तैल में गुड़ को मिलाकर लगातार इक्कीस दिनों तक सेवन करने से श्वास का उन्मूलन होता है।

दाख, हर्रें, पीपर, कटुकी और दुरालभा। इन्हें घी और मधु मिलाकर प्रयोग करने पर भीषण श्वास रोग भी निर्मूल हो जाता है।

बालछड़, वायविडंग (भाभीरंग), काँटा करंज, त्रिफला, त्रिकटु, चीता, जवाखार तथा सज्जीखार। इनमें चौगुना जल मिलाकर एक प्रस्थ घी में पका लें। पकने पर इस घृत का सेवन १ तोले की मात्रा में करें। इससे श्वास, कास, अर्श, अरुचि, प्लीहा (तिल्ली), मल का रंग परिवर्तन तथा क्षतक्षय रोगों का निर्मूलन होता है।

भारंगी, दशमूल और हरड़—प्रत्येक को १०० पल लेकर चौगुने जल में पाक करें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसे कपड़े से छानकर उसमें १०० पल गुड़ और १०० नग हर्रें को डालकर मंथन करें।

पुन: उस रस को गाढ़ा होने तक मंद आग पर पका लें। तत्पश्चात् उसे नीचे उतार ले और ठण्ढा हो जाने पर उसमें मधु ६ पल, सोंठ, कालीमरिच, पीपर, दालचीनी, इलायची, तेजपात—इन्हें १-१ पल तथा जवाखार का २ पल चूर्ण मिला देवें।

तदनन्तर नित्यप्रति एक हरड़ खाने के अनन्तर आधा पल की मात्रा में लेह को चाटने से भयंकर श्वास तथा पाँच प्रकार की खाँसी का निवारण होता है। इसके सेवन से स्वर का शोधन, रंग का निखार, तेज का वर्धन तथा क्षुधाग्नि का प्रज्वलन होता है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि बाद में जो १०० हरड़ मिलाये गये हैं उनके लिए एक प्रस्थ जल अधिक लें।

कुलथी, दशमूल, और तुम्बुरु—इनके एक-एक सौ पल लेकर एक द्रोण जल में परिपाक करें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें ६० पल गुड़ डालकर पकावें। ठण्ढा होने पर ८ पल मधु, ६ पल वंशलोचन, छोटी पीपर २ पल, दालचीनी, इलायची और तेजपात २-२ पल मिलाकर जठराग्नि के अनुसार सेवन करें।

यह कुलत्थ गुड़ खाँसी, श्वास और हिक्का का शीघ्र ही नाश कर डालता है। परन्तु यहाँ औषध-समूह की मात्रा अधिक होने के कारण जल का परिमाण चौगुना रखना चाहिए, किन्तु इसमें मात्र १ द्रोण ही बतलाया गया है। ऊपर के श्लोक में त्रिसुगंध का परिमाण भी अव्यक्त है। इसकी मात्रा भी अनुमानत: २ पल की ही उचित प्रतीत होती है।

स्वरविकृति का उपचार

इसके लिए सर्वप्रथम चावल में गुड़-घृत मिलाकर पकाये हुए भात को खाने के पश्चात् किञ्चित् गरम जल का पान कर लेना उचित कहा गया है।

अथवा स्वर की विकृति में त्रिफला, त्रिकटु और जवाखार के चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए। इस चूर्ण के सेवन से श्वास-कास आदि रोगोत्पन्न स्वरभंग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

पित्तजन्य स्वरभेद में निरालस्य भाव से घृतपान करने के अनन्तर हरड़, शक्कर तथा काकड़ासिंघी का मोदक बनाकर खावें।

कफोत्पन्न स्वर के बदलाव में छोटीपीपर, पीपरामूल, कालीमरिच तथा सोंठ के चूर्ण को गोमूत्र के संग पान करना गुणकारी है।

मेदोत्पन्न स्वरभंग के लिए कफज स्वरभंग की विधि अपनाएँ। समस्त दोषों या क्षयोत्पन्न स्वरभेद में उक्त कथित क्रियाओं को दोषानुसार प्रयोग करें।

अथवा चव्य, अम्लबेंत, त्रिकटु, इमली, तालीसपत्र, जीरा , असगंध, भिलावाँ—इन्हें बराबर भाग में लेकर गुड़ मिला चूर्ण बना डालें। तत्पश्चात् दालचीनी, इलायची और तेजपात का चूर्ण बना इसके साथ मिश्रित कर दें। इस चूर्ण से **स्वर की विकृति**, **पीनस**, **कफ** तथा **अरोचकता** दूर होती है।

अजमोदा और तेजपात का कल्क बना सेंधा नमक और घृत के संग भूनकर खाने से स्वरभंग, खाँसी और निर्बलता में उपयोगी सिद्ध होता है।

पूर्वकथित पदार्थों में शक्कर और मधु मिलाकर दाख, गम्भारी फल तथा खजूर के साथ खाने के अनन्तर दुग्धपान करना लाभकारी होता है। उच्च स्वर से बोलने के फलस्वरूप जिनके स्वर में विकृति उत्पन्न हो गयी हो उनके लिए,।

कटेरी (भटकटैया नामक पौधा) के रस में रास्ना, खिरेंटी, गोखरू और त्रिकटु मिलाकर पकाया हुआ घृत भी लाभप्रद कहा गया है। इसके साथ ही यह घृत पंच प्रकार की खाँसी को भी मिटा देता है। सूखी हुई औषधियों को खरल में पीसकर अठगुने जल में पकाने पर जब चौथाई भाग शेष रह जाय तो वही स्वरस कहलाता है।

वायविडंग (भाभीरंग), सेंधा नमक, हींग, गूगुल, मैनसिल और वचा। इनके चूर्ण का सेवन करना पीनसयुक्त (नकसीर के साथ) स्वर की विकृति को नष्ट करता है।

कटेरी १०० पल, गठिवन ५० पल तथा चित्रक २५ पल। इन तीनों को एक द्रोण जल में पका लें। पकाने के अनन्तर आठवाँ भाग बच रहने पर उसे कपड़े से छानकर ५० पल पुराना गुड़ भी उसमें मिला दें। पुनः छोटीपीपर ६४ तोले, त्रिसुगंध (दालचीनी, इलायची, तेजपात) २ पल और कालीमरिच १ पल डालकर

चूर्ण बना उसमें ३२ तोले मधु मिलाकर जठराग्नि बलाबल के अनुसार सेवन करें। इसके प्रयोग से सर्वदोषोत्पन्न स्वरभंग तथा अग्निमांद्य रोग (भूख का अभाव) शीघ्र दूर हो जाता है।

आम रोचकता का उपचार

वायु के द्वारा आमाशयिक दोषोत्पन्न अरुचि हेतु वचा के द्वारा विधिपूर्वक वमन कर्म कराने के पश्चात् स्निग्ध होकर पीपर, वायविडंग, जवाखार, रेणुका , भारंगी, रास्ना, इलायची, हींग, सेंधा नमक एवं सोंठ। इनका चूर्ण बना किसी श्रेष्ठ प्रकार की मदिरा के संग पान करें।

पित्तोत्पन्न आमारोचक में गुड़, जल और मधु के साथ वामनिक क्रिया सम्पन्न कर सेंधा नमक, शक्कर मधु तथा घी के साथ लेह का प्रयोग करना उत्तम फलदायक होता है।

कफोत्पन्न आमारोचक में नीम के रस से वमन कराने के उपरान्त अमलतास का रस मधु मिलाकर देना दीपन और उष्णताकारक होता है।

वातज में सेवनीय चूर्ण कफज में भी लाभप्रद होता है। त्रिदोषज आमारोचक में तीनों ही विधियों का समावेश करना आवश्यक है। इस प्रक्रिया के द्वारा समस्त प्रकार के आमारोचक से मुक्ति मिलती है।

कुछेक विद्वानों का ऐसा अभिमत है कि वातज में बस्तिकर्म, पित्तज में विरेचन तथा कफज में वमन कराना श्रेष्ठ है। मानसिक संघात हेतु मनोनुकूल तथा अनिद्रादायक प्रयोग से लाभ मिलता है।

अनिच्छा की उत्पत्ति तथा भयोत्पादक रोगों में कल्याणकारी उत्तमोत्तम वस्तुओं को देवें। आमारोचक के परिणामस्वरूप अर्शोत्पत्ति में उनका पुनराक्रमण रोकने के लिए प्राचीन संहिताओं के द्वारा प्रायोगिक अनुमान का आश्रय ग्रहण करें।

सात्म्यता के कारणवश स्वदेश में निर्मित विविध भाँति के भक्ष्य पदार्थ, आनन्ददायक पेय, लेह्य तथा अन्यान्य रसों का सेवन अनेक प्रयोगों द्वारा करना हितकर है। अथवा हलके, रूखे एवं मानसिक तुष्टिकारक वस्तुओं का सेवन करना लाभप्रद होता है।

जिस रोगी में चावल के बने भात खाने की अनिच्छा हो उसे इमली और गुड़ के रस में दालचीनी, इलायची तथा कलीमरिच को मुख में धारण करने से लाभ होता है।

यहाँ निम्नलिखत चार प्रकार के कवलग्रह क्रमशः बतलाये गये हैं जो इस प्रकार है—

१. कूड़ा, काला नमक, स्याहजीरा, शक्कर, कालीमिरिच तथा विड् नमक।

२. आँवला, इलायची, कमलगट्टा, खस, छोटीपीपर, चन्दन और कमल।

३. लोध, तेजबल, हर्रे, त्रिकटु (सोंठ, कालीमरिच, पीपर) तथा अजवायन।

४. स्याहजीरा एवं शर्क्करमिश्रित गीले अनार का क्वाथ।

उक्त चारों प्रकार के कवलग्रह तैल और मधु मिलाकर सेवन किये जाने पर वातज, पित्तज, कफज एवं त्रिदोषज अरोचकता का विनष्टीकरण होता है।

त्रिव्यूषण (सोंठ, कालीमरिच, पीपर, पिपरामूल, चव्य, चीता), त्रिफला, हलदी, दारुहलदी। इनका चूर्ण बना उसमें जवाखार मिला मधु के साथ सेवन करने दो विलुप्त हुए स्वाद का जागरण होता है। इसके साथ ही तीते और कड़ुए औषध भी उपयोगी माने जाते हैं।

अरोचकता हेतु यहाँ क्रमशः तीन औषध-समूहों का वर्णन किया जा रहा है जो इस प्रकार से हैं—

१. अजवायन, स्याहजीरा तथा कालीमरिच।

२. दाख, इमली और अनार।

३. काला नमक, गुड़ एवं मधु।

उक्त औषधों से भी अरोचकता का निवारण सम्भव होता है।

अजवायन, इमली, सोंठ, अम्लबेंत, अनार, बेर नामक फल और अम्ल—इन सबको १-१ कर्ष तथा धनिया, काला नमक, स्याहजीरा, दालचीनी, तेजपात। इन सबको आधा-आधा कर्ष की मात्रा में ले लेवें।

तदनन्तर छोटीपीपर १०० नग, कालीमरिच २०० नग तथा शर्करा ४ पल मिलाकर चूर्ण बना डालें।

इस चूर्ण के द्वारा जिह्वा-स्वाद का विशोधन, भात खाने में रुचिवर्धन, हृत्शूल, पार्श्वशूल, कब्जियत, आनाह, खाँसी, श्वास, ग्रहणी तथा अर्शविकार नष्ट हो जाता है।

उबकाई एवं वमन का उपचार

सभी प्रकार के वमन आमाशयिक विशृंखलता के कारण ही उत्पन्न होते हैं। वातज वमन को छोड़कर शेष सभी वमनावस्था में लंघन कराना उपयोगी होता है।

अथवा कफ-पित्तहारक संशोधन करना उचित है। हरड़ को जल में रगड़कर पान करने से उबकाई तथा वमन की संभावना नहीं रहती है। घृत में सेंधा नमक मिलाकर पान करने से वातज छर्दि दूर होती है।

मूँग और आमलक के यूष में घी और सेंधा नमक मिलाकर खाने या पंचमूल

द्वारा निर्मित यवागू में मधु मिलाकर पीने से भी छर्दि का निवारण होता है। पित्तजनित छर्दि में दाख, बिदारीकंद और निशोथ को गन्ने के रस में मिलाकर पान कराने से वमन द्वारा पित्त का शमन होता है।

कफ की अधिकता से उत्पन्न वर्धित पित्त को स्वादु पदार्थों (दाख, जीवक आदि) से ऊर्ध्व मार्ग का संशमन करें।

विधिपूर्वक संशोधित रोगी को उपयुक्त समय पर मधु, शक्कर और लाजा (लावा) के साथ मन्थ का पान कराना उचित कहा गया है।

अथवा मूँग या जांगलदेशीय मृगमांस के रस में शालिधान्य का भात पकाकर देना श्रेष्ठ है। चन्दन के २ तोले रस में आँवले का २ तोला रस मिला मधु डालकर पिलाने से छर्दि का विनाश होता है।

मूँग के भुने हुए कषाय में लाजा, मधु और शक्कर डालकर पान करना भी लाभदायक होता है। इससे छर्दि, पिपासा, जलन तथा ज्वर का विनष्टीकरण होता है।

हरड़ के चूर्ण को मधु के साथ चाटने से आमाशयिक दोष निचले भाग में आ जाते तथा छर्दि रुक जाती है।

पित्तपापड़ा के काढ़ा में मधु मिलाकर पान करने से छर्दि का नाश होता है। गुरुच, त्रिफला, नीम और परवल—इनका काढ़ा बना शहद मिलाकर पीने से अम्लपित्तोत्पन्न छर्दि की रुकावट शीघ्र हो जाती है।

कफोत्पन्न छर्दि में कफाशय तथा आमाशय के शोधनार्थ छोटी पीपर, पीसी हुई सरसों और नीम के मिश्रण को गरम जल और सेंधा नमक के साथ मैनफल को मिलाकर वमनकर्म कराना उत्तम है।

कफोत्पन्न छर्दि में वायविडंग, त्रिफला और शुण्ठी (सोंठ) चूर्ण को मधु के संग अथवा वायविडंग, केवटीमोथा और सोंठ का चूर्ण प्रयोग करना हितकारी है।

कफोत्पन्न छर्दि के दमनार्थ मुलेठी के चूर्ण को जामुन के रस के साथ या मोथा के साथ काकड़ासिंघी अथवा दुरालभा को शहद के संग चाटना लाभकारी है।

अथवा वातज, पित्तज तथा कफज छर्दि में मधुमिश्रित तर्पण भी उपयोगी है। विधानानुसार गुरुच का साधित 'हिमनामा' कषाय मधु के साथ सेवन करना तीनों प्रकार की छर्दियों में उपयोगी पथ्यस्वरूप है।

तीनों प्रकार की छर्दियों (वातज, पित्तज, कफज) में बेल या गुरुच का कषाय बना मधु अथवा चावल की धोवन के साथ मरोड़फली का प्रयोग करना लाभदायक है।

अथवा जामुन और आम के पत्ते, गवेधुक, धनिया, खस और सुगंधवाला—इन्हें जल में पकाकर थोड़ा-थोड़ा पीने से वमन दूर होता है।

इसी भाँति इलायची, दालचीनी, तेजपात और दुरालभा को समान परिमाण में लेकर मधु के साथ सेवन करना छर्दिनाशक होता है।

बेल, कैथ फल, पीपर और कालीमरिच—इन्हें गाढ़ा लेह के समान बना मधु के साथ सेवन करना छर्दि में उपयोगी कहा गया है। अथवा काला नमक, स्याहजीरा, कालीमरिच और शक्कर। इनके चूर्ण में मधु मिलाकर सेवन करने से छर्दि का नाश हो जाता है।

बेर की गुठली, पीपर, आँवला, लावा, सोंठ, फलत्रिक् (फालसा, कंभारी और दाख), प्रियंगु, रसोत, मोथा, बेर की मज्जा, मक्षिकाबीट या छोटी पीपर, कालीमरिच, कैथ फल, सुगंधवाला, दालचीनी, इलायची और तेजपात। इन्हें सम भाग में लेकर चूर्ण बना उसमें चौथाई भाग मधु मिलाकर लेह के रूप में बना लें। इसके चाटने से छर्दि का निवारण होता है।

यहाँ तीन प्रकार के अवलेह तीनों छर्दियों के लिए क्रमश: नीचे दिये जा रहे हैं जो इस प्रकार से हैं—

१. लावा, कैथफल, मधु, जूही और पीपर।

२. हरड़, त्रिकटु, धनिया और जीरा।

३. हरड़, कालीमरिच, मधु और पीपर।

उक्त औषध-द्रव्यों से अलग-अलग तीन प्रकार के अवलेह बना लें। इनके प्रयोग से तीनों छर्दि और अरोचकता का शमन होता है।

इलायची, लौंग, नागकेशर, बेर की मज्जा, लज्जावती (एक प्रकार की ऐसी घास जो छूने से सिकुड़ जाया करती है, छुईमुई), प्रियंगु, कचूर, चन्दन और पीपर। इनके चूर्ण में मधु और शक्कर मिलाकर सेवन करना तीनों प्रकार की छर्दि का उन्मूलक होता है।

अथवा जामुन और आम्रपल्लव से निकाले गये रस में शीतल जल और मधु के साथ लावा को उबालकर पीना **छर्दि** तथा **अतिसारनाशक** है। यह काढ़ा इस रोग के निवारणार्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है।

दीर्घकालिक छर्दियों में वायुविनाशक प्रयोग किये जाने चाहिए, क्योंकि छर्दि के फलस्वरूप धातुक्षय होने से वायु अपना प्रचण्ड रूप धारण कर लेता है।

अत: इसके लिए पौष्टिक तथा स्तंभक प्रयोग करने चाहिए जिससे वायु शमित होकर अनुकूलावस्था में पहुँच सके।

इसी प्रकार पूर्वकथित सर्पिगुड़, क्षीरविधि-कल्याणक त्र्यूषणादि, जीवन नामसंज्ञक घृत, पौष्टिकता से पूर्ण मांसरस तथा अवलेहादि दीर्घकालीन छर्दि को दबाने में समर्थ होते हैं।

मानसिक घृणा के फलस्वरूप उत्पन्न दौर्हृदी नामक छर्दि को अत्यन्त रुचिकर तथा अभीष्ट फलों से शमित करें एवं सात्म्यता से उत्पन्न छर्दि को सात्म्यताकारी लंघन तथा वमनकारी विधियों से दमित करें।

इसी भाँति के प्रयोग कृमि, हृद्रोग तथा मलोत्पन्न छर्दि में भी करने चाहिए। अथवा कमलगट्टा, नीम, धनिया, गुरुच और चन्दन के कल्क का काढ़ा बना उसमें एक प्रस्थ घी मिलाकर पकावें। इस घृत के सेवन से वमन, पिपासा, अरुचि तथा जलनयुक्त ज्वर का निवारण होता है।

तृष्णा या पिपासा का उपचार

वातोत्पन्न प्यास में गुड़ के साथ दही और ठण्ढा जल तथा पौष्टिक पदार्थों के रस एवं गुरुच का रस पिलाने से पिपासा दूर होती है। पंचगण योग में कथित पंचाग्निक पदार्थों या प्रथमगणोक्त वस्तुओं में पकाये हुए गुनगुने जल का अल्प मात्रा में प्रयोग करना लाभप्रद रहता है। पिपासातुर व्यक्ति की प्यास को रोकना किसी भी अवस्था में उचित नहीं है। ऐसा शास्त्रों का वचन है।

प्रयोगवेत्ता प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए आगे वर्णित पित्तनाशक द्रव्यों के साथ पकाये गये जल को अथवा केवल जल को ही पित्तोत्पन्न तृष्णा में पान करना चाहिए।

पित्तज प्यास से प्यासे व्यक्ति को कम्भारी और शक्कर या दाख और मुलेठी अथवा दाख और कर्करा के साथ चंदन, खस, कमलगट्टा को जल में पकाकर पीना उचित होता है।

सारिवादिगण के साथ तृणसंज्ञक पंचमूल, उत्पलादिगण या मधुरगण में कथित पदार्थों का कषाय तथा महुआ के फूलों आदि का कल्क निर्मित कर उसे बेल,शमी धान्य, धव, पंचकोल और डाभ में पकाकर सेवन करने से **कफोत्पन्न प्यास** मिट जाती है।

यदि प्यास के साथ-साथ छर्दि की वर्तमानता भी रहे तो नीम के फूलों के सहित पकाये हुए जल का पान करना लाभकारी होता है।

अर्धभाग वाले जल में जीरा को उबाल कर कच्चा अदरक और काला नमक का मिलाकर पान करें।

अथवा सुगंधित और रुचिकारक मदिरापान करने से भी प्यास का निवारण होता है। सद्योत्पन्न पिपासा में तृषानिवारक पदार्थों या केशरमिश्रित दुग्धादि रसों का पान करने से लाभ होता है।

क्षयोत्पन्न तृष्णा में दूध, जल, मांसरस या जल में मधु घोलकर पीने से प्यास मिट जाती है।

मधुमिश्रित लावा के जल का पान करने या शक्कर के साथ पुष्करमूल (पोहकरमूल) के रस को पीने से भी तृषा का शमन होता है।

ठण्ढे जल में शहद घोलकर गले तक पिला दें तो वमन के द्वारा पिपासा शान्त हो जाती है।

अत्यन्त रूखे-सूखे और कृशकाय व्यक्ति की तृषा दुग्धपान से शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

अथवा घी में बकरी के दूध को पकाकर ठण्ढा होने पर उसे पीने से भी पिपासा दूर हो जाती है।

स्निग्ध व्यक्ति में भोजनोपरान्त लगने वाली प्यास गुड़ और जल के पान से मिट जाती है।

बरगद, पिलखन (पाकड़), शक्कर, लोध, अनार, मुलेठी और मधु—इनको चावल की धोवन के साथ पान करने पर छर्दि और प्यास नष्ट होती है।

मूर्च्छा, जलन, पिपासा, छर्दि, स्त्रीप्रसंग तथा मदिरापान—इनके फलस्वरूप परिपीड़ित शुष्क तालुवाले व्यक्ति को घृत या घृतमण्ड का पान करना लाभदायक होता है।

रक्तपित्त तथा मदात्यय रोगोत्पन्न प्यास में ठण्ढा जल पीना उपयोगी है। कांजी का प्रयोग भी मुख की स्वादहीनता तथा मल की दुर्गन्धि को मिटाता है।

नमकरहित कांजी को ठण्ढा करके पीने से मुख की शुष्कता दूर होती है। अथवा कोल, अनार, अम्लबेंत, चूका नामक शाक और चांगेरी रस—इन पंचाम्लों को मुख पर लेपित करने से शीघ्र ही प्यास का निर्मूलन होता है।

बरगद वृक्ष के अंकुर, मधु, कूठ (कूड़ा), कमलपुष्प और लावा का चूर्ण—इनसे बनायी गयी गोली मुख में धारण करने से प्यास नहीं रह जाती। अथवा लाल चावल का भात बनाकर ठण्ढा होने पर उसमें मधु डालकर आहार लेने से दीर्घकालीन छर्दि और पिपासा का निवारण होता है।

रोगों से दुर्बलांग व्यक्ति प्यास लगने पर यदि तत्काल ही जल न पीवे तो उसके प्राणान्त हो जाते या वह दीर्घकालिक रोगों की चपेट में आ जाता है। ऐसी अवस्था में सात्म्यतावाले अनुपान और औषध का प्रयोग उचित होता है। पिपासा के दब जाने पर अन्यान्य रोग भी चिकित्स्य हो जाते हैं।

पिपासातुर व्यक्ति अचेतन तथा मोहग्रस्त होकर अपने प्राण गवाँ बैठता है। अतः किसी भी अवस्था में जलग्रहण करना वर्जित नहीं है।

मूर्च्छा या अचैतन्यता का उपचार

किसी भी प्रकार की अचेतनता में जल का छिड़काव, स्नान, मणिमंडित गलहार, शीतल वस्तुओं का लेपन, पंखे की हवा, सुवासित तथा पानादि कार्य का वर्जन नहीं किया गया है।

अर्थात् ये सभी लाभकारी होते हैं। मधुर पदार्थों के मिश्रण से पकाये गये दूध, अनार, जांगलदेशीय मृगमांसरस तथा लाल चावल सदैव ही लाभप्रद माने जाते हैं।

जिस किसी दोषानुसार मूर्छा उत्पन्न हुई हो उसी के दोषानुसार ज्वरशामक कषायों का उपयोग करें।

रक्तोत्पन्न मूर्छा में शीतल उपचार से लाभ होता है। मदिरापान के कारण आयी हुई बेहोशी में शीघ्र ही वमन कराकर शमन कराना हितकर है। विषोत्पन्न अचेतना में विषघ्न औषधियों को काम में लाएँ।

कोलमज्जा, पीपर, खस और केशर—इनका चूर्ण बना शीतल जल से पान करना मूर्छा को दूर करता है। इसी भाँति पीपर और मधु का प्रयोग भी उत्तम फलदायक होता है।

अथवा सोंठ, गुरुच, चम्पा, पुष्करमूल और गठिवन। इन्हें मिलाकर पकाया गया क्वाथ या दुरालभा को घृत के साथ पान करना भी लाभप्रद सिद्ध होता है।

त्रिफला, दूध, कटुकी या घृत का प्रयोग मूर्छा में हितकारी होता है। अचेत व्यक्ति के नेत्रों में अंजन लगाना, नाक में धुआँ देना, शरीर का मर्दन करना, कान ओर मूर्धा पर मुख से फूँक मारना, अंग-प्रत्यंग में सूई चुभोना, किसी मर्मस्थल को अग्नि द्वारा दागना तथा नाखूनों के मध्य भाग को पीड़ित करने से भी चेतनता लौट जाती है।

मूर्छित व्यक्ति को सचेत बनाने हेतु शिर के केश तथा शरीर के रोमों को खींचना, दाँतों से काटना, कौंछ का स्पर्शन करना एवं प्रफुल्लकारी बातों का कथन करना भी सहायक होता है।

मद्यपानजनित रोग का उपचार

मन्थ, खर्जूर, दाख (मुनक्का), अम्लबेंत, अनार, आमलक और फालसा। इनके साथ पकाया हुआ यूष पान करने से मद्यजन्य रोग दूर होता है।

मटर और मूँग, अनार और आमलक, दाख, आमलक, खर्जूर और फालसा मिश्रित रसयुक्त अलग-अलग तर्पक यूषों तथा अन्यान्य रसों से मदात्यय

रोग का निवारण होता है। अथवा हरड़ के क्वाथ या आँवले के रस में पाचित घृत को या मदमूर्च्छाविनाशक कल्याणघृत का प्रयोग करना लाभकारी सिद्ध होता है।

जल में सुपारी भिंगोकर उसके शीतल जल के पान करने पर वमन, मूर्छा तथा मदात्यय रोग में होने वाले अतिसार रोग का भी शमन होता है।

अथवा वनप्रदेशीय शुष्क गोबर को सूँघने, जल का पान करने, नमक के सेवन तथा सुपारी के चूर्ण में शक्कर मिलाकर खाने से भी मदात्यय रोग दूर होता है।

वातोत्पन्न मदात्यय में पुराने मदिरासेवी व्यक्ति के लिए काला नमक और त्रिकटु (सोंठ, कालीमरिच, पीपर) को अल्प जल में मिलाकर सेवन करना उपयोगी होता है।

पित्तोत्पन्न मदात्यय में शक्करमिश्रित मूँग का यूष या सुस्वादु मांसरस प्रयोग करें। इसके साथ ही चतुर्दिक् शीतल जल का उपचार भी करें।

कफोत्पन्न मदात्यय में पहले शक्त्यानुसार लंघनकर्म प्रयोग में लायें। पुनः दीपनीयगण की औषधियों (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ और अजवायन) को मद्य में मिलाकर पीवें।

त्रिदोषज मदात्यय में पूर्वकथित तीनों औषधियों के मिश्रण का प्रयोग करें। ऐसा करने से सभी प्रकार के मदात्मय रोग नष्ट हो जाते हैं।

यदि उक्त प्रयोग के द्वारा भी इस रोग का शमन न हो, कफ का क्षय हो गया हो तथा निर्बलता के फलस्वरूप शरीर में हलकेपन की अनुभूति हो रही हो तो ऐसी दशा में मदिरापान से विदग्ध हुए तथा वात-पित्त की प्रबलता वाले रोगी हेतु केवल दूध ही एकमात्र ऐसा सहारा रह जाता है जैसे गरमी से तपे हुए वृक्ष के लिए बरसात।

मद्यपान से निर्बल शरीर को दूध शीघ्र ही पुष्टि प्रदान करता है। अपने समस्त गुणों से भरपूर होने के कारण दूध अत्यन्त ओजस्वी और मदिरा का विरोधी होता है।

यहाँ यह बात ध्यातव्य है कि रोगनिवारण के पश्चात् भी पृथक्-पृथक् रूप में क्रमशः दूध और मदिरा को अल्प परिमाण में ग्रहण करते रहना आवश्यक है।

मुलेठी के कल्क में पकाया हुआ पुनर्नवा (गदहपूरना) का काढ़ा, दूध तथा घृत के सेवन से दुर्बल मद्यप में पुष्टिकरण होता है।

काला नमक, कालीजीरी, इमली, अम्लबेंत, दालचीनी, इलायची और शक्कर—इन सबको समान भाग तथा इसके अर्धभाग में कालीमरिच मिला देने से 'अष्टाङ्गलवण' बन जाता है।

यह लवण जठराग्निवर्धक तथा शरीरस्थ स्रोतों का संशोधक माना गया है।

अतएव कफ की प्रधानता वाले मदात्यय रोगी में इसका प्रयोग अवश्य ही करना चाहिए।

नखी नामक द्रव्य, काला नमक, हींग, बिजौरा नीबू का रस, सोंठ और अजवायन। उक्त वस्तुओं का चूर्ण बनाकर मदिरा के साथ पान करने से मदात्यय रोग दूर हो जाता है।

मदात्यय रोग के निर्मूलाकांक्षी रोगी के लिए यह आवश्यक है कि वह स्नानोपरान्त शरीर को चंदन से लेपित कर गृहमण्डप में सुखपूर्वक बैठ जाय। चारों ओर से रमणियाँ उसे आच्छादित कर उपचारपूर्वक मदिरापान करायें।

इसके अतिरिक्त उस स्थान में शरत्कालीन चंद्रमा के समान उज्ज्वल मुखड़े वाली नारियाँ मधुर रागवाली वीणा बजाकर नृत्य-वादन भी करती रहें तो शीघ्र ही मदात्यय का निवारण होता है।

दाह या जलनशीलता का उपचार

इसके लिए सुयोग्य चिकित्सक को आवश्यक है कि वह दाह-पीड़ित रोगी को शतधौत (१०० बार धोया हुआ) घृत से अभ्यक्त कर जौ के सत्तू या बेर तथा आमले से युक्त किसी अन्यान्य अम्लीय पदार्थों से लेपित कर दे।

तत्पश्चात् दाहपीड़ित रोगी के सम्पूर्ण शरीर में कांजी लगाकर किसी कपड़े से ढँककर चंदन का लेप कर दें। पुनः रोगी को कमल या केले के पत्तो से निर्मित बिस्तर पर लिटा दें। तदनन्तर उसे चंदन के जलकणों को टपकाने वाले ताड़ के पंखे द्वारा हवा करें।

परिसेक, स्नान तथा पंखे द्वारा दी जाने वाली हवा के प्रयोग में जलन के शमनार्थ शीतल जल का ग्रहण करना उचित है।

अन्तर्दाह के शान्तिकरण हेतु चंदनमिश्रित ठण्ढा दूध, दुग्धनिर्मित कषाय एवं अन्यान्य प्रकार के शीतल पदार्थों का प्रयोग प्रबुद्ध चिकित्सक को करना उचित है।

इसके अतिरिक्त कुशादि पंचतृण, शालपर्णी (सरिवन) तथा जीवकादि पदार्थों द्वारा पकाया गया घी या तैल भी जलनशामक और वात-पित्तनाशक होता है।

पित्तशामक वस्तुएँ दाहरोग में भी गुणकारी होती हैं। अथवा प्रियंगु, लोध, खस, सुगंधवाला, सनाय और सोनापाठा। इनके चूर्ण में दारुहलदी का रस मिलाकर लेपित करने से जलन शान्त होती है।

किन्तु ध्यान रहे के इसका लेप रोचक, बारीक और गाढ़ा होने पर ही दाह का निवारण करता है।

सुगंधवाला, कमलगट्टा, खस, चंदन और मोथा। इन सब चीजों को जलपूरित बावड़ी में डालकर स्नान करना दाहयुक्त रोगी के लिए उचित है।

उन्माद रोग का उपचार

वातोत्पन्न उन्माद में पहले स्नेहन, पित्तोत्पन्न में विरेचन, कफोत्पन्न में वमन तथा अन्यान्य दोषोत्पन्न में बस्तिकर्म कराना श्रेयस्कर है। जिन वस्तुओं के प्रयोग मृगीरोग में करणीय होते हैं वे ही प्रयोग उन्माद में भी किये जाने चाहिए।

ब्राह्मी, कूष्माण्डी फल, वचा, शंखाहुली। इनके अलग-अलग रस, कूड़ा और मधु के साथ मिलाने से उन्मादनाशक बन जाते हैं।

दशमूलीय जल को घी के साथ, मांसरस के साथ, सरसों के चूर्ण के साथ या केवल नवीन घृत के साथ प्रयोग करना उपयोगी रहता है। अथवा सुगंधवाला के रस को उन्माद रोग में प्रयुक्त करें। इसके साथ ही सरसों के तेल का नस्य और मालिश भी आवश्यक है।

सरसों, वचा, हींग, करंज, देवदारु, मंजीठ, त्रिफला, कंटकारी (भटकटैया), मालकंगनी (ज्योतिष्मती), दालचीनी, त्रिकटु, प्रियंगु, शिरीष और दोनों हलदी (हलदी एवं दारुहलदी)। इनकों बकरी के मूत्र में एक साथ पीसकर पान करें।

त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमिर्च), हींग, लवण, वचा, कटुकी, शिरीष (सीसम), करंज के बीज और श्वेत सर्षप (पीली सरसों)। इन्हें गोमूत्र में पीसकर नेत्रों में अंजन लगाने पर चातुर्थिक (चौथिया) ज्वर, मृगी और उन्माद का उन्मूलन होता है।

भयाकुलता तथा शोकाकुलता की अधिकता वाले उन्माद में धर्म-अर्थ-काम की साधना से उत्पन्न मैत्रीवाक्यों का प्रयोग करें।

हर्षोत्पन्न उन्माद में अर्थनाश की बात कहकर विस्मयकारी दृश्यों का अवलोकन करायें।

अथवा रोगी को रज्जु से आबद्ध कर सरसों के तैल की मालिश कर धूप में पीठ के बल लिटा दें।

तदनन्तर क्रौंछ, तप्त लौह या तैलीय जल से घर्षण करें। अथवा सुनसान घर में बाँधकर उसे कोड़ा से ताड़ित करें। ऐसा करने से उसका भ्रमित चित्त स्थिर हो जाता है।

दाढ़विहीन साँप से, प्रचण्ड सिंह-हाथियों से, शस्त्रधारी शत्रु से तथा चोरों के द्वारा भी ऐसे रोगी को भयभीत करें। अथवा कोई राज्य कर्मचारी इसे बाँधकर बलात् बाहर ले जाय और राजाज्ञा द्वारा इसे त्रस्त करें।

शारीरिक कष्ट के भय से प्राणभय अधिक कष्टकारी होता है। अत: प्राणभय दिखाने से इस रोगी का भ्रमित चित्त शान्त हो जाता है।

अभीष्ट वस्तु के नष्ट होने से खिन्न हुआ मन उसके समतुल्य वस्तुओं की प्राप्ति का आश्वासन देकर रोगी का मन स्थिर करना आवश्यक है।

काम-क्रोध, लोभ-मोह, ईर्ष्या-द्वेष आदि के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले उन्माद रोग प्रतिपक्षी भाव के द्वारा ही शान्त होते हैं।

वातादि दोषों तथा भूतबाधाओं से उत्पन्न उन्माद में देशकाल के बलाबल तथा विकारावस्था की साम्यता का विचार कर ही चिकित्सा करना उपयुक्त होता है।

देवता, ऋषि, पितृगण तथा गन्धर्वादि से आवेशित उन्माद में अंजन, तर्जन और ताड़नादि क्रूरकर्मों का परित्याग कर देना उचित होता है।

इसके लिए देवार्चन, बल्योपहार, यज्ञ, हवन तथा मन्त्रजाप का आश्रय लेना चाहिए।

अथवा चित्त को प्रफुल्लित करने वाले 'चैतस' घृत, 'कल्याण' घृत, 'नारायण' तैल या 'महानारायण' तैल का प्रयोग करें।

जटामांसी, गंधमांसी, हर्रे, भूतकेशी, स्थलकमलिनी, वचा, क्रौंच, त्रायमाण, जया, काकोली, गठिवन, कटुकी, क्षीरकाकोली, विधायरा, धनिया, सौंफ, लाख (लाह), शतावरी, आँवला, सर्पाक्षि, सर्पगन्धा, खींप, छोटी मेढ़ासिंघी, और सरिवन।

इनके साथ पकाया हुआ घृत चौथिया ज्वर, उन्माद, भूतबाधा तथा अर्शनाशक है। इसे महापैशाचिक घृत के नाम से जाना जाता है।

यह घृत बुद्धि, मेधा तथा स्मरणशक्तिवर्धक है। यह शिशुओं के अंग-विकास में सहायक होने के फलस्वरूप अमृत सदृश कहा गया है।

लघु पंचमूल, कम्भारी, रास्ना, एरण्ड (रेंड़), निशोथ, बला (खिरेंटी), मरोड़फली और शतावर। इसे २-२ पल की समान मात्रा में लेकर क्वाथ बना ले। क्वाथ निर्माणकाल में ही उसमें चौथाई भाग में कल्याण घृत भी मिल दें।

इस प्रक्रिया के द्वारा यह चैतस घृत के नाम से प्रसिद्ध हो उठता है। इस घृत के द्वारा सम्पूर्ण मानसिक दोषों का शमन होता है।

हिंगु (हींग), काला नमक और त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमिर्च)। इन्हें २-२ पल की मात्रा में आठ सेर घी और उससे चौगुना गोमूत्र डालकर पाचित कर सेवन करने से उन्माद रोग का उन्मूलन होता है।

अपस्मार या मृगीरोग का उपचार

वातोत्पन्न मृगीरोग में बस्तिकर्म, पित्तोत्पन्न में विरेचन तथा कफोत्पन्न में

वमन कराकर सुयोग्य चिकित्सक को रोगी का उपचार करना चाहिए। तत्पश्चात् तीक्ष्ण पदार्थों का उपयोग करें।

ऐसा करने पर शरीर का शुद्धिकरण होकर शीघ्र ही मृगी का उन्मूलन होता है।

कबूतर की बीट का विधिवत् निर्मित अंजन मृगी तथा मुख्यत: उन्मादनाशक होता है।

अथवा मुलेठी, हींग, वचा, तगर, शिरीष (सीसम वृक्ष), लहसुन, कूड़ा—इनको बकरी के मूत्र में पेषित कर बनाया हुआ अंजन मृगी और उन्माद में लाभकारी होता है।

कपित्थ (कैथ नामक फलविशेष जो बेल के आकार का होता है), ब्राह्मी, मूँग, मोथा, खस, जौ और त्रिकटु—इन्हें बकरी के मूत्र में बारीक पीसकर बत्ती के समान बना लें। इसका लेप वर्तिका के प्रयोग से उन्माद, मृगी, सर्पदंश तथा विषपान दूर होता है।

कुत्ते के पित्त को लेकर अंजन बना लें। इस अंजन से मृगीरोग का निवारण होता है। यदि इसी श्वानपित्त को घी में मिलाकर धूप दें तो भी मृगी में लाभदायक सिद्ध होता है।

जिस रोगी में मृगी के दौरे के समय छाती में कम्पन, हाथ-पाँव में ठण्ढापन, नेत्रों में विकृति तथा मूत्रस्राव हो उसे दशमूल का जल पिलाने से लाभ मिलता है।

वचा के चूर्ण का मधु के साथ सेवन करते हुए दूध-भात का आहारी व्यक्ति दीर्घकालीन भयंकर मृगी को दूर करने में भी सफल हो जाता है।

शण (सन), निशोथ, अंडी, दशमूली, शतावर, रास्ना, जूही और सहिजन। इनके २-२ पल लेकर काढ़ा बना लें। तदनन्तर इसमें बिदारीकन्द, मुलेठी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, शक्कर, खजूर, मुनक्का, भीरु नामक गन्ने की मज्जा और गोखरू।

इन सबको चैतस नामक घृत के साथ उत्तम घृत का मिश्रण करके पकाने से यह महाचैतस नाम का घृत तैयार हो जाता है।

यह घृत समस्त प्रकार की **मृगी**, **विष**, **उन्माद**, **पीनस** (नकसीर), **तिजारी-चौथिया ज्वर**, **अलक्ष्मी**, **भूतबाधा** का निवारण करता है। साथ ही **श्वास**, **खाँसी** तथा **धातुविकार** को मिटाकार शुक्र (वीर्य) का संशोधन भी करता है।

वचा, कूठ और शंखाहुली—इन्हें ब्राह्मीरस में पुराने घी के साथ पकाकर उपयोग करने से उन्माद, मृगी तथा ग्रहबाधा दूर होती है। कुम्हड़े के अट्ठारहगुने रस में मुलेठी के कल्क को घी में पकाकर सेवन करने से मृगीरोग का नाश होता है।

गोबर का रस, गाय का दही-दूध-मट्ठा और गोमूत्र—इनको सम भाग लेकर गोघृत में पका लें। इस घृत के प्रयोग से चौथिया ज्वर, उन्माद (उन्मत्तता), ग्रहपीड़ा तथा मृगीरोग का निर्मूलन होता है।

वातरोग का उपचार

अभ्यंगीय स्नान, स्वेदन (पसीना निकालना), नस्य, स्नेहन (तैल) द्वारा शौच लाना तथा स्निग्ध, अम्ल, नमकीन, स्वादिष्ट तथा पौष्टिक पदार्थ भी **वातनाशन** में सहायक होते हैं।

परवल का पकाया हुआ यूष हलका तथा वातनाशक होता है। इसके अतिरिक्त खिरेंटी का यूष भी वातविनाशक कहा गया है।

राजबला, असगंध, क्रौंच, शतावर, खिरेंटी, दूब, केतकी का अंकुर। इन्हें समान परिमाण में लेकर क्वाथ बना पान करने से अनेक प्रकार के वातज रोगों का विनष्टीकरण होता है।

शीतोष्ण, स्निग्ध (चिकना), रूखा तथा अम्लीय पदार्थों के प्रयोग से यदि वातविकार का शमन न हो तो उसे रक्तविकार या अन्य प्रकार के विकारों का अनुमान किया जाना चाहिए।

अथवा असगंध, तीनों प्रकार की खिरेंटी, दशमूल, सोंठ, कुलिक, दोनों कौलिक तथा रास्ना का योग लाभकारी होता है।

जलप्रदेशीय जीवों तथा मछलियों के मांसरस तथा गरम वेशन से निर्मित लेप लगाना वातनाशक होता है। इसके अतिरिक्त चार प्रकार के स्नेहों को दशमूल में पकाकर उन्हें चिकनी औषधियों के साथ मिश्रित कर लेप लगाने से वातरोग नष्ट होते हैं।

विशेष वातनाशक औषध

सभी प्रकार के अम्लीय पदार्थ, तैल, आठ प्रकार के लवण, जलप्रदेशीय जीवों के मांस में स्वेदित कर सुखोष्णरूपा काकोल्यादिगण को मरिच आदि के साथ समायोजित करने पर वे वातनाशक बन जाते हैं। यह सभी अवस्थाओं में वातरोगियों के लिए प्रयोक्तव्य है।

काकोल्यादिगण का तात्पर्य अष्टवर्ग की औषधियों से है। इसी काकोल्यादिगण के समान ही भद्रद्रार्वादि तथा दाडिमादिगण भी वायुनाश में गुणकारी होता है।

'स्नेह' शब्द चार प्रकार के स्नेहों का बोधक होता है।

अष्टलवण शब्द से सेंधा नमक ग्राह्य होता है। काकोल्यादि तीन गणों को पूर्वकथित तीन समूहों से संशोधित करना उचित कहा गया है।

वायुनाशक षट्चरण योग

आमाशयगत वायु के रोगी को विधिपूर्वक वमन कराकर सात रात्रि तक क्रमानुसार वक्ष्यमाण षट्चरण नामक योग का उपयोग गुनगुना जल के साथ करना आवश्यक होता है।

अथवा चित्रक, इन्द्रयव, पाठा, कटुकी, अतीस, हरड़ और घृतकुमारी (घीकुआर नामक पौधाविशेष)—इन सात प्रकार के औषधसमूह को ही षट्चरण नामक योग कहा जाता है। अत: उक्त सात वस्तुओं को सात दिनों तक प्रयोग कराना उचित होता है।

जिस समय वायु का प्रवेश पक्वाशय में हो गया हो उस समय भी षट्चरण की औषधि खाने के अनन्तर नमक की फंकी फाँक लेनी चाहिए, किन्तु औषधि सेवन से पूर्व तैल के द्वारा विरेचन लेना और बस्तिकर्म करना आवश्यक होता है।

वायुनाशक विशेष उपाय

जब गुह्यस्थल से ऊर्ध्वभाग में वायु प्रविष्ट हो तब बस्तिशोधन करना अनिवार्य है। वायु के कर्णादिक अवयवों में प्रवेशित होने पर वायुविनाशक विधि अपनानी चाहिए।

अर्थात् स्नेहन कर्म द्वारा अभ्यंग, व्रणों में पुलटिस बंधन, मर्दन और लेपन कर्म किये जाने चाहिए। वायु के चमड़ा, मांस, रक्त तथा नाड़ियों में प्रवेशित होने पर सिंघी के द्वारा दूषित रक्त का निष्कासन कर देना आवश्यक होता है।

जब वायुवाहिनी नलिका (प्रत्येक अंग के जोड़ को बाँधने वाली नाड़ी), सन्धिस्थल और अस्थिगत वायु हो तब स्नेहन कर्म, पुलटिस, अग्निदग्धन, बंधन तथा मर्दन की क्रिया करनी चाहिए। शुक्रगत वायु में शुक्रशोधनार्थ पुष्टिकारक, बलवर्धक धातुशोधक बृंहणस्वरूप चिकित्सा सुयोग्य चिकित्सक के लिए श्रेयस्कर मानी गयी है।

वायुनाशक शिलाजीत का प्रयोग

वायु के यत्र-तत्र विस्तरित होने पर विधिवत् शिलाजीत का प्रयोग करना चाहिए। जगत् में ऐसा कोई साध्य रोग नहीं है जिसे शिलाजीत के द्वारा दूर न किया जा सके।

सर्वांगी वातशामक औषध

प्रात:काल सज्जीखार के क्वाथ को अग्निबल के अनुरूप पान कराने पर वक्ष:स्थल, नितम्ब और कंधों में प्रविष्ट वायु का निवारण होता है। इस क्वाथ की एक मात्रा नित्यप्रति पिलानी चाहिए।

किन्तु कुछेक लोगों का ऐसा अभिमत है कि इसे उबालकर भोजनोपरान्त देना उचित होता है।

इस क्वाथ से अर्दित (लकवा) और अपतंत्रिक नामक वातरोग नष्ट होता है। यह क्वाथ एकांगीवात (एक ओर का) तथा सर्वांगवात में भी गुणकारी होता है।

इसके अतिरिक्त यह ऊरुस्तम्भ (जाँघों की जकड़न), गृध्रसी (सायेटिका) नामक वातरोग और मुख्यत: कृमिरोगों में उपयोगी है। इसके साथ ही यह कटिप्रदेश का रोग, पीठ का रोग एवं उदर रोग में भी लाभकारी सिद्ध होता है।

स्नेहन द्वारा अभ्यंगीकरण, शिर:क्रिया, बस्तिकर्म, नस्य तथा धूम सेवित रोगी को भात खाने से पूर्व घृतपान करने पर अर्दित रोग (पक्षाघात, लकवा) का विनष्टीकरण होता है।

इसी प्रकार विसूचिका (कॉलरा) और अपबाहुक नामक वातरोग में दशमूल, खिरेंटी तथा उड़द के क्वाथ को माषतैल (उड़द का वह तैल जो आठ पदार्थों द्वारा निर्मित होता है।) में घोलकर सायंकाल भोजनोपरान्त नासिका द्वारा पान करना लाभदायक होता है।

खिरेंटी की जड़, नीम और क्रौंच। इन्हें खरल में पीस रस निचोड़ कर पान करें। इसके साथ ही अपबाहुक का रोगी उड़द के रस का नाक से नस्य लेकर एक मास में ही कठोर बाहुवाला बन जाता है। पंचमूल या दशमूल का क्वाथ-बनाकर नाक में डालने से रूखे, पसीना वाले तथा मन्यास्तम्भ (गरदन की पिछली नाड़ी में जकड़न) के रोगी में लाभकारी होता है।

बाहुशोष का निदान

बाहुशोष (भुजा की शुष्कता) में भोजनोपरान्त बृहत् कल्याणघृत का पान लाभप्रद है। कुब्जवात (ऐसी अवस्था जब वायु प्रकोप के फलस्वरूप छाती और पीठ का मध्यवर्ती स्थान उत्थित होकर विकृति कर देता है तो उसे कुब्जवात कहते हैं) की आरंभिक अवस्था में दशमूल आदि वातशामक औषधियों द्वारा उपचार करणीय होता है, किन्तु उसकी वर्धित अवस्था में स्नेहन या मांसरस का प्रयोग किया जाना चाहिए।

उदावर्त वात की औषध

कुब्जवात वाले रोगी को घी के साथ स्नेहलवण का पीना लाभकारी होता है। पेट में अफरा (प्रकुपित वायु का पक्वाश्य में पहुँचना, इसी को आध्मान भी कहते हैं) होने पर खार और हींग का लेप लगाना चाहिए।

अथवा हींग, मधु और सेधा नमक के साथ तमाड़ के फलों की बत्ती बनाकर उसे घी में उलट-पलट कर पका लें। तदनन्तर घृताक्त गुदा में उन बत्तियों को प्रविष्ट

कराये तो उदावर्त रोग (मल-मूत्र के वेग को अवरुद्ध कर वायु का ऊर्ध्वगमन) नष्ट हो जाता है।

सर्ववातनाशक औषधि

लहसुन १०० पल, कालातिल ३२ तोला तथा हींग, त्रिकटु, जवाखार, सज्जीखार, पंचलवण, सौंफ या कूठ, पिपरामूल, चीता, अजवायन, अजमोदा और धनिया—इनको २-२ पल एकीकृत करके बारीक चूर्ण बना लें। तदनंतर इसे सोलह दिनों तक किसी घृतपात्र में रख छोड़े।

तत्पश्चात् इसमें आधा-आधा पल तेल और कांजी को मिलाकर १-१ कर्ष की मात्रा में सेवन करे। इसके बाद मदिरा या जल का पान करें।

इसका प्रयोग **आमवात**, **एकांगवात**, **सर्वांगवात**, **अपस्मार**, **अग्निमांद्य**, **साँस**, **खाँसी**, **विषनाश**, **उन्माद**, **भग्नवात**, **पीड़ा** तथा **कृमिरोग** में करने से भी लाभ होता है।

प्रत्याध्मान वातनाश औषध

देवदारु, हर्रें; कूड़ा, सौंफ, हींग और सेंधा नमक—इन्हें मट्ठे में पीसकर पेट पर गुनगुना लेप लगायें। यह लेप दीपक, पाचक तथा बस्तिशोधक है। प्रत्याध्मान नामक वायु में वमन, लंघन और दीपन ओषधियों का प्रयोग करना गुणकारी कहा गया है।

प्रत्यष्ठीला आदि वातशामक उपाय

प्रत्यष्ठीला और अष्ठीलिका नामक वायुविनाश में विद्रधि रोग में कथित क्रियाओं का उपयोग लाभकारी होता है।

इस प्रकार के वायु में हिंग्वादि चूर्ण भी प्रभावशाली होता है। मुख्यतया यह चूर्ण विसूचिका (कॉलरा), खंजवात, पंगुवात, दाह, पादहर्ष (पैरों में रोमांच), कोष्ठगत विकार, शिरोरोग तथा वातकंटक में उपकारी कहा गया है।

शिरगत वात के उपाय

शिरोग्रह नामक वायु में शिरोगत वायुनाशक शास्त्रीय क्रिया का अवलंबन करें। जिह्वास्तम्भ (जीभ की जकड़न, मूकवात) आदि रोगों में वक्ष्यमाण क्रिया को अपनायें।

कल्याणक लेह का लाभ

हलदी, वचा, कूठ, छोटी पीपर, सोंठ, कालाजीरा, अजमोदा, मुलेठी और सेंधा नमक। इनको समभाग में लेकर चूर्ण बनायें और उस चूर्ण को घी में उबालकर नित्यप्रति सेवन करें।

इसे इक्कीस दिनों तक निरन्तर सेवन करने के फलस्वरूप मानव श्रुतिधर

(किसी के द्वारा सुनी हुई बातों को स्मरण रखने वाला), मेघगर्जन तथा नगाड़े के समान घोर शब्द करने वाला तथा मतवाली कोयल के समान मधुर स्वरवाला बन जाता है।

क्रोष्टुशीर्ष (घुटनों के मध्यवर्ती स्थान में वायुप्रकोप से होने वाला शोथ) नामक वायु में गूगुल को, या त्रिफला के रस में गुरुच को अथवा दूध के साथ रेंड़ी का तेल या विधायरे का प्रयोग किया जाना चाहिए।

अथवा श्यामा लता, गोभी और गोरखमुंडी—इनके योग से वातरक्तनाशक प्रयोग करने चाहिए, क्योंकि प्रदूषित रक्त के नष्टीकरण के पश्चात् ही वातनाशक विधियों का प्रयोग सफलताकारक होता है।

विविध वात शामकोपाय

दशमूल, खिरेंटी, रास्ना, गुरुच और सोंठ। इनके चूर्ण में अण्डी का तेल मिलाकर सेवन करने से गृध्रसीवात, खंजवात तथा पंगुवात नष्ट होते हैं। अण्डी के बीजों को शोधित कर पीठी के रूप में बना दूध में खीर बना डालें। इस क्षीरपान से पीड़ायुक्त गृध्रसी वात का दमन अविलंब होता है।

अथवा पंचमूल का कषाय रुचुतैल और निशोथ के साथ या केवल निशोथ से मिलित होने के फलस्वरूप गृध्रसीशूल और गुल्म का विनाश करता है। घी, तैल या अदरक और बिजौरे नीबू के रस को प्रतिदिन चुक्र के साथ पीने से कटिवात, ऊरुवात (जाँघों का वात), तीनों प्रकार के गुल्म, शूल, गृध्रसीवात तथा उदावर्त का विनष्टीकरण होता है।

रास्ना १ पल तथा गुग्गुलु १० तोले (५ कर्ष) लेकर घी में मिला गोली बनाकर खाने से **गृध्रसीवात** दूर होता है।

गृध्रसीवातग्रस्त व्यक्ति को पहले जाँघों को स्नेहन कर्म द्वारा ठीक प्रकार से पसीनायुक्त कर लेने के अनन्तर पैरों से उस जाँघ को मर्दित कर सूक्ष्माग्र से गृध्रसी को धीरे-धीरे जाँघों से कनिष्ठा में उतार लें। तत्पश्चात् पीसी हुई सोंठ को रेंड़ के बीजों के साथ खीर बनाकर खाने से कमर की पीड़ा और गृध्रसीवात में निश्चय ही लाभ होता है।

वातरोगी के ऊर्ध्वभाग का शुद्धिकरण न होने तक अनुवासन-बस्तिकर्म का प्रयोग करना उचित नहीं होता। प्रथमत: अनुवासनबस्ति में प्रयुक्त किया हुआ तैल उसी प्रकार जलकर भस्म हो जाता है जिस प्रकार अग्नि में डाली गयी हवन-सागग्री। अर्थात् इस प्रकार का किया गया प्रयोग निष्फल हो जाता है।

जाँघों की कंडरा (महानाड़ी) में आविर्भूत मूँगा-सदृश ग्रंथि को शस्त्र द्वारा

विदारित कर वहाँ के विकार का निर्मूलन कर दें। तदनन्तर उस स्थान को आग से दागकर मुलेठी और चंदन का चूरा लगा दें। प्रभावित बस्ति से चार अंगुल नीचे की ओर शिराभेदन कर्म प्रासंगिक बतलाया गया है।

ऐसी अवस्था में रोग का शमन न होने पर पैर की कनिष्ठा अँगुली को दग्ध कर दे या गोमूत्र में रेंड़ी का तेल मिलाकर पान करें। गृध्रसी और ऊरुग्रह नामक इस वात के विनाशनार्थ एक मास तक इस योग का व्यवहार करना आवश्यक कहा गया है। वातकंटक नामसंज्ञक वातरोग में लगातार रक्तावसेचन कर्म करना उपयोगी है। अथवा शतावर के साथ चौथाई मात्रा में अण्डी के तेल का पान करना चाहिए।

जब कटिप्रदेश में साम या निराम वायु प्रविष्ट होकर पीड़ोत्पादन करता है तब उसे 'कटिग्रह' कहा जाता है। दोनों जाँघों में अवस्थित वायु पंगुसंज्ञक होता है। समस्त प्रकार की कटिवेदना में अण्डी का तैल या दशमूल का कषाय पान करना वैद्यों द्वारा लाभकारी माना गया है।

आदित्यपाकगुग्गुलु वटक के लाभ

त्रिफला और छोटी पीपर १-१ पल, तथा दालचीनी, इलायची आधा-आधा पल तथा गुग्गुलु ५ पल। इन सबको चूर्णित कर दशमूल के रस में भिंगो दें।

तत्पश्चात् इन पदार्थों का वटक बना लें। इस वटक का सेवन मांसरस के साथ करने पर रक्तवात, संधिवात, अस्थिवात तथा मज्जागत वात उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार इन्द्र के वज्रप्रहार से वृक्ष नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। इस चूर्ण को भावनाविधि भी कहा जाता है।

दशमूल के दुगुने रस में इसे लेहवत् बना उसमें गूगुल की अधिकता वाले चूर्ण को बार-बार विलोड़ित कर सूर्यताप में सात बार सुखा लेने से यह वातविनाशक योग सिद्ध और भावित होता है।

बबूल, असगंध, हाऊबेर, गुरुच, शतावरी, गोखरू, रास्ना, श्यामा, कचूर, घोष (तरोईविशेष), अजवायन और सोंठ। इन द्वादश औषध-समूहों को सम भाग में लेकर चूर्णित कर लें।

उक्त चूर्ण के समान में शुद्ध गूगुल लेना चाहिए। इसमें आधा घृत मिलाकर आधा अक्ष (१ तोला) की मात्रा में इसे प्रयुक्त करें। तदनन्तर एकांगीरस, मुद्गादि क्वाथ, मद्य, गुनगुना जल, दूध या मांसरस का पान करें।

इस योग के द्वारा कटिग्रह, गृध्रसी, बाहुग्रह (भुजस्तम्भ), पृष्ठग्रह, हनुग्रह, जानुवात, पादवात, संधिवात, अस्थिवात, मज्जागत वात, स्नायुवात तथा कोष्ठगत वात में लाभ मिलता है। इसके साथ ही यह वात-कफवर्धित रोगों तथा वातोत्पन्न

हृदयग्रह और योनिविकारों को नष्ट करने में भी समर्थ होता है। इसके अतिरिक्त इस त्रयोदशांग गूगुल को भग्नवात, अस्थिविद्धवात तथा खंजवात में भी परमोपयोगी माना गया है।

दशमूलघृत का लाभ

जीवनीयगण की औषधियों (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, मषवन, जीवन्ती और मुलेठी) को अलग-अलग १-१ पल लेकर एक-एक कल्कों के द्वारा दूध के साथ दशमूल के काढ़ा में पकाया हुआ घी तर्पक तथा वातपीड़ा का शामक होता है।

अश्वगन्धादि घृत का लाभ

असगंध के कषाय और उसके कल्क के साथ चौगुना दूध मिलाकर पकाया गया घृत पुष्टिकर होने के फलस्वरूप मांस को बढ़ाता तथा वातरोग का विनाश करता है।

छागलादि घृत का प्रयोग

चमड़ा, सींग तथा खुरादि को निकालकर बकरे के मांस को दशमूल के साथ एक द्रोण जल में पाचित करें। चौथाई भाग शेष रह जाने पर उसमें एक प्रस्थ घी डालकर पुनः पकावें तथा उसके साथ ही मुलेठी, जीवनीयगण की औषधि और शतावरी के कल्क को दूध के संग पका लें।

पूर्णरूप से परिपक्व होने पर छागलादि नामक घृत तैयार हो जाता है। इसके द्वारा लकवा (पक्षाघात), कर्णपीड़ा, बहिरापन, गूँगापन, जड़वात, पंगुवात, गद्गदवात, लूलापन, गृध्रसीवात, कुबड़ापन, अपतानकवात तथा अपतंत्रक वात का विनाश हो जाता है।

इसके निर्माण हेतु पूर्वकथित दशमूल की मात्रा ३२ पल तथा घृत के संग पकाने वाली औषधियों का परिमाण दुगुना होना चाहिए।

ऐलादि तैल का प्रयोग व लाभ

इलायची, कपूरकचरी, देवदारु, पत्थरफूल, धूपसरल, रेणुका, वनहर, कचूर, खस, चम्पक, जवाकुसुम, थुनेर, वोर, सोमराजी, कमलदण्ड, सफेद चन्दन, कन्दूर, नखी नामक द्रव्य, सुगंधवाला, दालचीनी, तेजपात, कूठ, काला चन्दन, मोथा, गठिवन, लालचंदन, लौंग, जायफल, मंजीठ, कुंकुमचंदन और काला अगरु। इनका कल्क बना खिरेंटी के क्वाथ में दही के पानी के साथ तैल को पकाने पर एलादितैल निर्मित होता है।

यह तैल बलवर्धक होने से शरीर के रंग में निखार लाकर शरीर को पुष्ट बनाता है। इसी हेतु यह तैल वातरोगनाशक भी होता है।

बलातैल का प्रयोग व लाभ

बला (खिरेंटी) के क्वाथ और कल्क के साथ दूध डालकर पकाया हुआ तैल समस्त वातरोगों का निवारण कर बल, आयु तथा तेज का वर्धन करता है।

बृहद् बलातैल का प्रयोग व लाभ

खिरेंटी का मूल, दशमूल, इन्द्रयव, कोल और कुलथी—इनके क्वाथ के अलग-अलग आठ तथा दूध आठ भाग लें। एक भाग तैल में एक भाग के परिमाण से सेंधा नमक और मधुरगण मिला लें तथा अगरु, सालवृक्ष की राल, धूपसरल, देवदारु, मंजीठ, चन्दन, कूठ, इलायची, शीतली लता, मांसी, पत्थरफूल (पत्थर फोड़कर निकलने वाला पुष्प), तेजपात, तगर, सारिवा, वच (कुलंजन), शताव, असगंध, सौंफ और पुनर्नवा (गदहपूरना)।

उक्त वस्तुओं का कल्क बनाकर पका लें। पूरी तरह से पक जाने पर इस तैल को सोने, चाँदी या मिट्टी के पात्र में रख छोड़े। यह तैल सभी प्रकार के वातरोगों का विनाशक है।

इसकी मात्रा अग्निबलानुसार निर्धारित कर इसे प्रसूता स्त्री, गर्भाकांक्षिण नारी तथा धातुक्षीणता वाले व्यक्ति में प्रयोग करें। इसके अतिरिक्त निस्तेज, मर्मपीड़ित, मथितांग, भग्नगात्र तथा अतिपरिश्रम से क्लान्त होने वाले व्यक्ति में भी यह परमोपयोगी कहा गया है। यह वर्णाक्षेपक नामक वातरोग को भी नष्ट कर डालता है।

इतना ही नहीं, बल्कि इस तैल के छह मास सेवन करने से हिचकी, खाँसी, तेजविहीनता, प्लीहा (तिल्ली), श्वास और आँतों की वृद्धि आदि रोगों का उन्मूलन हो जाता है। इसका सेवन कर निर्बल व्यक्ति नवीन धातुयुक्त हो यौवनावस्था को प्राप्त हो जाता है। यह विशेषत: कोमलांगों राजा-महाराजाओं तथा धनाढ्यों के लिए अत्यन्त सुखकारी सिद्ध होता है।

नारायण तैल का प्रयोग व लाभ

बेल का गूदा, अरणी नामक काष्ठ, सोनापाठा, लाल रंग का लोध, फरहद, पसरन (प्रसारिणी नामक लता), असगन्ध, कटेरी (भटकटैया), कंटकारी, खिरेंटी, सहदेई (एक प्रकार की घास), गोखरू और पुनर्नवा—इन्हें १०-१० पल लेकर चार द्रोण जल में पकावें। पककर चौथाई भाग शेष रह जाने पर उसमें ८ सेर तैल मिला दें और साथ-ही-साथ सौंफ, देवदारु, मांसी, पत्थरफूल, वच, चंदन, तगर, कूठ, इलायची, चारों पर्णी, रास्ना, असगंध, सेंधा नमक और पुनर्नवा—इन्हें २-२ पल पीसकर उसमें मिला दें। पुन: तैल के बराबर शतावरी के रस को डाल दें। तदनन्तर बकरी या गोदुग्ध को चौगुनी मात्रा में मिलाकर पकावें। इसे खान-पान, स्नान, बस्तिकर्म तथा नस्य लेने में भी प्रयोग करें।

इस तैल के द्वारा वातपीड़ित हाथी-घोड़ा या व्यक्ति, लूला-लंगड़ा तथा मंदगामी भी तीव्र गति वाला बन जाता है। शरीर के निम्नस्थ और ऊर्ध्वस्थ वातदोषों में तथा मन्यास्तंभ, हनुस्तंभ (जबड़े की जकड़न), गलग्रह, दन्तग्रह नामक वायुविकार में अथवा जिनका एकांग सूख गया हो, लड़खड़ाते हुए चलते हों, जो क्षीणवीर्य तथा दुर्बलेंद्रिय हों, ज्वर से कृशकाय, जो कान से कम सुनते हों, जिनकी जीभ स्तंभित हो गयी हो, मंदबुद्धि वाले व्यक्तियों में अथवा जिन स्त्रियों को अल्प संताने हों, जो गर्भधारण में अक्षम हों, जिनके अण्डकोष वायुग्रस्त हों तथा आँते बढ़ गयी हों उनके लिए यह तैल परम लाभदायक है। इसी कारण इसे 'नारायण तैल' कहा जाता है।

महानारायण तैल का प्रयोग व लाभ

शतावरी, सरिवन, मूषाकर्णी, कचूर, खिरेंटी, रेंड़ की जड़, कटेरी, कंटकारी तथा पूतिकरंज की जड़, गवेधुका और कटसरैया की जड़—इन्हें १०-१० पल लेकर एक द्रोण जल में आग पर पकावें।

चौथाई भाग शेष रहने पर उसे छानकर उसमें पुनर्नवा, वच, देवदारु, सौंफ, चंदन, अगरु, पत्थरफूल, तगर, कूठ, इलायची, मांसी, काकोली, खिरेंटी, असगंध, सेंधा नमक, और रास्ना।

इनकों १-१ पल लेकर पीस डालें और मिला दें। अब उसमें गाय और बकरी के दूध २-२ प्रस्थ तथा शतावरी का रस और तैल भी १-१ प्रस्थ डालकर पका लें।

इस परिपक्व तैल के प्रयोग से सभी प्रकार के वातरोग नष्ट हो जाते हैं। यहाँ तक कि इससे वातग्रस्त हाथी-घोड़े भी रोगमुक्त हो जाते हैं।

इसके पान करने से मानव दीर्घजीवी होता है। गर्भधारण कराने में यह इतना समर्थ है कि खच्चरी भी गर्भधारण कर सकती है तो मानवी नारियों की बात ही क्या है?

इसके द्वारा **हृत्शूल**, **पार्श्वशूल**, **अर्धांगवात**, **कामला**, **पाण्डु**, **वातरक्त**, **जबड़े की जकड़न** तथा **पथरी** रोग का निवारण होता है। इस वातनाशक शुभकारी तैल का वर्णन भगवान विष्णु ने किया था। अतः इसका नाम भी नारायण तैल से अभिहित किया गया।

अश्वगन्धादि तैल का प्रयोग व लाभ

एक द्रोण जल में १०० पल असगंध को डालकर आग पर पकावें। पककर चौथाई भाग शेष रहने पर उसे छान लें। अब उसमें चौगुना दूध मिलाकर तैल को भी पकावें।

पाक करते समय ही इसमें कमलनाल, कमलकंद, कमलकेशर, मालती पुष्प, हाऊबेर, मुलेठी, सारिवा, कमल, केशर, मेदा, पुनर्नवा, मुनक्का, मंजीठ, कटेरी, कंटकारी, इलायची, एलुवा (मुसव्वर), त्रिफला, मोथा, चंदन और कमलगट्टा। इनका कल्क बना मिला दें और पकावें।

इस प्रकार के तैल परिपाक के फलस्वरूप यह रक्तवात, रक्तपित्त तथा कोढ़ रोग को मिटाकर शारीरिक पुष्टि प्रदान करता और मांस का वर्धन करता है। यह तैल धातुविकार, योनिदोष, व्रणदोष तथा नपुंसकता का नाशक होता है। इस प्रकार की फलोपलब्धि के निमित्त इससे पान, अभ्यंग, नस्य तथा बस्तिकर्म किये जाने चाहिए।

विविध माषतैल बनाने की विधि

यहाँ कई प्रकार के माषतैल (उड़द का तैल) निर्माण की विधियाँ दी गयी हैं जो इस प्रकार से हैं—

१. उड़द, क्रौंच, मुलेठी, अण्डी, रास्ना, सौंफ और लवण (सेंधा नमक)— इन सब को पीसकर कल्क बना उड़द तथा खिरेंटी के चौगुने क्वाथ में तैल का पाक करें। यह तैल अर्धांगवात (पक्षाघात) को नष्ट करता है।

(२) पहले ४ प्रस्थ जल में १ प्रस्थ उड़द डालकर पका लें। चौथाई रस शेष रहने पर उसमें चौगुना दूध और १ प्रस्थ तिलतैल भी मिला दें। इसके साथ ही पूर्वकथित जीवनीयगण की अष्ट औषधियाँ—सौंफ, सेंधा नमक, रास्ना, क्रौंच, मुलेठी, खिरेंटी, त्रिकटु तथा गोखरू के कल्क डालकर अच्छी प्रकार से पकावें।

इस तैल के प्रयोग से अर्धांगवात, अर्दितवात (लकवा), कर्णशूल, बधिरता, त्रिदोषज तिमिरांध रोग, हस्त-कम्पन, शिर:कम्पन, विसूचिका, अवबाहुकवात कलाय खंजवात (नाभि के नीचे होने वाल कंपन) आदि सभी दूर हो जाते हैं। इनके प्रयोगकाल में पान, अभ्यंग और अनुवासन कर्म से उत्तम लाभ मिलता है। इस श्रेष्ठ तैल के प्रयोग से मूर्धजन्तु (निनाई) नामक रोग भी दूर हो जाता है।

(३) उड़द, अलसी (तीसी), जौ, पीली कटसरैया, कंटकारी, गोखरू, टेंटुक, बालछड़ (छड़ीला), क्रौंच, सुगंधवाला—इनका कल्क बना सिद्ध किये गये बिनौला (कपास बीज), शणबीज (सनई का बीज), कुलथी और कोल के काढ़े में अथवा बकरी के मांसरस में सोंठ, रेंड़ की जड़, पुनर्नवा, पसरन (प्रसारिणी लता), रास्ना, खिरेंटी, गुरुच तथा त्रिकटु।

इनके समान भाग में पकाया हुआ तैल अवबाहुकवात को नाश करता है। यदि इसका प्रयोग नस्यकर्म, बस्तिकर्म तथा परिषेचन की रीति से किया जाय तो यह

तेल अंगशोथ, अपतानकवात, लकवा, आक्षेपकवात, भुजकम्पवात, शिर:कम्पवात तथा कमर, जाँघ और घुटने के लिए रुग्णकारी वातों का भी उन्मूलन कर डालता है।

बृहन्माष तैल का योग व लाभ

उड़द, खिरेंटी, रास्ना, दशमूल, जौ, कोल, कुलथी। इनके अलग-अलग क्वाथों में तथा बकरी के मांसरस में १ प्रस्थ तिलतैल तथा चौगुना दूध डालकर, रास्ना, क्रौंच, सेंधा नमक, सौंफ, अण्डी की जड़, मोथा, जीवनीयागण के पदार्थ, खिरेंटी और त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमरिच)।

इन्हें २-२ तोले परिमाण में लेकर पकावें। इसे पक जाने पर बस्तिकर्म, पान और अभ्यंग विधि से प्रयुक्त किये जाने पर हाथों का काँपना, शिर का काँपना, बाहुशोष, अवबाहुक, बहिरापन, कर्णपीड़ा, कर्णनाद, विसूचिका, लकवा, गृध्रसीवात (सायेटिका) तथा अपतानकवात में लाभप्रद होता है। यह तैल मुख्यतया मुख्य जन्तु नामक रोग के लिए गुणकारी होता है।

महामाषतैल का योग व लाभ

उड़द २ प्रस्थ, दशमूल ५१ पल और बकरे का मांस ३० पल—इन तीनों को एक द्रोण जल में पकायें। पककर चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें १ प्रस्थ तिलतैल और ४ प्रस्थ दूध भी मिला लें। इसके साथ ही सौंफ, मंजीठ, जीवनीयगण के पदार्थ, खिरेंटी, त्रिकटु, कालावासाऊँ, चव्य, चित्रक, हर्रे, अण्डी, आँवला, कौंछ, असगंध, वचा, कूठ, रास्ना, गोखरू और देवदारु—इन सबको अक्ष परिमाण में लेकर अलग-अलग अथवा एकीकृत किये गये कल्क के साथ पका लें।

केतकीतैल का लाभ

केवड़े का मूल, खिरेंटी और सहदेई के अधिक रस में पकाया गया यह तैल कांजी में सिद्ध करने पर अस्थिगत (हड्डी में प्रविष्ट वायु) वात का उन्मूलक बन जाता है।

अश्वगन्धादितैल का लाभ

असगंध, खिरेंटी, अतीस और दशमूल—इनके रस तथा कल्क में पकाया हुआ यह तैल गृध्रसीवात में अभ्यंग, पान और बस्तिकर्म के द्वारा प्रयुक्त होने पर लाभप्रद सिद्ध होता है।

रसोनतैल का लाभ

लहसुन के कल्क-रस में तैल को पकाकर वातग्रस्त रोगी द्वारा पान किये जाने पर दुर्दमनीय वातरोग का भी विनष्टीकरण हो जाता है।

प्रसारिणीतैल का लाभ

प्रसारिणी नाम्नी लता १०० पल, असगंध १०० पल तथा दशमूल १००

पल। इन्हें पृथक्-पृथक् रूप से १ द्रोण जल के साथ पका लेवें। चौथाई भाग शेष रहने पर,।

उसमें ४ प्रस्थ तैल, उससे चौगुना दूध और ४ प्रस्थ दही और उससे दुगुनी कांजी के साथ, २-२ पल गठिवन, खार, पसरन की जड़, सेंधा नमक, मंजीठ, चीता और मुलेठी। पुनः १-१ पल परिमाण में जीवनीयगण के पदार्थ, ५ पल सोंठ और निशोथ डालकर भल्लातक (भिलावाँ) के साथ पका डालें। पककर तैयार हो जाने पर यह तैल पक्षाघात, संधिगतवात (आर्थ्राइटिस), शिरोगतवात तथा अस्थिगतवात को विनष्ट कर पौरुष, उत्साह, स्मरणशक्ति, बुद्धि, बल, वर्ण तथा क्षुधाग्नि का वर्धन करता है।

महाश्वगन्धादि तैल का लाभ

सुंदर भूमि में उगी हुई असगंध की जड़ १०० पल ओखली में कूटकर एक द्रोण जल में पका लें। तदनन्तर रस के चौथाई भाग रहने पर निकाल लें और उसमें बकरे का मांस २०० पल, घी १ प्रस्थ तथा घी से चौगुना गाय का दूध तथा वक्ष्यमाण द्रव्यों के २-२ तोले कल्क को उसमें मिला दें।

वक्ष्यमाण द्रव्य इस प्रकार कहे गये हैं, जैसे—वृद्धि, ऋद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, क्रौंच, ऋषभक, इलायची, मुलेठी, मुनक्का, मूसाकानी, जीवन्ती, मुगवन, खिरेंटी, बिदारीकंद, शतावर और असगंध।

इन सब वस्तुओं को मिलाने के पश्चात् घृत को अच्छी प्रकार से पकावें। पकने के बाद शीतल हो जाने पर उसमें ३२ तोले मधु और शक्कर मिलाकर किसी चिकने पात्र में रख दें। तत्पश्चात् इसे हथेली-भर की मात्रा में चाटकर यथेष्ट परिमाण में आहार ग्रहण करें।

इसके सेवन के परिमाणस्वरूप क्षीणकाय तथा क्षतक्षय रोगी, बालक तथा वृद्ध में होने वाला इंद्रिय-शैथिल्य, निस्तेजता आदि का निवारण होकर नीरोगता प्राप्त होती है।

इसके द्वारा सत्तरवर्षीय वृद्ध पुरुष अनेक रमणियों के साथ रमण करने पर भी धातुक्षीणता को प्राप्त नहीं होता।

इस घृत के प्रयोग से वन्ध्या नारी भी सन्तानोत्पत्ति में सक्षम हो जाती है। पूर्वकाल में अश्विनीकुमारों ने भी इस घृत को उत्तम वाजीकरण के रूप में स्वीकार किया है।

कुब्जप्रसारिणीतैल का लाभ

प्रसारिणी लता को १०० पल कूटकर एक द्रोण जल में पकावें। चौथाई

भाग शेष रह जाने पर उसमें ४ प्रस्थ तैल, दही तथा तैल से द्विगुणित मात्रा में दूध डालकर चित्रक, पिपरामूल, मुलेठी, सेंधा नमक, वचा, सौंफ, देवदारु, रास्ना, गजपीपर, प्रसारिणी की जड़ और मांसी भी मिला दें।

उक्त वस्तुओं के २-२ पल भाग को लेकर कल्क बना धीमी आँच पर पकावें। यह तैल-वात-कफनाशक होने के कारण वृद्धों के वात को भी दूर करता है। इसके साथ ही यह कुबड़ापन, निश्चेष्टता, लंगड़ापन, गृध्रसी, आक्षेपक, लकवा तथा जबड़ा, पीठ, शिर और गरदन की जकड़न में भी गुणकारी होता है।

प्रसारिणी लता को शरत्कालीन कोजागरी (आश्विनी पूर्णिमा) के पश्चात् पत्तोंसहित उत्पाटित कर लें। तदनन्तर कटसरैया १०० पल, शतावरी १०० पल, खिरेंटी १०० पल, क्रौंच १०० पल, असगंध १०० पल और केतकी १०० पल। इन्हें चौगुना जल डालकर पकावें। जब चौथाई भाग रह जाय तब इसमें ८ सेर तैल और मधु, मांसरस, चूक और ८ सेर दूध मिलाकर धीमी आग पर पकावें।

अब इसमें तगर, मैनफल, कूठ (कूड़ा), केशर, मोथा, दालचीनी, रास्ना, सेंधा नमक, पीपर, मांसी, मंजीठ, मुलेठा, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, सौंफ, नखी नामक द्रव्य, सोंठ, देवदारु काकोली, क्षीरकाकोली, वचा और भिलावाँ—इन सबको आधा-आधा पल पीसकर पहले से रखी हुई प्रसारिणी के साथ पाक करें।

यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि तैलपाक के समय यह तैल अधिक परिपक्व न हो और न ही अधपका रहे। उत्तम रीति से तैयार कर इसे किसी स्वच्छ पात्र में रख दें।

इस तैल के प्रयोग से कुब्जता, पंगुता, खर्वता (बौनापन), एकांग शुष्कता, अस्थि और संधिभग्नता, वातरक्त की दूषिता, वातवेदना से मानसिक उद्विग्नता तथा स्त्री-संसर्ग के फलस्वरूप शुक्र की कर्षिता आदि सभी रोगों में यह तैल वाजीकरण का कार्य करता है।

इसका उपयोग बस्ति, पान, अभ्यंग और भोजन के साथ करना लाभप्रद सिद्ध होता है। इसका नाम सप्तशतिकाप्रसारिणी तैल के नाम से विख्यात है।

महाप्रसारिणी तैल का लाभ

मूल, टहनी और पत्तोंसहित प्रसारिणी ३०० पल, पीली कटसरैया २०० पल, रेंड़ की जड़ २०० पल, रास्ना और सैनी १०० पल, देवदारु और केतकी १००-१०० पल। इनको १०० घट (१०० द्रोण) जल में काढ़ा बनाकर चौथाई रहने पर उसमें १-१ घट तैल और कांजी तथा ४ प्रस्थ दही का पानी मिला दें।

तत्पश्चात् शुक्त नामक अन्य प्रकार की कांजी, बकरे का मांस, गन्ने का रस और गाय का दूध भी ४-४ प्रस्थ परिमाण से मिलावें।

तदनन्तर इस मिश्रित तैल को असबरग, काकड़ासिंघी, अष्टवर्ग के द्रव्य (जीवक, ऋषभक आदि), मंजीठ, काकोली, काकजंघा, गोखरू, छोटी इलायची, कपूर, गुग्गुलु, धूपसरल, केशर, नखी नामक द्रव्य, काला चंदन, नीलकमल, कमलगट्टा, हलदी, शीतलचीनी, गठिवन, नागकेशर, खस, तज, सुपारी कटुकी, जायफल, सफेद चंदन, देवदारु, लाल चंदन, वचा, पत्थरफूल, सेंधा नमक, शिलारस, नागरमोथा, पसरन की जड़, नली (मूँगे के आकार वाली सुगंधित वस्तु), श्वेत विषखपरा, कपूर, हलदी, विशुद्ध कस्तूरी, दशमूल, केतकी की जड़, तगर, गठिवन, असगंध, सुगंधवाला, रेणुका, रसौंत, सेमल की जड़, कायफल, अगरु, प्रियंगु, सौंफ, कूठ, भिलावाँ, त्रिफला, कमलकेशर, कालीशर, लौंग और त्रिकटु—इनके ३-३ पल के साथ किसी बड़े पात्र में भरकर मंद अग्नि पर पकावें।

पक जाने पर इसका प्रयोग पान, अभ्यंग, बस्तिकर्म तथा नस्य के द्वारा करें। इसके उपयोग से सर्वांगवात, एकांगवात, नेत्र, संधिस्थल, हड्डी और मज्जागत वात का विनाश होता है।

यह **पित्त-कफोत्पन्न** रोगों को दूर कर धातु का पुष्टिकरण करता, यौवन को चिरस्थायी रखता, बूढ़े को युवा बनाता तथा वन्ध्या नारियों में गर्भधारण की क्षमता उत्पन्न करता है।

इस तैल के पान करने से गर्भिणी नारी धीर-वीर स्वस्थ तथा दीर्घजीवी पुत्र को जन्म देती है। इतना ही नहीं, बल्कि इससे सूखे वृक्ष भी हरे-भरे हो जाते हैं।

कस्तूरी की पहचान

जिस कस्तूरी में केतकी पुष्प की-सी गंध, हरताल के समान वर्ण, स्वाद में तीखी और कड़ुई, भार में हलकी, मसलने पर चिकनी, आग में डालने पर 'छितिछम' शब्द करने वाली, जलने पर चमड़े की-सी गन्ध देने वाली हो वही कस्तूरी मृगनाभि से निकलने वाली और उत्तम मानी जाती है। ऐसी कस्तूरी राजाओं के उपभोग की वस्तु होती है।

किन्तु इसके विपरीत हथेली में जल लेकर उसमें कस्तूरी मिला दो घड़ी तक अवलोकन करने पर यदि वह लालिमायुक्त पीले रंग की दीख पड़े तो वह बनावटी और नकली कस्तूरी होती है।

वातरक्त का उपचार

प्रकुपित वात का रक्त में संचरण होना ही वातरक्त कहा जाता है। यह

वातरक्त उत्तान और गम्भीर नाम से दो प्रकार का होता है। चर्म और मांस में प्रविष्ट हुआ वायु उत्तान तथा अन्तरायाम में संस्थित रहने वाला वायु गम्भीर कहा जाता है। उत्तान नामक वातरक्त में लेप, अभ्यंग, परिसेक तथा स्नानादि कर्म करने चाहिए।

किन्तु गम्भीर नामक वातरक्त विरेचन, आस्थापन, बस्ति तथा स्नेहपान के द्वारा चिकित्सनीय माना जाता है।

वक्ष्यमाण पिण्डतैलादि से अभ्यंग, तिक्तादि घृत का सेवन, सेंक, लेप तथा संयन्त्रादि द्वारा रक्त निष्कासन और शोधनकर्म द्विविध वातरक्तों में लाभकारी होता है।

विशेषतया गंभीर नामक वातरक्त हेतु शास्त्रोक्त घृतपान, शोधनकर्म, शिरोभेदन, पथ्य एवं हलका भोजन शास्त्रवेत्ताओं ने उचित कहा है।

गेहूँ का आटा और बकरी का दूध या बकरी के दूध में रेंड़ के बीजों का कल्क मिलाकर लेपन करना गुणकारी है।

अथवा सौ बार का धोया हुआ घृत और केवल बकरी के दूध से सेंकाई करना उत्तम है। गुरुच, सोंठ और धनिया—इन्हें ३-३ कर्ष लेकर पाचन सिद्ध करें।

इसके प्रयोग से रक्तवात, आमवात तथा सभी प्रकार के कुष्ठरोग निर्मूल हो जाते हैं।

गूगुल के साथ गुरुच का काढ़ा पीने से वातरक्त नष्ट होता है। अड़ूसा, गुरुच और अमलतास का काढ़ा अण्डी के तैल के साथ पान करना सम्पूर्ण शरीरोत्पन्न वातरक्त में लाभदायक होता है।

पुराना गुड़ के साथ सोंठ और हर्रें खाने के अनन्तर गुरुच का काढ़ा पान करने से प्रचण्ड वातरक्त भी दूर हो जाता है।

गुरुच का प्रयोग घी के साथ करना वातरोग, गुड़ के साथ अफरा, शक्कर के साथ पित्त, शहद के साथ कफ, अण्डी के तेल के साथ भीषण वातरक्त एवं सोंठ के संग करने पर आमवात रोग का शमन होता है।

गिलोय (गुरुच) कफ-वातनाशक, कफयुक्त मेदशोषक, वात-रक्तशामक, कच्छू नामक कुष्ठनिवारक तथा विसर्प (कुष्ठ रोग का एक भेद) रोग विनाशक होता है।

अतएव इसके स्वरस, कल्क, चूर्ण या क्वाथ का सेवन दीर्घकाल तक किये जाने से वातरक्त का शमन होता है।

दशमूल के साथ पकाया हुआ दूध पीने से तत्क्षण ही शूल का नाश हो जाता है। वाताधिक्य शूल में गुनगुना गरम घी से सेंक करने से शूल दूर होता है। परवल, कटुकी, भीरु (गन्ने की एक प्रजाति विशेष), त्रिफला और गुरुच। इनके साथ पकाया गया क्वाथ जलनयुक्त वातरक्त में लाभकारी होता है।

कफाधिक्य वाले वातरक्त में आँवला, मोथा और हलदी का काढ़ा पीना अथवा तालमखाना तथा गिलोय के क्वाथ को पीपर के साथ पान करना लाभप्रद है।

गुड़घृत नामक योग को कफरक्तशामक, कच्छू नामक कुष्ठरोग निवारक विसर्प तथा वातरक्त शांतिकारक और रुचिकारक कहा गया है।

समस्त प्रकार के वातरक्त में गुड़ के साथ हरड़ या गिलोय का क्वाथ अथवा छोटी पीपर के साथ अण्डी का प्रयोग सावधानीपूर्वक करते रहना चाहिए।

लांगली (कलिहारी) के कन्द को उत्पाटित कर त्रिफला, मंडूर और त्रिकटु के साथ मिलाकर लाल सहिजन और गिलोय या बिजौरा नीबू के रस में घोंटकर त्रिफला के रस में भिंगो दें।

तत्पश्चात् १-१ तोले की मात्रा में गोली बना दही के पानी में घोलकर पान करें। इसके सेवन से भीषण बिवाई रोग (पैर की एड़ियों का फटना) तथा सम्पूर्ण शरीर में विस्फोटस्वरूप प्रसारित होने वाले असाध्य वातरक्त का निर्मूलन होता है।

नवकार्षिक का लाभ

त्रिफला, नीम, मंजीठ, वचा, कटुकी, गुरुच और दारुहलदी। इन्हें १-१ कर्ष की मात्रा में लेकर पकाया गया कषाय वातरक्त, कुष्ठ, खुजली, रक्तविकार के कारण निकलने वाले शरीर पर चकते तथा गम्भीर कापालिक नामक कोढ़ का पान करने मात्र से ही अपकर्षण करता है। क्वाथ निर्माण हेतु द्रव्यसमूहों से अठगुना जल डालकर पकाना चाहिए।

गुडूची घृत का लाभ

गुडूची (गुरुच) के क्वाथ या कल्क में समान भाग घृत मिलाकर पाक करना आवश्यक है। यह घृत प्रदूषित रक्त, कुष्ठ और कठिन वायु का निवारक होता है।

सहस्रशतपाक तैल का लाभ

खिरेंटी के क्वाथ या कल्क में बराबर-बराबर तैल और दूध मिलाकर एक हजार या एक सौ बार पका लें। इस तैल से वातरक्त तथा वातरोग नष्ट होते हैं। साथ ही, यह एक श्रेष्ठ रसायनस्वरूप, इंद्रियों के लिए प्रसन्नताकारक, धातुवर्धक, स्वरसाधक, शुक्रदोष तथा रक्तदोष उन्मूलक है। किसी-किसी के मतानुसार इस तैल को केवल दश बार ही पकाना उपयुक्त माना गया है।

पिण्ड तैल का लाभ

सरिवन, पियासाल, मंजीठ और मुलेठी—इनके क्वाथों के साथ दूध डालकर पकाया गया पिण्ड नामक तैल वातरक्त में प्रयोक्तव्य है।

नागबलादि तैल का लाभ

एक सौ पल शुद्ध नागबला (गंगेरन) को एक द्रोण जल में पकावें। पकने

पर जब चौथाई रस शेष रह जाय तभी उसमें ४ प्रस्थ तैल और दूध को मिला दें। तदनन्तर तैल के साथ तगर और मुलेठी को ५-५ पल अलग-अलग लेकर पुनः पकावें। इस रीति से पक्वित यह तैल बस्तिकर्म के साथ प्रयुक्त किये जाने पर सात रात्रि में ही प्रबल वातरक्त का शमन संभव कर देता है।

पिण्ड तैल का लाभ

चार प्रस्थ कांजी में १-१ प्रस्थ तैल और राल के साथ अधिक मात्रा में जल मिलाकर करछुल से घोंटते हुए पका लें। पकने के पश्चात् इस तैल से ज्वर, शारीरिक जलन और वेदना दूर होती है। इसी तैल में मोम, मंजीठ, राल और शालपर्णी (सरिवन) मिला देने से यह एक अलग प्रकार का तैल निर्मित हो जाता हैं। इस तैल के द्वारा अभ्यंग करने पर वातरक्त रोग का विनाश होता है।

शतावरीघृत का लाभ

शतावरी के चौगुने कल्क और रस के साथ समान भाग में घृत तथा दूध मिलाकर पकावें। पकने के अनन्तर यह तैल वातरक्त को दूर करने वाला हो जाता है।

योगसारामृत का लाभ

जंगली भैंसे की आँख के आंतरिक अंश के सदृश चमकीला गूगुल और त्रिफला २-२ सेर, गिलोय ३२ पल। इन्हें ३२ सेर जल में करछुल से चलाते हुए आग पर पकावें। आधा भाग जल जाने पर नीचे उतार कर कपड़े से छानकर उसे पुनः पकावें। पकने के पश्चात् उसके ओले के समान श्वेत होकर गाढ़ा हो जाने पर द्रव्यसिद्धि हेतु वक्ष्यमाण चूर्ण को मिला दें।

वक्ष्यमाण चूर्ण इस प्रकार से है—शतावरी, गंगेरन, विधायरा, क्रौंच, विषखपरा, गुरुच, पीपर, असगंध और गोखरू। इन सब को १०-१० पल परिमाण में लेकर चूर्णित कर लें। इस चूर्ण में आधा शक्कर डालकर हाथों से खूब मर्दन कर लें। तदनन्तर इस चूर्ण में २ प्रस्थ मधु मिलाकर किसी पात्र में भर दें। इसके साथ ही उसमें १ प्रस्थ घी और १ प्रस्थ त्रिसुगंधि द्रव्य (इलायची, दालचीनी और तेजपात) का भी मिश्रण कर दें।

इस योगसारामृत का सेवन पथ्याहार ग्रहण करने के पश्चात् अग्निबलानुसार करना चाहिए। उक्त योग के प्रयोग से वात, पित्त, क्षय, कुष्ठ, पित्तोत्पन्न खाँसी, त्रिदोषज रोगों से मनुष्य रहित हो जाता है। कुछ ही दिनों के सेवनोपरान्त यह वलीपलित रोग (असमय में ही केशों की श्वेतता तथा चमड़े की सिकुड़न) से मुक्ति दिलाकर मानव को शक्तिशाली बना देता है। इतना ही नहीं, बल्कि यह योग दैहिक लक्ष्मी और कान्तिविवर्धक भी होता है।

वातरक्त रोगी के लिए यह आवश्यक है कि वह दिन में शयन, अग्निसेवन, व्यायाम, स्त्रीसंसर्ग, कटु, भारी, विलम्ब से पचने वाला तथा नमकीन पदार्थों का उपयोग न करे।

महामञ्जिष्ठादि का लाभ

मंजिष्ठा, कूठ, गुरुच, वनवचा, सोंठ, हलदी, दारुहलदी, मुनक्का, नीम, पटोलपत्र (परवल का पत्ता), कटुकी, भारंगी, वायविडंग (भाभीरंग), चीता, मरोड़फली, देवदारु, कैथ, कमल, हर्रे, पूतिकरंज, अखरोट, खैर, त्रिफला, चिरायता, बकायन नामक नीम, जीवक, रक्तचंदन, प्रियंगु, अमलतास, श्वेतचंदन, बरुना, पाठा, सौंफ, जवाखार, सज्जीखार, वासा (अडूसा) पित्तपापड़ा, सारिवा, अतीस, धमासा, इन्द्रायण और रसोत। उक्त वस्तुओं को मंजिष्ठादिगण कहा जाता है।

इनके द्वारा निर्मित कषाय से सभी प्रकार के चर्मरोग (छीपी आदि) तथा अट्ठारह प्रकार के कुष्ठ अल्पावधि में निर्मूल हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह प्रसुप्त (दबा हुआ) वातरक्त, विद्रधि, प्रमेह तथा सम्पूर्ण रक्तविकारों को दूर करने में सहायक होता है।

ऊरुस्तम्भ रोग का उपचार

प्रदूषित वायु जब जाँघों को जकड़कर भारी बना चलने-फिरने में असमर्थ कर देता है तब उसे ऊरुस्तंभ के नाम से जाना जाता है। इस वातरोग में स्नेहन और संशोधन कर्म से किसी तरह का लाभ नहीं होता। इसमें कफ, आमवात तथा मेदाधिक्य होने के फलस्वरूप इनके विनाशक औषधों का प्रयोग करना लाभप्रद सिद्ध होता है।

अथवा रूक्ष पदार्थों का सेवन करना उचित है, जैसे—जौ, श्यामाक और मड़ुआ (एक प्रकार का लाल धान, कोंदों नामक धान) आदि। ये पदार्थ किंचित् तैल या जल में पकाये हुए नमकविहीन शाकों के साथ, जल में पकाये हुए घृतरहित जांगल प्रदेशीय मृगमांसो के साथ मधु तथा अरिष्टपानक व्यक्तियों के लिए गुणकारी कहे गये हैं।

आमवात निवारण के लिए वत्सकादिगण, हरिद्रादिगण तथा वचादिगण के औषध अथवा पूर्वकथित षट्चरण नामक योग के साथ सेंधा नमक मिलाकर गुनगुने जल के साथ उपयोग करें। अथवा मेदा, चव्य, कटुकी, पीपर और मोथा को शहद के साथ चाटें।

अथवा चव्य, हर्रे, चीता और देवदारु के कल्क को मधु के साथ, पर्वतोत्पन्न गूगुल और हरड़ को गोमूत्र के संग या त्रिकटु, चीता, मोथा, त्रिफला और वायविडंग—

इनके साथ समान भाग में गूगुल मिलाकर नित्यप्रति सेवन करें। इसके द्वारा मेद, कफ तथा आमवातोत्पन्न रोगों का उन्मूलन होता है।

इस प्रकार की विधि को अपनाने, खार तथा गोमूत्रमिश्रित स्वेदन, सेंक और उबटनों से भी कफाक्रान्त वायु मेदसहित शमित हो जाता हैं। रूखे उपचारों से निद्रानाश का वेदनासूचक वायु का प्रकोप रहने पर स्नेहन और स्वेदन कर्म (पसीना लाना) के द्वारा वायु को अनुकूल बनाना चाहिए।

गुरुच १ प्रस्थ, गूगुल आधा प्रस्थ, हरड़ और बहेड़ा आधा-आधा पल लेकर अच्छी प्रकार से कूटकर ३२ सेर जल में पकावें। चौथाई भाग शेष रहने पर नीचे उतारकर उसका रस निकाल लें। पुन: उसे तब तक पकावें जब तक वह गाढ़ा न हो जाय। पक जाने पर दन्ती, त्रिकटु, वायविडंग, गुरुच, त्रिफला और दालचीनी—इनके चूर्ण को अथवा केवल त्रिफला के चूर्ण को ही २ कर्ष परिमाण में मिलाकर प्रतिदिन आधा-आधा पल की मात्रा में या अग्निबलानुसार सेवन करें।

पुराकाल में अश्विनीकुमारों द्वारा, निर्मित अमृतगुग्गुलु वातरक्त, कोढ़, बवासीर, मंदाग्नि, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर (गुदाद्वार का एक जटिल रोग) तथा वातोत्पन्न सूजन में लाभदायक होता है।

अमृतागुग्गुलु निर्माण व लाभ

गिलोय २ प्रस्थ, गूगुल १ प्रस्थ, हरड़, बहेड़ा, आँवला और पुनर्नवा १-१ प्रस्थ। इन सबको एकत्रित कूटकर ३२ सेर जल में पका लें। चौथाई भाग रहने पर उसे तब तक दोबारा पकाते रहे जब तक वह पककर गाढ़ा न हो जाय।

तत्पश्चात् उसमें दन्ती, चित्रकमूल, पीपर, सोंठ, त्रिफला, गिलोय, दालचीनी और वायविडंग—इन्हें आधा-आधा पल तथा निशोथ एक कर्ष लेकर चूर्ण बना उसे अल्प उष्ण क्वाथ में मिला दें। इस प्रकार यह अमृतगुग्गुलु तैयार हो जाता है।

यह मुख्यतया अम्लपित्त के रोगी में विशेष प्रभावशाली है। इसके अतिरिक्त यह वातरक्त, कुष्ठ, अर्श, मन्दाग्नि, दुष्टप्रण (जो सहज में ठीक न हो सके), प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाड़ीवात, आढ्यवात (ऊरुस्तम्भ), शोथ तथा अन्यान्य प्रकार के वातरोगों का नाश करता है। इसे पूर्वकाल में देववैद्य अश्विनीकुमारों ने निर्मित किया था।

इस रोग में सुयोग्य चिकित्सक को वातविनाशक प्रयोग रोगी द्वारा कराये जाने चाहिए। अर्थात् रोगी को समय-समय पर व्यायाम, नदी के शीतल जल में तैराना, स्वच्छ सरोवर में डुबकी लगाना, उन्नत तथा परिपुष्ट स्तनवाली प्रौढ़ा नारियों का संशीलन, आकर्षक स्थानों में परिभ्रमण आदि कराना।

इस प्रकार के प्रयोग द्वारा कफ और मेद के विनाश होने पर स्नेहनकर्म भी कराना उचित है।

शिलाजीत, गूगुल, पीपर और सोंठ। इनके चूर्ण को दशमूल के रस या गोमूत्र के साथ पान करें।

अथवा भिलावाँ, गुरुच, सोंठ, देवदारु, हरड़ और विषखपरा। इन सबको दशमूल के साथ प्रयोग करने से जाँघों की जकड़न समाप्त हो जाती है।

छोटी पीपर, पिपरामूल और गिलोय के फल का कल्क बना मधु के साथ सेवन करना ऊरुस्तंभ में लाभकारी होता है।

अथवा त्रिफला, चव्य, त्रिकटु और मेथी का चूर्ण बनाकर शहद के साथ चाटना चाहिए। गोमूत्र के संग गूगुल का पान करना ऊरुस्तंभ में गुणकारक होता है।

कटुकी और त्रिफला का चूर्ण मधु के साथ चाटने से भी उत्तम फल मिलता है। अथवा षट्चरण द्रव्यसमूहों का चूर्ण गुनगुना जल के साथ सेवन करने से लाभ होता है। छोटी पीपर या अण्डी के तेल के साथ मधु अथवा गुड़ के साथ सेवन करें। ऊरुस्तंभ में शुण्डिया नामक शाक का अरिष्ट भी लाभकारी सिद्ध होता है।

अष्टषट्चर तैल का लाभ

कालीमरिच, छोटीपीपर, पिपरामूल तथा सोंठ ८-८ पल। इनमें १-१ प्रस्थ तैल और दही मिलाकर पकाने से यह षट्चर तैल बन जाता है। इसके सेवन से गृध्रसीवात तथा ऊरुस्तम्भ में लाभ मिलता है। तैल एवं दही के संयोग से निर्मित होने के फलस्वरूप इसे 'षट्चरतैल' कहा जाता है।

आमवात का उपचार

आमवात (प्रकुपित वायु का त्रिकास्थि तथा संधिस्थल में प्रवेश करके शरीर को स्तंभित करना) के रोगी के लिए वंधन, स्वेदन (पसीना निकालना), तिक्त, दीपन तथा कटु पदार्थ का सेवन, विरेचन, स्नेहन एवं बस्तिकर्म उपयोगी सिद्ध होता है।

रास्नादिक्वाथ का प्रयोग व लाभ

रास्ना, रेंड़ की जड़, शतावरी, कटसरैया, जवासा, वासा (अड़ूसा), गुरुच, देवदारु, अतीस, त्रिफला, मोथा, कचूर और सोंठ। इनके मिश्रण से पकाया हुआ कषाय अण्डी के तैल के साथ प्रयुक्त किये जाने पर आमवात शूलवात, कटिवात, जाँघ, त्रिकसंधिस्थल, पसली, पीठ, पेट तथा वक्षःस्थल के वात नष्ट हो जाते हैं। अथवा सोंठ, कचूर, अजवायन, हरड़, देवदारु, अतीस और गुरुच। इनके द्वारा निर्मित कषाय का पान तथा रूखा आहार भी आमवात में पाचन का कार्य निष्पन्न करता है।

कचूर और सोंठ का कल्क पुनर्नवा (गदहपूरना) के काढ़ा में मिलाकर सात दिनों तक पीने से आमवात समाप्त हो जाता है। अथवा दशमूल, गुरुच, रेंड़ की जड़, रास्ना, सोंठ और देवदारु। इनके संमिश्रण से पकाया हुआ क्वाथ अण्डी के तेल के साथ सेवन करना आमवात तथा गुरुवात को मिटा देता है।

दशमूल के कषाय या शुण्ठीजल के साथ अण्डी के तेल का पान करने से कुक्षि (कोख), बस्ति तथा कटिशूल का निवारण होता है। अथवा रास्ना, गिलोय, रेंड़ की जड़, देवदारु और सोंठ—इनके कषाय-पान से आमवात, संधिवात, अस्थिगत, मज्जागत तथा सर्वांगवात का उन्मूलन होता है।

रास्ना, गुरुच, अमलतास, देवदारु, गोखरू, एरंडमूल और विषखपरा—इनका क्वाथ बना सोंठ चूर्ण के साथ पीने से जाँघ, पीठ, त्रिकसंधि और पार्श्वशूल नष्ट होता है। अथवा सोंठ और गोखरू का पाचक क्वाथ प्रतिदिन पान करने से आमवात तथा कमर की पीड़ा से छुटकारा मिलता है।

उक्त क्वाथों में जवाखार का समायोजन कर देने से मूत्रकृच्छ्र (जलनयुक्त पेशाब का कष्ट के साथ थोड़ा-थोड़ा आना) रोग का निर्मूलन होता है। आमवात, सूजन तथा कटिशूल में सोंठ और गुरुच का काढ़ा बना छोटी पीपर का चूर्ण डालकर पीना उचित है।

हरड़ को अण्डीतैल के साथ प्रतिदिन सेवन करना आमवात तथा गृध्रसीवात में लाभदायक सिद्ध होता है। सोंठ के चूर्ण को कांजी के साथ २ तोले की मात्रा में सेवन करने से आमवात तथा कफवात दूर होता है।

पंचकोल के चूर्ण को उष्ण जल के साथ पान करना अग्निमांद्य, शूल, गुल्म, प्लीहा (तिल्ली), आमवात, कफवात तथा अरुचिनाशक है। अथवा गिलोय, सोंठ, गोखरू, गोरखमुंडी और बरुना का चूर्ण दही के पानी या कांजी के साथ उपयोग करने से आमवात का विनष्टीकरण होता है।

वैश्वानरचूर्ण का लाभ

सैंधव और अजवायन २-२ भाग, अजमोदा ३ भाग, सोंठ ५ भाग और हरड़ १२ भाग। इन सबको एकीकृत करके बारीक चूर्ण बना कांजी, छाँछ, घी या गरम जल के साथ सेवन करने के परिणामस्वरूप आमवात, बस्तिगत रोग, प्लीहा, गठिया का शूल, बवासीर, अफरा, मलावरोध, औदरिक रोग तथा हाथ-पैर में होने वाले रोगों का निवारण होता है। इससे विपरीत वायु अपने स्वाभाविक अवस्था में आ जाता है।

अलम्बुषादि चूर्ण का लाभ

गोरखमुंडी, गोखरू, गुरुच, विधायरा, छोटी पीपर, त्रिवृता, मोथा, वरुणा,

पुनर्नवा, त्रिफला और सोंठ। इन सबका चूर्ण दही के पानी, कांजी, मट्ठा या मांसरस के साथ प्रयोग करने पर आमवात तथा संधिगत शोथ (जोड़ों की सूजन) का नाश हो जाता है।

सौंफ, वायविडंग, सेंधा नमक और कालीमरिच। इनके समान भाग का चूर्ण बनाकर दही के पानी के साथ उपयोग करना क्षुधाग्निवर्धक होता है। अथवा हींग, चव्य, सौवर्चल (सोंचर) नमक, सोंठ, पीपर, कालीजीरी और पुष्करमूल। इनकी मात्रा को क्रमशः बढ़ाकर चूर्ण बना लें। पूर्ववर्ती चूर्ण के समान यह भी आमवात में लाभप्रद सिद्ध होता है।

चित्रक, पिपरामूल, अजवायन, सौंफ, वायविडंग, अजमोदा, जीरा,देवदारु, चव्य, इलायची, सेंधा नमक, कूड़ा (कूठ), रास्ना, गोखरू, धनिया, त्रिफला, मोथा, त्रिकटु, दालचीनी, खस नामक तृण, इन्द्रयव, तालीसपत्र और तेजपात। इनका चूर्ण बना लें। चूर्ण के बराबर गूगुल को घी में कूट-पीसकर चूर्णित कर लें। इसे भोजनोपरान्त सेवन करें।

इसका नाम योगराज गुग्गुलु है। यह अमृत सदृश गुणकारी होने से आमवात, आमोत्पन्न कृमिरोग, दुष्टव्रण, प्लीहा, मलद्वार, औदरिक रोग, अफरा, बवासीर आदि को दूर कर क्षुधाग्नि, बल तथा तेजस्विता लाता है। इसके साथ ही इससे संधिगत, मज्जागत वातरोग भी निर्मूल हो जाते हैं।

प्रकारान्तर से अलम्बुसादि चूर्ण प्रयोग

गोरखमुंडी, गोखरू, त्रिफला, सोंठ और गुरुच। इनकी मात्रा क्रमशः बढ़ाते हुए इनके समान भाग में श्यामा लेकर चूर्ण तैयार कर लें। इस चूर्ण को दही के पानी, मदिरा, मट्ठा, कांजी या जल के साथ पान करने से आमवात, सूजनयुक्त वातरक्त, त्रिकसंधि, जानुसंधि, ऊरुसंधि, अस्थिगत ज्वर एवं अरोचकता का निवारण होता है।

त्रिफला, अमलतास, गठिवन, कटुकी, रास्ना और गिलोय। इनका कषाय आमवात तथा शिर के कम्पन का उन्मूलक होता है।

अजमोदा, कालीमरिच, छोटीपीपर, वायविडंग, देवदारु, चीता, सौंफ, सेंधा नमक, पिपरीमूल—इन सबके ९-९ पल, सोंठ १० पल, विधायरा १० पल, हर्रें ५ पल—इनको एकीकृत करके चूर्ण बना लें।

तत्पश्चात् इस निर्मित चूर्ण के बराबर गुड़ मिलाकर वटी बना लें। इस वटी का सेवन गुनगुना जल के साथ किये जाने पर आमोत्पन्न कठिन रोग, विश्वा, विसर्प आदि दुष्ट रोग, गृध्रसीवात, कटिप्रदेश तथा बस्तिभाग में विकृति आने के कारण होने वाली फूटन, हड्डी तथा जाँघ की हड़फूटन, संधिस्थानों की सूजन तथा आमवातोत्पन्न

सभी प्रकार के रोग उसी प्रकार विनष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार सूर्य-रश्मियों से अंधकार का लोप हो जाता है।

शुण्ठीघृत का लाभ

सोंठ के चौगुने क्वाथ और कल्क के साथ १ प्रस्थ घी को पकावें। अथवा चौगुने जल के साथ सोंठ का कल्क और घी मिलाकर पकाना उचित है। यह शुंठीघृत वात-कफशामक, क्षुधाग्निवर्धक तथा आमवातोत्पन्न कटिपीड़ा का नाशक है।

गुडूचीघृत का लाभ

गुरुच के कषाय तथा सोंठ के कल्क के साथ धीमी आँच में पकाया गया घृत वातरक्तापहारक, आमवातादि वातसमूहों का निवारक, वातोत्पन्न कृमि तथा दुष्टव्रणों का संहारक, बवासीर और गुल्म रोगों का उन्मूलक कहा गया है।

हींग, त्रिकटु, चव्य और सेंधा नमक १-१ पल लेकर कल्क बना लें। पुनः इसमें कांजी ४ प्रस्थ और घी १ प्रस्थ डालकर आग पर पकावें। इस घृत के सेवन से औदरिक रोग, शूल, कब्जियत, आध्मान, आमवात, कटिग्रह, ग्रहणी तथा अग्निमांद्य दूर होता है।

इस घृतपाक की एक अन्य विधि इस प्रकार भी बतलायी गयी है कि इसे पौष्टिकता के लिए दूध के साथ, मलावरोध तथा मूत्रावरोध में दही के संग एवं अग्निवर्धन के निमित्त दही का पानी मिलाकर पकाना उचित है।

इस शुण्ठी घृतपाक में घी की मात्रा से चौगुना सौवीरकांजी तथा सोंठ का कल्क मिलाकर पकाया जाता है। यह क्षुधाग्निवर्धक तथा आमवातोपहारक होता है।

रास्ना, एरण्डमूल, वासा (अड़ूसा), दुरालभा, कचूर, देवदारु, खिरेंटी, मोथा, सोंठ, अतीस, हर्रे, गोखरू, अमलतास, जटामांसी, धनिया, पुनर्नवा, अतीस, गुरुच, छोटी पीपर, विधायरा, शतावरी, वचा, कटसरैया, चव्य, कटेरी और कंटकारी (भटकटैया)।

इन सब वस्तुओं को बराबर-बराबर तथा तिगुना रास्ना मिलाकर कषाय पकावें। आठवाँ भाग शेष रहने पर उसमें सोंठ और त्रिफला का चूर्ण या अलम्बुषादि अथवा अजमोदादि चूर्ण को दोषानुसार मिला दें।

पककर तैयार हो जाने पर यह महारास्नादि क्वाथ संधिगतवात, मज्जागत वात, सभी प्रकार का अफरा, शिरःकम्प, कुबड़ापन, विषमवात, अर्धांगवात, लकवा, जानुपीड़ा, जाँघपीड़ा, अस्थिवेदना, गृध्रसीवात, अवबाहुकवात, वातरक्त, ऊरुस्तम्भ, बवासीर, गुल्म, व्रणविसूची, विद्रधि (कुष्ठविशेष), क्रोष्टुशीर्षकसंज्ञक वात, अंत्रवृद्धि,

श्लीपद (पैर के पंजो पर होने वाला शोथ, फीलपाँव), यौनरोग, शुक्ररोग, लिंगगत वायु तथा स्त्रियों के वन्ध्यात्व दोष को मिटाता है।

गर्भधारण में अशक्त नारियों को गर्भधारण में सक्षम बनाता है। यह क्वाथ समस्त दोषों का पाचक तथा रोगों का संशोधक होता है। इसका निर्माण स्वयं प्रजापति के द्वारा हुआ है।

खण्डशुण्ठी का लाभ

सोंठ ८ पल, घी २० पल, जवाखार, सज्जीखार २ प्रस्थ, खाँड़ ५० पल। अब इसमें सौंफ, जीरा, त्रिकटु, इलायची, दालचीनी, तेजपात, अजवायन, कालीजीरी, वंशलोचन, मोथा, नागकेशर और सुगंधवाला—इन्हें १-१ पल डालकर पकावें। यह योग बलकारक, आयुवर्धक तथा वलीपलित रोग का नाशक होता है।

रसोनपिण्ड का लाभ

लहसुन १०० पल, काला तिल ४ प्रस्थ तथा हींग, त्रिकटु, सज्जीखार, जवाखार, पंचलवण, सौंफ, कूठ (कूड़ा), पिप्पलीमूल, चीता, अजमोदा, अजवायन और धनिया—इन्हें १-१ पल।

उक्त द्रव्यों का चूर्ण बनाकर किसी घी चुपड़े हुए चिकने पात्र में सोलह दिनों तक रख छोड़े। तत्पश्चात् उसमें एक मान तैल तथा आधा प्रस्थ कांजी मिलाकर २ तोले परिमाण में खाने के अनन्तर जल या मदिरापान करें। इसके प्रयोग से आमवात, सर्वांगवात, एकांगवात, अपस्मार, अग्निमांद्य, खाँसी, श्वास, भगन्दर, उन्माद, वातभीति एवं शूल रोग में लाभ होता है।

आमवाती को निषेध

आमवातग्रस्त व्यक्ति के लिए दही, मछली, गुड़, दूध, पोई नामक शाक, उड़द, पीठी तथा जलप्रदेशीय जीवों के मांस अग्राह्य होते हैं। ऐसे रोगी के लिए मलोत्पादक, भारी तथा मण्डयुक्त पदार्थ भी त्याज्य होते हैं।

सिंहनादगुग्गुलु का निर्माण व लाभ

मर्दित गुग्गुलु १ सेर, सरसों का तैल ८ पल तथा त्रिफला डेढ़ प्रस्थ लेकर १ द्रोण जल में पाक करें। चौथाई भाग रहने पर उसे छानकर पुनः पकावें। पकने के अनन्तर उसमें १-१ पल त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, वायविडंग तथा ४-४ तोले गुरुच, चीता, निशोथ, दन्ती, चव्य, जमीकन्द (सूरन), मानकन्द, शोधित पारद, गंधक और एक हजार कचनार की फलियों का चूर्ण बनाकर मिला दें। इसे प्रतिदिन २ माशे की मात्रा में खाकर जल का पान करें।

यह आमवात, शिरोवात, गठियावात, जानुवात, भगन्दर, ऊरुवात,

कटिग्रहवात, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, भग्नवात, कृमिरोग, औदरिक रोग, पाँच प्रकार (वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, द्वन्द्वज, सान्निपातिक) की खाँसी, श्वास, क्षय, विषमज्वर (टायफाइड), प्लीहा (तापतिल्ली), श्लीपद (फीलपाँव) गुल्म, पाण्डु, कामला, अम्लपित्त (खाये हुए पदार्थ में उत्पन्न होने वाला खट्टापन) तथा मोटापा का नाश करता है। यह सिंहनाद गुग्गुलु कफरूप हाथी को भयभीत करने हेतु सिंहस्वरूप होता है।

विशेष—गूगुल की पाँच प्रजातियाँ मानी गयी हैं। जैसे—महिषाक्ष, महानील, कुमुद, पद्म तथा हिरण्य। महिषाक्ष गूगुल भ्रमर के समान, महानील स्वभावानुसार नीलवर्ण का, कुमुद गूगुल कुमुद की आभा के सदृश, पद्मनामक गूगुल माणिक्य रत्न के वर्णवाला और हिरण्य स्वर्णाभा के समान होता है। प्रयोग हेतु हिरण्यसंज्ञक गूगुल लेना ही उपयुक्त कहा गया है।

शूलरोग का उपचार

वात-पित्तादि विकारों के शमनार्थ बलाबल के अनुसार वमन, लंघन, स्वेदन, पाचन, तमाल (आबनूस वृक्ष) फल की वर्तिका, क्षार पदार्थ, चूर्ण तथा अनेक प्रकार की उपयोगी वटी शूलरोग में उत्तम फल देती है। वायु अत्यधिक वेगवान होता हैं अतः इसका नियंत्रण अविलम्ब कर लेना आवश्यक कहा गया है।

सर्वप्रथम शूलग्रस्त रोगी में स्वेदनकर्म (पसीना देना) ही लाभकारी सिद्ध होता है।

सेंधा नमक, त्रिकटु, लावा, हींग, काला नमक और दाडिमादिगण मिश्रित कुलथी का चिकना यूष पान करने से वातोत्पन्न शूल की पीड़ा तत्क्षण ही शान्त हो जाती है।

हिंगुपत्री (हींग), अतीस, त्रिकटु, वचा, काला नमक, हर्रें, खिरेंटी, गदहपूरना, अण्डी, कंटकारी, कटेरी, गोखरू, हींग और नमक। इनके चूर्ण का उपयोग गरम जल से करने पर शीघ्र ही वेदना नष्ट होती है।

हींग और पुष्करमूल का अथवा अण्डी की जड़ और इन्द्रयव का क्वाथ हींग तथा काला नमक के साथ पान करने से शीघ्र ही शूल का निवारण होता है।

अथवा अजवायन, हींग, सेंधा नमक, खार, काला नमक और हरड़—इन्हें मद्यमण्ड के साथ पीने से शूल का नाश होता है।

काला नमक, इमली, कालीजीरी तथा कालीमरिच—इन्हें क्रमशः बढ़ा-बढ़ाकर बिजौरा नीबू का रस पान करें तथा बाद में गोली बनाकर भी खावें तो वातशूल नष्ट होता है।

वातशूल की अत्यन्त बढ़ी हुयी अवस्था में हींग, अम्ल, छोटी पीपर,

आँवला, अजवायन, खार, हरड़ और सेंधा नमक। इनको समान भाग में चूर्ण बनाकर मद्यमांड में मिश्रित कर पान करें।

कालातिल के कल्क को उदर पर मर्दन करने से असहनीय वातशूल भी शान्त होता है।

अथवा कांजी मिला हुआ मैनफल के कल्क का नाभि पर लेपन करने से वातशूल का कष्ट दूर होता है।

अथवा जीवन्ती की जड़ का कल्क तैल में मिलाकर लेपित करने पर पसली का दर्द जाता रहता है।

पैत्तिकशूल में गुड़, दूध, चावल, शास्त्रकथित घृत का पान, विरेचन तथा जंगली मृगों के मांस भी प्रयोग में लाये जाते हैं।

पित्तज शूलपीड़ा में उपयुक्त रसों के साथ दूध मिलाकर या परवल और नीम के रस में गन्ने का रस का मिश्रण कर वमनार्थ देना उचित है। अथवा त्रिविध वायु-सम्पन्न बालुकातीर तथा शीतल जल में भिगोये हुए कांस्यपात्र भी उपयोगी माने जाते हैं।

इसमें शीतल उपचार चंदन से लेपित हथेली, मणि, चाँदी एवं जलपूरित ताम्रपात्रों को शूल के ऊपर स्थापित करना भी लाभप्रद होता है।

पैत्तिक शूल में पित्तापहारक विरेचन, खरगोश तथा लवा पक्षियों के मांसरस, धान की खीलें, मधुयुक्त तर्पण तथा मधुमिश्रित अन्य शीतलोपचार भी गुणकारी सिद्ध होते हैं।

पित्तोत्पन्न शूलसहित ज्वर, वमन, दाह और अत्यधिक प्यास लगने पर यवनिर्मित शीतल पेया में मधु डालकर पान करने से लाभ होता है।

आँवला, बिदारीकंद, त्रायमाण या दाख के रस में शक्कर मिलाकर पीना शीघ्र ही पित्तजशूल का नाशक होता है।

अथवा जलन एवं शूल के शान्त्यर्थ शतावरी के रस में मधु मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल पान करना श्रेयस्कर है। शतावरी समस्त प्रकार के पित्तज रोगों में अत्यन्त लाभकारी कही गयी है।

शतावरी, मुलेठी, खिरेंटी, कुश और गोखरू—इनके शीतल जल में गुड़, मधु और शक्कर मिलाकर पीने से पित्तोत्पन्न दाह, शूल और वातज्वर का शीघ्र ही निवारण होता है।

अथवा त्रिफला, नीम, मुलेठी, कटुकी और अमलतास—इनसे निकाले हुए जल में मधु मिलाकर पान करने से शीघ्र ही दाह एवं शूल का शमन हो जाता है।

कटेरी, कंटकारी, गोखरू, एरण्डमूल, कुश-कास (तृणविशेष) और

तालमखाना—इनके रस में शक्कर मिलाकर पान करना भयंकर पित्तज शूल में शान्तिकारक होता है।

अथवा केवल आँवले के चूर्ण को शहद के साथ चाटना भी उपयोगी होता है। पित्तज शूल के शमनार्थ सुविज्ञ चिकित्सक को अन्यान्य उपाय भी करने चाहिए।

कफोत्पन्न शूल में लंघन एवं वमनकर्म हितकर होते हैं। तदनन्तर कफापहारक उष्ण तथा कटु पदार्थों से युक्त उपायों का आश्रय लेना चाहिए। अथवा बेल की जड़, अण्डी की जड़, चीता और सोंठ।

इनके चूर्ण में हींग और सेंधा नमक मिलाकर उपयोग करने पर कफजन्य शूल शीघ्र ही बन्द हो जाता है।

त्रिकटु, निशोथ, मोथा, त्रिफला और चीता—ये सब सम भाग, इसका आधा पारा और गंधक तथा अभ्रक और वायविडंग दुगुने परिमाण में लेकर त्रिफला के कषाय में २-२ तोले की एक-एक गोली बना लें। इसे प्रतिदिन प्रात:काल एक गोली खा लेने से त्रिदोषज शूल, अम्लपित्त, वमन, हृत्शूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल और गुदशूल का नाश होता है। इसे खाने के अनन्तर भक्तवारि (मंड) का पान करना चाहिए। अत: इसी कारण इसका नाम भक्तवारि कहा जाता है।

अथवा बिजौरा नीबू के रस या सहिजन के क्वाथ में खार मिलाकर मधु के साथ पीने से हृत्शूल, पार्श्वशूल तथा बस्तिशूल नष्ट हो जाता है।

पंचकोल में बिदारीकंद के रस को पकाकर पीने से कफजन्यशूल दूर होता है। इसके अतिरिक्त अनार के रस में त्रिकटु और सेंधा नमक मिला मधु के साथ पान करने से त्रिदोषज शूल का निवारण होता है।

एरण्डद्वादशक का लाभ

अंडी की जड़ और उसके फल, कंटकारी, कटेरी, गोखरू, सालवन, पिठवन, मुगवन, मषवन, सहदेई, चित्रपर्णिका (चितवन) और तालमखाना। इनके सम भाग को जल में निर्मित कर खार मिलाकर पान करें। इससे सर्वदोषोत्पन्न शूल का निवारण होता है।

गोमूत्र में शोधित मंडूर में त्रिफला चूर्ण मिला मधु और घृत के साथ चाटने से सान्निपातिक शूल निर्मूल होता है। अथवा शंखचूर्ण में सेंधा नमक, हींग और त्रिकटु को मिलाकर गरम जल के साथ पान करने से भी उक्त दोष नहीं रह जाता।

आमदोषोत्पन्न शूल में कफजशूलनाशक प्रयोग करने चाहिए, क्योंकि जो-जो पदार्थ अग्निवर्धक होते हैं वे ही आमदोषनाशक भी होते हैं।

अथवा एरण्डमूल, सोंठ, कंटकारी, कटेरी, बिजौरा नींबू, पाषाणभेद,

त्रिकटु की जड़ में जवाखार, हींग, सेंधा नमक तथा अण्डी के तेल को मिलाकर पान करने से **कटिशूल**, **जननेन्द्रियशूल**, **हृत्शूल**, **स्तनशूल** तथा इनसे संलग्न अंगों के रोगों में प्रयुक्त करने चाहिए।

हींग, धनिया, त्रिकटु, अजवायन, चित्रक और हर्रे। इनके चूर्ण में खार और सेंधा नमक डालकर गुनगुना जल के साथ प्रात:काल पीना लाभकारी होता है। उक्त प्रकार का योग मल-मूत्रशूल तथा वातशूल नाशक है। इसके साथ ही पाचक और क्षुधाग्निवर्धक भी है।

चित्रक, गठिवन, एरण्डमूल, सोंठ और धनिया—इनके जल में पकाये हुए रस को हींग, विड् नमक तथा सेंधा नमक मिलाकर सेवन करने के फलस्वरूप शूल, पेट का अफरा और कब्जियत दूर होती है।

अथवा अजवायन, सेंधा नमक, हरड़ और सोंठ। इन्हें बराबर भाग में बनाया गया चूर्ण शूल को मिटाकर मन्दाग्नि को बढ़ाता है।

वात-पित्तोत्पन्न शूल में बृहत्यादिगण के औषधों के साथ मधु मिलाकर लें। कफ-पित्तोत्पन्न ज्वर,वमन, जलन और शूलपीड़ा के निराकरण हेतु परवल, त्रिफला और नीम को मधु के साथ प्रयोग करें।

पूर्वकथित पित्तज एवं कफज शूलनाशक जो प्रयोग पृथक्-पृथक् रूप से वर्णित हैं उनके संमिश्रण का प्रयोग किया जाना चाहिए। दोषों के बलाबल के अनुरूप कफज-पित्तज में कथित वमन, विरेचन आदि प्रयुक्त करने चाहिए।

कफ-वातोत्पन्न हृत्शूल, पार्श्वशूल, उदरवेदना और विसूचिका में अण्डी, हींग और सोंठ का चूर्ण समान भागों में बनाकर कालीमिर्च तथा सेंधा नमक मिले हुए जल के साथ पीना उपयोगी है।

उक्त कथित एरण्डादि चूर्ण निर्माण हेतु हींग की लघु मात्रा लेनी चाहिए। अपरालिखित समान भाग का अर्थ पदार्थ से संबंधित है, ऐसा वृद्धजनों का कथन है।

सोंठ, अण्डी की जड़, दशमूल और इन्द्रयव। इनके साथ पकायें गये जल में सज्जीखार, जवाखार, हींग, सेंधा नमक, चौहारकोड़ा, बिरियासोंचर नमक तथा कूठ के चूर्ण का सेवन करें।

ऐसा करने से हृत्शूल, पार्श्वशूल, कटिशूल, बवासीर, पाकाशयिक रोग, ज्वर, गुल्म और शूलरोग नष्ट होते हैं।

हींग, काला नमक, हरड़, विड् नमक और सेंधा नमक—इन सब वस्तुओं के साथ अथवा कूठ के चूर्ण को दशमूल और इन्द्रयव के साथ पकाकर पान करें।

इसके प्रयोग से पार्श्वशूल, हृत्शूल, पृष्ठशूल, स्कंधशूल, तन्द्रा (ऐसी

अवस्था जिसमें नींद तो नहीं आती, किन्तु आलस्य बनी रहती है।), अपतानक वात, शोथ, कफज प्रमेह तथा गले के रोगों में अच्छा फल मिलता है।

वात-कफोत्पन्न शूल में क्षुधाग्निवर्धन हेतु लहसुन के साथ मदिरा का पान मद्यपायी व्यक्ति के लिए हितकारी होता है।

हींग, त्रिकटु, कूठ, जवाखार और सेंधा नमक—इनके चूर्ण को बिजौरा नीबू के रस के साथ पान करें।

इसके द्वारा प्लीहा तथा शूल का निवारण होता है। वचा के चूर्ण के साथ त्रिफलाचूर्ण मिलाकर सेवन करने से सभी प्रकार के शूल शान्त होते हैं।

वात-संबंधी शूल के निवारणार्थ गोमूत्र में शोधित मण्डूर के साथ श्वेत बिदारीकंद या गुड़ के साथ हरड़ खायें। निरूहकर्म (बस्तिकर्म विशेष), विरेचन, दुग्ध प्रयोग तथा मधुर पदार्थों के उपयोग करने चाहिए।

पित्तज शूलनाश हेतु तिक्त—कषाय तथा कफज में कटु द्रव्यों के प्रयोग लाभकारी सिद्ध होते हैं।

दाधिक घृत का लाभ

छोटी पीपर, सोंठ, बेल का गूदा, अजवायन, चव्य, चित्रक, हींग, अनार, इमली, वचा, जवाखार, सज्जीखार, अम्लबेंत, विषखपरा, काला नमक, कालीजीरी और बिजौरा नीबू—इन्हें समान भाग, इनसे दुगुना दही और उससे तिगुना घी डालकर एक साथ पका लें। पकने पर इसे दाधिमघृत कहा जाता है। यह घृत गुल्म, अर्श, प्लीहा, हृत्शूल, पार्श्वशूल, योनि-संबंधी रोग तथा समस्त दोषों का शान्तिकारक होता है।

कम्बलाच्छादित शूलरोगी के प्राणायामकाल में सरसों के तैल में भिगोई हुई सत्तू की धूप भी शूलनिवारक होती है। शूलरोग में लाक्षणिक उपद्रव इस प्रकार देखे जाते हैं।

जैसे—उदर, पसली आदि में भयंकर वेदना, पिपासा, मूर्च्छा, पेट का फूलना, गुरुता, अरुचि, खाँसी, श्वास और हिचकी आदि।

शूलग्रस्त रोगी को निम्न प्रकार की सावधानी रखनी चाहिए—जैसे—व्यायाम, स्त्रीसंसर्ग, मद्यपान, नमकीन, चटपटे तथा कटु पदार्थ सेवन, मल-मूत्र के वेग का धारण, शोक, क्रोध और द्विदलीय अन्नों का सेवन आदि।

शूली रोगी को द्विदलीय अन्न, कुष्ठी को मांस-भक्षण, क्षयी को मैथुन, अतिसार वाले रोगी को दस्तावर अन्न का परित्याग कर देना आवश्यक है।

इसी प्रकार की सावधानी तरुणज्वर के रोगी के लिए भी आवश्यक होती है।

परिणामशूल का उपचार

लंघन, वमन, विरेचन, अनुवासनबस्ति तथा निरूहबस्ति—ये सभी कर्म परिणामशूल में उपयोगी कहे गये हैं।

अथवा परवल, अनार, मुनक्का, आँवला, कुम्हड़ा, जमीकंद (सूरन), खजूर, भुईआँवला (जमीन पर फैलने वाली आँवले की लताविशेष) और नारंग। इन सब वस्तुओं के प्रयोग से परिणामशूल नष्ट होते हैं।

वायविडंग (भाभीरंग), तंडुल (कगहिया), त्रिकटु, निशोथ, दन्ती और चित्रक। इन सबको एकीकृत कर बारीक चूर्ण बनावें।

तदनन्तर गुड़ डालकर मोदक बनाकर प्रात:काल सेवन करे। सेवनोपरान्त अग्निवर्धक उष्ण जल पान करें। इससे त्रिदोषजपरिणामशूल दूर होता है।

सोंठ, गुड़ और काले तिल के कल्क को दूध में पकाकर खाने से भीषण परिणामशूल इक्कीस दिनों में ही निर्मूल हो जाता है।

अथवा अण्डी की जड़, चीता, जलसीपी (घोंघा, सुतुही), पुनर्नवा (गदहपूरना) और गोखरू—इनके बराबर भागों को अग्नि में जलाकर शूल निवारण हेतु गरम जल के साथ पीना उचित है।

शम्बूक (घोंघा) का भस्म गरम जल के साथ पीने पर परिणामशूल उसी प्रकार दमित हो जाता है जिस प्रकार विष्णु के द्वारा दानवों का दलन होता है। अथवा जलोत्पन्न सीपी, त्रिकटु और पंचलवण। इनके सम भाग चूर्ण को धाराकदम्ब के रस में मिलाकर वटी बनावें।

इसे प्रात: या भोजनावसर में अग्नि के बलाबल के अनुसार खाने वाला रोगी एकबारगी ही परिणामशूल से विमुक्त हो जाया करता है।

दीर्घकालिक परिणामशूल में रात्रि के समय केवल सत्तुओं का मटरयूष के साथ एक सप्ताह प्रयोग करने से परिणामशूल का नियंत्रण हो जाता है।

खिरेंटी या उसकी जड़ के साथ मंडूर को मधु-घृत के साथ सेवन करने से भीषण परिणामशूल भी तत्क्षण ही शमित हो जाता है।

अथवा छोटी पीपर, हरड़ और मंडूर के चूर्ण को मधु और शक्कर मिलाकर चाटना उपयोगी होता है। इससे कठिन परिणामशूल भी उसी क्षण शान्त हो जाता है।

त्रिदोषोत्पन्न परिणामशूल पर नियंत्रण पाने के लिए हरड़, मण्डूर और सोंठ का चूर्ण बना मधु और घृत के साथ पान करना आवश्यक होता है।

सामुद्री नमक, सेंधा नमक, सज्जीखार, जवाखार, एरण्डमूल, रेहगमो नमक, बेंत की जड़, दन्ती, लौहकिट्ट, निशोथ, जमीकंद। इन्हें बराबर भाग में लेकर

इसमें दही, दूध और गोमूत्र चौगुना भाग मिला धीमी आग पर पकावें। पक जाने पर इसे अग्निबलानुसार गरम जल के साथ खावें। किन्तु दीर्घकालिक रोग में मांसादिघृत के साथ पकाकर प्रयोग में लाएँ।

उक्त प्रकार के योग से नाभिशूल, यकृतशूल, गुल्म, प्लीहा, विद्रधि, अष्ठीला (नाभिस्थल के निम्न भाग में वायुप्रकोप से होने वाला पाषाणखण्ड के समान कड़ापन) तथा वातज-कफजयुक्त औपद्रविक लक्षण नष्ट होते हैं। समस्त प्रकार के शूलों में इससे श्रेष्ठ कोई अन्य औषधि नहीं होती है।

बिजौरा नीबू की जड़, रेंड़ की जड़, रास्ना, गोखरू, खिरेंटी—इन्हें ५-५ पल तथा घी १ प्रस्थ लेकर ३२ सेर जल में पाचित करें। चौथाई भाग शेष रहने पर २-२ तोला वक्ष्यमाण द्रव्यों का कल्क मिलाकर पुनः पका लें।

वक्ष्यमाण द्रव्य इस प्रकार से हैं—तुम्बुरु के फल, हर्रें, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमरिच), हींग, काला नमक, विड् नमक, वचा, जवाखार, सज्जीखार और अम्लबेंत। इनमें दो प्रस्थ दही का पानी मिलाकर मन्द आँच पर पकावें।

पाक हो जाने पर इस घृत का उपयोग पित्तशूल, त्रैदोषिकशूल, वातशूल, परिणामशूल, गुल्म, प्लीहा, हृत्शूल, पार्श्वशूल, आमदोषोत्पन्न शूल तथा अम्लपित्त में लाभकारी होता है। यह घृत बलवर्धक तथा हृदय के लिए भी लाभप्रद सिद्ध होता है।

कोलादि का लाभ

चव्य, गठिवन, अदरख, छोटी पीपर, सज्जीखार, जवाखार। इनके साथ मंडूर का चूर्ण बना अठगुने गोमूत्र में पकाकर गाढ़ा बना लें। पकने के पश्चात् इसे वात-कफ, परिणामशूल तथा अन्यान्य प्रकार के शूलों की शान्ति के लिए भोजन के प्रारम्भ, मध्य या अंत में खायें। भोजनस्वरूप दुग्धमिश्रित अन्न लेना उपयुक्त होता है।

पिप्पलीमण्डूर का लाभ

छोटी पीपर, पिपरामूल (बड़ी पीपर), चव्य, चित्रक, सोंठ, भृङ्गराज (भँगरैया), जवाखार, परवल, रेंड़ की जड़, लाल सहिजन, निशोथ की जड़, त्रिफला तथा लांगली (कलिहारी)। इन सबको १-१ पल की मात्रा में लेकर चूर्णित कर लें।

तदनंतर १ प्रस्थ मण्डूर को चूर्ण के साथ मिलाकर अठगुने भाग गोमूत्र में पकावें। पकने पर इन्हें पिण्डवत् बनाकर काम में लावें। इस योग से मलावरोध, अफरा, परिणामशूल आदि नष्ट होकर क्षुधाग्नि की वृद्धि होती है।

भीमवटकमण्डूर का लाभ

बेर, गठिवन, सोंठ, जूही और जवाखार—इन्हें १-१ पल भाग में चूर्ण बनाकर १ प्रस्थ मण्डूर के साथ अठगुने गोमूत्र में पकाकर पिंडाकार बना डालें। उसमें

से १-१ तोले के परिमाण में वटी बनाकर भोजन के पूर्व, मध्य और अन्त में १-१ गोली रसघृत से युक्त यूष, दूध और मांसरस के साथ सेवन करे तो उसके परिणामशूल, गुल्म, प्लीहा तथा मन्दाग्नि रोगों का उन्मूलन होता है।

क्षीरमण्डूर का लाभ

मंडूर ८ पल, गोमूत्र २ प्रस्थ तथा दूध १ प्रस्थ। इनको पकाकर प्रयोग करने से परिणामशूल का निवारण होता है।

शर्करामण्डूर का लाभ

शतावरी का रस १ प्रस्थ, गोमूत्र १ प्रस्थ, बकरी और गाय का दूध १ प्रस्थ, आवले का रस १ प्रस्थ, मण्डूर ८ पल तथा ८ कुडव (१६ पल) शक्कर। इन सबको एकीकृत करके धीमी आँच पर पकावें।

पकने पर पूरी तरह से गाढ़ा हो जाने पर ठण्ढा करके उसमें लौंग, त्रिफला, त्रिकटु, अजवायन, गजपिप्पली, श्वेत एवं स्याहजीरक और मोथा—इन्हें समान भाग में चूर्णीकृत करके उसमें मिला दें। तत्पश्चात् बलाबल के अनुसार इसे भोजन के पूर्व सेवन करें। इसके द्वारा भयंकर परिणामशूल, हलीमक (तुतलाना), रक्तपित्त, अंगों की जलन, पाण्डुरोग तथा अम्लपित्त आदि का उन्मूलन होता है।

मंडूर को ८ पल लेकर अठगुने गोमूत्र में डालकर पकावें, पककर उसके गाढ़ा हो जाने पर उसमें भंग (भाँग), सोंठ, खार, छोटी पीपर, पिप्पलीमूल—इन्हें १-१ पल चूर्णित कर मिला दें। इसकी वटी बनाकर सेवन करने से परिणामशूल का निवारण होता है।

शतावरीघृतमण्डूर का लाभ

सर्वप्रथम ८ पल मंडूर को शोधित कर चूर्णित कर लें। पुनः शतावरी रस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८ पल तथा गोघृत ४ पल डालकर मंडूर के साथ पकाकर उसे गाढ़ा बना लें।

इसे पक जाने के पश्चात् भोजन के पूर्व या मध्य में खायें। यह योग वातज, पित्तज तथा परिणामजशूल का उन्मूलक होता है।

तारामण्डूरगुड का लाभ

वायविडंग, चीता, चव्य, त्रिफला ३, त्रिकटु ३—इन नवों के नौ-भाग तथा मंडूर के नवभाग,' इनसे तिगुना गोमूत्र और गोमूत्र से आधा गुड़ मिलाकर धीमी आग पर पकावें और उसके गाढ़ा हो जाने पर पिंडाकार बना लें।

अब इसे किसी चिकने पात्र में भरकर १ तोले की मात्रा में सेवन करें। इसका प्रयोग भोजन के पूर्व, मध्य और अन्त में किये जाने पर भीषण परिणामशूल, कामला, पाण्डु, शोथ, अग्निमांद्य, अर्श, ग्रहणी, कृमि, गुल्म, औदरिक रोग,

अम्लपित्त तथा मोटापा आदि नष्ट होते हैं। तारा द्वारा कथित इस मंडूरगुड़ के प्रयोगकाल में शुष्क शाक, खट्टे और कड़ुए पदार्थ का सेवन करना वर्जित है।

त्रिफलामण्डूर का लाभ

त्रिफला के स्वरस में पकाया गया मंडूर, गुड़ के साथ सेवन करने पर परिणामशूल तथा त्रैदोषिक शूल का निवारण होता है।

धात्रीलौह का लाभ

आँवले का चूर्ण ८ पल, मंडूर ४ पल, मुलेठी चूर्ण २ पल। इन तीनों को २ पल घी में भून कर गुरुच के रस में एक सप्ताह तक भिंगो रखे। तदनंतर उसे कड़ी धूप में ठीक प्रकार से सुखाकर खरल कर लें और उसे नयी हाँडी में रख दें। उस घृत में मधु का मिश्रण करके वातादि दोषानुसार भोजन के पूर्व, मध्य या अंत में सेवन करें।

भोजन के पूर्व खाने से वात-पित्तोत्पन्न दोष, मध्यकाल में खाने पर विष्टंभी अन्न को पचाता तथा उदरदाह को रोकता है। भोजनान्त में अन्न ग्रहण के फलस्वरूप उत्पादक दोषों को नियंत्रित करता है तथा भयंकर परिणामशूल को शांत कर देता है। यह धात्रीलौह नेत्रों के लिए हितकारक, वलीपलित दोषों का निवारक, कफ-पित्तोत्पन्न दोषों का नियंत्रक, कामला, पाण्डुनाशक तथा रक्तशोधक होता है।

खण्डामलक का लाभ

पचास पल कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) को भली प्रकार से पकाकर आधा प्रस्थ घी में भून डालें, तत्पश्चात् इस घृतपाचित कुम्हड़े में ५० पल आँवलारस मिलाकर अच्छी तरह से धीमी आग पर करछुल से चलाते हुए पकावें।

पकने पर छोटी पीपर २ पल, स्याहजीरा २ पल, सोंठ २ पल, कालीमरिच २ पल, तालीसपत्र १ पल, धनिया १पल, दालचीनी २ तोला इलायची २ तोला, तेजपात २ तोला, नागकेशर २ तोला तथा मोथा २ तोला— इन सबका चूर्ण बनाकर उसमें मिला दें।

पुनः इसमें आधा प्रस्थ मधु का भी मिश्रण कर दें। इस खण्डामलक रसायन के सेवन से परिणामशूल, त्रैदोषिकशूल, वमन, अम्लपित्त, बेहोशी, साँस, खाँसी, अरोचकता, हृत्शूल, रक्तपित्त तथा वातादि दोषों से अलग-अलग उत्पन्न होने वाले समस्त प्रकार के शूलों का विनाश होता है।

परिणामशूल के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले जरत्पित्त और अन्नद्रव शूल की चिकित्सा हेतु बरगद की जटा का चूर्ण २ भाग और मंडूर का चूर्ण १ भाग लेकर करैले के पत्तों के रस में घोंट लें। इसकी १ कर्ष परिमाण में गोली बनाकर खावें और

बाद में मंड का पान करें तो कठिन और दुःसाध्य जरत्पित्त का भी उन्मूलन हो जाता है।

मंडूर या मुलेठी के चूर्ण में त्रिफला का चूर्ण मिलाकर मधु के साथ चाटने से जरत्पित्त का शमन होता है। जरत्पित्त में कथित प्रयोग अन्नद्रवशूल में भी करने चाहिए, विशेषतया ऐसी अवस्था में जब आमाशय और पक्वाशय शुद्ध हो रहे हों।

हर्रै १ पल, गुड़ १ पल, आँवला १ पल तथा मंडूर ३ पल। इनके चूर्ण में मधु और घृत मिलाकर प्रतिदिन भोजन के पूर्व, मध्य या अन्त में खाने से लाभ होता है।

अन्नद्रवशूल के रूप-रंग को संज्ञान में लाना अतिदुष्कर कार्य है, फिर भी इसके शमनार्थ उत्तम उपायों का आश्रय लेना उचित है। अन्नद्रवशूल और जरत्पित्त में मंदाग्नि की अधिकता रहती है।

अत: ऐसी दशा में अन्नपान की मात्रा अत्यल्प कर देनी चाहिए। अन्नद्रव की कथित चिकित्सा ही जरत्पित्त में भी प्रयोक्तव्य होती है। यहाँ संक्षेपत: अन्नद्रव की चिकित्सा वर्णित की गयी है।

उदावर्त एवं आनाह का उपचार

उदावर्त रोग (मल-मूत्र के वेग को रोककर वायु का ऊपर की ओर चढ़ना ही उदावर्त है।) में सुयोग्य चिकित्सकों ने गेहूँ, मूँग, मुलेठी तथा अन्य प्रकार के वातशामक प्रयोग करने का परामर्श दिया है।

हरड़, चुरनहार और निशोत—इनके चूर्ण में जवाखार मिला घृत के साथ सेवन करने से पथ्याहारी रोगी के उदावर्त का शीघ्र ही दमन हो जाता है।

श्यामा, दन्ती, सातला, चोरहुली, पीतदुग्धा, कटेरी, लोध, कबीला, अतीस, गूगुल, अमलतास, मूषाकर्णी और करंज।

इन सब द्रव्यों के क्वाथ, कल्क, चूर्ण, घृत, तैल या मांसरस या अन्य उपयोगी गणों के साथ प्रयुक्त करने पर पेट का फूलना, उदावर्त, गुल्म, औदरिक रोग तथा विषपानोत्पन्न पीड़ा शीघ्र ही दूर होती है।

निशोत २ भाग, छोटी पीपर ४ भाग, हरड़ ५ भाग तथा गुड़ ११ भाग। इनके कल्क से वटी बनाकर खाना उदावर्त रोग का उन्मूलन करता है अथवा हर्रै, जवाखार, गोरखमुंडी और निशोत।

इनके चूर्ण को घी के साथ सेवन करने से उदावर्त रोग नष्ट होता है।

हींग, कूठ (कूड़ा), वचा, सज्जीखार, विड् नमक। इन्हें क्रमशः द्विगुणित परिमाण में लेकर चूर्ण बना मदिरा के साथ प्रयोग करना उदावर्त निवारक कहा गया है।

खाँड़ १ पल, निशोत १ पल और पिप्पलीचूर्ण २ तोला। इसे भोजन से पूर्व २ तोले की मात्रा में खायें, किन्तु इसे मल के गाढ़ापन में तथा पित्त-कफ में प्रयोग करना उचित है।

यह नारायण नामक चूर्ण अत्यन्त सुस्वादु तथा राजाओं के उपभोग की वस्तु है।

हींग, माक्षिक तथा सेंधानमक के योग से निर्मित बत्ती को घी में भिंगोकर मलद्वार में स्थापित कर देने से तत्क्षण ही उदावर्त रोग विनष्ट होता है।

अथवा मैनफल, छोटी पीपर, कूठ, वचा, श्वेत सरसों, गुड़ और जवाखार के मिश्रण से निर्मित फलवर्तिका उदावर्त में लाभकारी बतलायी गयी है।

उदावर्त रोगी के स्वेदित मलद्वार में अगरु का धूप, सेंधानमक और तैलमिलित अम्लबेंत की जड़ या मेउड़ी के पत्तों को मसल कर रख दें।

मूत्राघात (मूत्र की रुकावट) में मदिरा के साथ काला नमक मिलाकर, मदिरा के साथ इलायची अथवा दूध और जल का प्रयोग दोषानुसार करने से लाभ मिलता है।

अथवा क्रौंच के स्वरस, कूड़ा के कषाय, जल के साथ या सेंधा नमक के साथ बड़ी ककड़ी के बीज का मूत्राघात में प्रयोग करना फलदायक होता है।

पंचमूल के साथ पकाये गये दूध या दाख का रस भी मूत्रकृच्छ्र और पथरी रोग में कथित नियमानुसार करना लाभप्रद होता है।

स्नेहन तथा स्वेदन कर्म के द्वारा उदावर्त के विजृम्भ को तथा रक्तोत्पन्न उदावर्त में स्निग्धित और स्वेदित रोगी के रक्त को निकाल देना अच्छा है।

क्षयोत्पन्न उदावर्त में क्षयोपयोगी औषधों से नासिका और मुख के द्वारा छींक को बाहर निकाल दें। डकार के कारण होने वाली उदावर्त में स्नेह का धूपन करें।

उदावर्तीय वमन में दोष बलानुसार नस्य तथा स्नेहन आदि कर्म करें ताकि विविध बस्तियों का भी शोधन हो सके। अथवा दूध में चौगुना जल डालकर पकावें। पकाने पर जब जलीय अंश जलकर केवल दूध रह जाय तो उस दुग्धपान से शुक्रोत्पन्न उदावर्त में लाभ होता है।

तदनन्तर सुंदरी रमणियाँ रोगी को मुग्ध करें। शुक्रोत्पन्न उदावर्त में अभ्यंग, जल से स्नान, सुस्वादु मदिरा, शालिधान्य, दूध, निरूहबस्ति तथा मैथुन-क्रिया भी उपयोगी होती है।

क्षुधा के विघात में स्निग्ध, उष्ण और हलका भोजन, प्यास के विघात में मदिरा या शीतल यवागू, परिश्रम से क्लान्त तथा श्वास से पीड़ित उदावर्त में हलके, अभिष्यंदी, दाहरहित तथा आनन्दोत्पादक पदार्थों का ग्रहण करना लाभप्रद है।

उदावर्तीय निद्रानाश में दुग्धपान के पश्चात् रोचक कथाओं को सुनकर शनैः

शनैः शयन करें। इस उदावर्त रोग में प्रयुक्त की जाने वाली प्रक्रिया के द्वारा आनाह (पेट का फूलना) रोग भी निर्मूल हो जाता है।

अथवा हींग, वचा, सज्जीखार और वायविडंग—इन्हें क्रमानुसार दुगुनी मात्रा में लेकर चूर्णित करें। इस चूर्ण का उपयोग गुनगुना जल के साथ किये जाने पर विसूचिका, वेदना, हृद्रोग, गुल्म तथा ऊर्ध्ववात आदि रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

वचा, हर्रे, चित्रक, जवाखार, छोटी पीपर, अतीस और कूठ। समभाग में बनाये गये इस चूर्ण को गुनगुना जल से खाकर पथ्याहार लेने वाला व्यक्ति अफरा और विमूढ़वात से मुक्त हो जाता है।

निशोत, हरड़ और श्यामा—इन्हें थूहर (सेंहुड़) के दूध में भिंगो दें। तत्पश्चात् इसकी वटी बनाकर गोमूत्र के साथ सेवन करने से आनाह दूर होता है।

त्रिकटु, सेंधा नमक, सरसों, गृहधूम की कालिख, कूड़ा और मैनफल। इनके द्वारा निर्मित आठ अंगुल की बत्ती को गुड़ में डालकर करछुल से चलाते हुए पकाकर घृत से चुपड़ मलद्वार में धीरे-धीरे प्रविष्ट कराने से उदावर्त, गुल्म तथा औदरिक रोगों का उन्मूलन हो जाता है।

शुष्कमूलाद्यं घृत का लाभ

सूखी और आर्द्र मूली, पुनर्नवा और पंचमूल—इन्हें अथवा अमलतास के फल को जल में पकाकर पुनः घी में पका लें। इस घृत के प्रयोग से आनाह और उदावर्त रोग समूल नष्ट हो जाता है। यह भी परीक्षित प्रयोग है।

गुल्मरोग का उपचार

समस्त प्रकार के गुल्म (प्रतिकूल आहार-विहार के फलस्वरूप वायु के प्रदूषित होने के कारण पेट में उत्पन्न होने वाली गाँठ। इसे वायुगोला भी कहा जाता है।) रोगियों के लिए दीपन, स्निग्ध, अनुलोमन, लंघन एवं बृंहण (पुष्टिकर) पदार्थों का सेवन लाभकारी होता है।

इसमें वातशमन के लिए आवश्यक उपायों का विधिवत् अवलंबन करना चाहिए। वायु पर नियंत्रण पा लेने के अनंतर अन्य दोषों को अल्प प्रयोग द्वारा भी नियंत्रित किया जा सकता है।

गुल्मरोगी के शारीरिक स्रोतों का स्निग्धीकरण से कोमल होने, प्रचण्ड वात को दबाने तथा विबंध को तोड़ने के पश्चात् स्वेदनकर्म लाभप्रद सिद्ध होता है।

सर्वप्रथम वातोत्पन्न गुल्म में रोगी को स्निग्धित, स्वेदित तथा रेचित कर लें। तदनंतर देश-काल और अवस्थानुसार स्नेहन, सेंक, निरूह और अनुवासन बस्ति के द्वारा उपचार करें।

इसके अनंतर मंदोष्ण उपनाहन कर्म करने तथा सान्त्वना देने चाहिए। तत्पश्चात् रक्तमोक्षण तथा भुजा के मध्यवर्ती भाग में शिराभेदन, स्वेदन तथा वायु का अनुलोमन कर्म करने चाहिए। इस प्रक्रिया के अपनाने से सभी प्रकार के गुल्म निर्मूल होते हैं।

बिजौरा नीबू का रस, हींग, अनार, विडनमक तथा सेंधानमक। इन्हें मद्यमंड के साथ अथवा अण्डी के तैल को मदिरामंड या दूध के साथ पान करना वातज गुल्म का उन्मूलक होता है।

सज्जीखार और केतकीखार को कूठ के साथ अंडीतैल में पान करने से वातज गुल्म का नाश होता है।

वातज गुल्म के चिकित्साकाल में कफप्रकोप होने पर उष्ण और उष्ण पदार्थ मिश्रित चूर्णादि के प्रयोग करने चाहिए। पित्त की प्रकोपावस्था में विरेचन का आश्रय लें। गुल्म रोगनाशक पदार्थों के सेवनोपरान्त गुल्म के नष्ट न होने पर रुधिराहार आवश्यक हो जाता है।

काकोल्यादिगण, बकायन (महानिंब) तथा वासादि द्रव्यों से पकाये गये तैलपान से स्निग्धित पैत्तिक गुल्मी में विरेचन के बाद बस्तिकर्म का प्रयोग करना उपयोगी होता है।

जिस समय गुल्म रोगी में जलन, शूल, वेदना, विक्षोभ, निद्रानाश, अरोचकता तथा ज्वरादि लक्षणों की अनुभूति हो उसी समय उसे उपनाहनकर्म के द्वारा परिपक्व बनाना चाहिए।

पक जाने पर व्रणशोथ में कथित क्रिया के अनुरूप भेदन, लेपन आदि कर्म करें। भेदन किये विना ही दोष के ऊर्ध्वगामी या अधोगामी होने पर,। उसका बारह दिनों तक शोधनादि कर्म न करके केवल प्रतीक्षारत रहें। इस अन्तराल में उत्पन्न होने वाले अन्य दोषों का शमन करें।

पैत्तिक गुल्म में लंघन, लेखन और स्वेदनकर्म को पूर्ण करें तथा अग्निवर्धन होने और रोगी के भूखे रहने पर त्रिकटु और जवाखार का कल्क मिला पकाये हुए घृत का पान करें।

अथवा वचा २ भाग, हरड़ ३ भाग, विड् नमक ६ भाग, सोंठ ४ भाग, हींग १ भाग, कूड़ा ८ भाग, चीता ५ भाग तथा अजवायन ५ भाग। इनका चूर्ण मदिरा के साथ प्रयोग करने से गुल्म, अफरा, औदरिक रोग, शूल, बवासीर, साँस, खाँसी और ग्रहणी रोग का विनष्टीकरण होता है।

वातगुल्मोक्त प्रयोगों को कफजन्य गुल्म में भी अपनायें। अथवा पंचमूल में

पकाये गये जल, पुरानी मदिरा या महुए के फूलों से निर्मित मदिरा का सेवन कुछ समय तक करते रहें।

अथवा मट्ठे में अजवायन चूर्ण और विड्नमक मिलाकर पान करें। इस मट्ठे के प्रयोग से क्षुधाग्नि बढ़ती है तथा मल-मूत्र और वायु का अनुलोमन होता है। मिश्रित दोषों में उन-उन दोषों की मिश्रित क्रिया की जानी चाहिए।

त्रिलवणादि चूर्ण का लाभ

तीन प्रकार के नमक (सेंधा, विड् और कालानमक), हाऊबेर, अजमोदा, असगंध, वचा, हींग, कूठ, छोटी इलायची, घीकुआर (ग्वारपाठा), जीरा, स्याहजीरा, धनिया, सज्जीखार, जवाखार, सौंफ, जटामांसी, पुष्करमूल, अनार, इमली, वायविडंग, भारंगी, गुरुच, अम्लबेंत, सोआ नामक शाक, कालीमरिच, गजपीपर, हर्रें, पंचकोल के द्रव्य, दंती, इन्द्रायण, अजवायन, देवदारु—इन सबको चूर्णित कर बिजौरा नीबू के रस में कई बार भावित करें।

इस चूर्ण का सेवन प्रातःकाल या भोजनकाल में एक महीने तक गरम जल, पुरानी मदिरा, मट्ठा, पंचकोलनिर्मित जल, घृत या गुनगुना कुलथी का यूष, क्षारनिर्मित जल, अनार के रस के साथ करते रहने तथा पथ्याहार लेते रहने के परिणामस्वरूप चूर्णसेवी को हृदय, मलद्वार, कमर, पसली, गुदशूल, गुल्म, मलावरोध, बवासीर, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, जलोदर, अफरा, क्षय, अरोचकता, श्वास तथा खाँसी आदि समस्त रोगों से मुक्ति मिलती है।

उसकी जठराग्नि इतनी प्रबल हो जाती है कि पाषाणवत् कठोरतम पदार्थों के खाने पर भी उसे कभी अपचन का सामना नहीं करना पड़ता है।

इस चूर्ण के स्थान पर पूर्वोक्त औषधों से किये गये घृतपाक का भी सेवन किया जा सकता है।

अजवायन, हींग, सेंधा नमक, खार (जवाखार, सज्जीखार), कालानमक और हरड़। इनका चूर्ण मद्यमंड के साथ पान करने से गुल्मशूल का नाश होता है।

हिङ्ग्वादि चूर्ण का लाभ

हींग, त्रिकटु, वचा, अजमोदा, धनिया, असगंध, अनार, इमली, पाठा, चित्रक, चव्य, सेंधानमक, विड्नमक, कालानमक, जवाखार, चोहारबोडा, छोटी पीपर की जड़, अम्लबेंत, कचूर, कूठ, हाऊबेर, स्याहजीरा और हर्रें।

इन सबको एकीकृत कर चूर्ण बनाकर उसे कई बार बिजौरा नीबू के रस में भिगो दें। तदनन्तर इसकी २ तोले की गोली बनाकर वातपीड़ित रोगी प्रातःकाल सेवन करने के पश्चात् पूर्वकथित अनुपान ले।

इसके सेवन से **गुल्म**, **श्वास**, **खाँसी**, **अरुचि**, **हृद्रोग**, **अफरा**, **पार्श्वशूल**, **जाँघशूल**, **बस्तिशूल**, **आनाह**, **मूत्रकृच्छ्र**, **अर्श**, **पसली का प्लीहा**, **जलोदर** तथा **पाण्डुरोग** समूल नष्ट होते हैं। इसके साथ ही यह तूणी-प्रतूणी नामक वातरोगों में भी लाभप्रद होता है।

हींग, पोहकरमूल, तुम्बुरू, हर्रे, निशोत, सेंधानमक, विड्नमक, जवाखार और सोंठ—इन्हें समान परिमाण में लेकर चूर्ण बना घी में भूनकर यव के काढ़े के साथ पान करें। इससे गुल्म और उसके तत्सम्बन्धी सभी उत्पात शमित हो जाते हैं।

वचा, हरड़, हींग, सेधानमक, अम्लबेंत, जवाखार तथा अजवायन। इनके चूर्ण को गरम जल के साथ खाने से एक सप्ताह में ही गुल्म-संबंधी सभी उपद्रव दूर हो जाते तथा गुल्मभेदन के फलस्वरूप जठराग्नि भी तीव्र होती है।

छोटी पीपर, बड़ी पीपर, चीता, स्याहजीरा और सेंधानमक। इनके चूर्ण को मदिरा के साथ पान करने पर शीघ्र ही भीषण गुल्म रोग समाप्त हो जाता है।

अथवा नादेई, कूठ, मदार की जड़, सहिजन, कंटकारी (भटकटैया), कटेरी, पलाश, नीम, जटामांसी, अपामार्ग (चिचिड़ा), आँवला, चीता, वासा (अडूसा)), कठपाढर, और पाढर के पुष्प।

इनमें नमक और हींग मिलाकर आग पर पका लें। इनके प्रयोग से गुल्म, उदर तथा प्लीहा (तिल्ली) रोग नष्ट होते हैं

हींग, वचा, विड्नमक,सोंठ, स्याहजीरा, हर्रे, पुष्करमूल और कूठ। इनकी मात्रा क्रमशः बढ़ाकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण के सेवन से गुल्म, उदर, अपच और विसूचिका रोग में लाभ मिलता है।

अथवा, त्रिफला, कचनार, वनककोड़ा, सातला, नलिनी, वचा, त्रायमाण, हाऊबेर, कटुकी, निशोत, सेंधानमक और छोटी पीपर। इनके चूर्ण को गोमूत्र, गरम जल या मांसरस के साथ प्रयुक्त किये जाने पर गुल्म, उदर, प्लीहा, कोढ़, बवासीर तथा सूजन दूर होती है।

सौंफ, करंज की छाल, देवदारु, भारंगी और छोटी पीपर। इनके कल्क का पान तिलक्वाथ के साथ करने पर रक्तोत्पन्न गुल्म नहीं रह जाता। गुड़, त्रिकटु, हींग और भारंगी।

इनके चूर्ण का सेवन तिल क्वाथ के साथ किये जाने पर रक्तज गुल्म के साथ ही स्त्रियों की ऋतुस्राव-संबंधी समस्त गड़बड़ियाँ दूर होती हैं।

आँवले के रस को पलाश की खार में भिंगोकर पान करें। अथवा जवाखार और त्रिकटु का मदिरा के संग पान करने से वातगुल्म का निवारण होता है।

हबुषादि घृत का लाभ

हाऊबेर, त्रिकटु, इलायची, चव्य, चित्रक, सेंधा नमक, स्याहजीरा, छोटी पीपर और अजवायन। इन्हें १-१ पल लेकर कल्क बना डालें। तदनंतर बेर का क्वाथ २ सेर, सूखी मूली का क्वाथ २ सेर, दूध २ सेर, दही २ सेर तथा २ सेर अनार का काढ़ा लेकर किसी पात्र में भर लें और पूर्वोक्त कल्क के साथ २ सेर घी मिलाकर पकावें।

इस घृतपाक के सेवन से वातगुल्म, शूल, मलावरोध, योनिसंबधी रोग, अर्श, ग्रहणी, साँस, खाँसी, अरुचि, ज्वर, पार्श्वशूल, हत्शूल तथा बस्तिशूल निर्मूल हो जाते हैं।

दन्त्यभयाख्य का लाभ

हरड़ २५ नग, दन्ती २५ पल और चित्रक २५ पल। इन तीनों को १ द्रोण जल में पकावें। पककर आठवाँ भाग शेष रहने पर छान लें और उसमें २५ हरड़, तैल ४ पल, निशोत ४ पल तथा १-१ पल छोटी पीपर और सोंठ के चूर्ण तथा २५ पल गुड़ मिलाकर उसके रस में पाक करें।

जब वह लेह की तरह पककर गाढ़ा हो जाय तब उसमें १६ तोला शहद तथा १-१ पल इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर के चूर्ण का संमिश्रण कर दें।

तत्पश्चात् उस लेह को १ पल की मात्रा में चाटकर ऊपर से उन पकी हुई हरैं में से एक हरड़ खा लें। इस प्रयोग के द्वारा गुल्म रोगी के दोष (राँध) चिकने होकर निकलने लगते हैं।

ऐसी अवस्था में गुल्मी को रसेदार भात का पथ्य ग्रहण करना उचित है। इससे प्लीहा, (बरवट), सूजन, गुल्म, बवासीर, हृद्रोग, पांडुरोग, ग्रहणी, उत्क्लेश, विषमज्वर, कोढ़ तथा अरुचि आदि रोगों का निवारण होता है।

त्र्यूषणादि घृत का लाभ

त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, वायविडंग (भाभीरंग), चव्य और चित्रक। इनके कल्क को दूध में पकाकर इस घृत के सेवन से वातोत्पन्न गुल्म नष्ट हो जाता है।

द्राक्षादि घृत का लाभ

द्राक्षा (अंगूर), मुलेठी, खजूर, बिदारीकंद, शतावरी, फालसा और त्रिफला। इन सबको १-१ पल के परिमाण में लेकर ४ प्रस्थ जल में पकावें। चौथाई भाग बचने पर उस रस को छान लें। उस रस के बराबर आँवले का रस, दूध, घी और गन्ने का रस तथा चौथाई भाग हरड़ के कल्क को मिला उस रस में पुनः पकावें।

पकने के पश्चात् ठण्ढा होने पर उसमें चौथाई भाग मधु और शक्कर मिला दें। इस घृत के सेवन से सभी प्रकार के पित्तजन्य गुल्म और पित्तज रोगों का शमन होता है।

व्योषादि घृत का लाभ

व्योष (सोंठ, पीपर, कालीमरिच) खारा नमक, विड्नमक, हींग, अनार और दशमूल को मिलाकर घी में पकावें। इसके द्वारा कफजनित गुल्म नष्ट होता है।

क्षीरषट्पल घृत का लाभ

छोटी पीपर, पिप्पलीमूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार। इनके १-१ पल भाग का कल्क बना इसमें १-१ प्रस्थ घी और दूध मिलाकर एकत्रित पकावें।

इस घृतपाक से गुल्म, अरोचकता, ग्रहणी, पाण्डु, हृद्रोग, प्लीहा, खाँसी तथा ज्वरादिक रोग दूर होते हैं।

आँवला के ४ सेर रस में १-१ सेर घी और दूध मिला उक्त कथित क्षीरषट्पल घृत के परिमाणानुसार औषध द्रव्यों को साथ पका लें।

पक जाने पर इसमें शक्कर और सेंधानमक डालकर खाने से समस्त प्रकार के गुल्मों का उन्मूलन होता है।

वृश्चीरारिष्ट का निर्माण एवं लाभ

सफेद गदहपूरना, रेंड़ की जड़, लाल गदहपूरना, कटेरी, कंटकारी और चित्रक। इन्हें ८-८ पल लेकर १ द्रोण जल में पकावें। पककर चौथाई भाग रहने पर छान लें। तदनन्तर छोटी पीपर, चीता और मधुलेपित घड़े में इसे रख छोड़ें।

पुनः उसमें. १ प्रस्थ मधु और आधा भाग हरड़चूर्ण को मिलाकर दश दिनों तक पूर्ववत् घट में ही रहने दें।

तत्पश्चात् बासी मट्ठे के संग इस अरिष्ट का पान करें। इस योग के द्वारा आमदोष सहित दुरूह गुल्मरोग पर नियंत्रण होता है।

गुल्म रोगी के लिए शुष्क मांस या शूकरमांस, मूली, मछली, सूखे शाक, द्विदलीय अन्न, आलू, शाक तथा मीठे फलों का सेवन करना वर्जित होता है।

हृदयरोग का उपचार

वातादिदोष प्रकुपित होकर शरीरस्थ रस धातु को प्रदूषित कर हृत्प्रदेश में स्थिर रहा करते हैं।

इसे ही हृद्रोग कहा जाता है। वातोत्पन्न हृदयरोग में रोगी को दशमूल के क्वाथ में तैल और नमक डालकर वमन कराना उचित होता है।

छोटी पीपर, इलायची, वचा, हींग, जवाखार, सेंधानमक, कालानमक,

सोंठ, अजमोदा—इनके चूर्ण त्रिफला क्वाथ के साथ कांजी, कुलथी यूष, दही, मदिरा, आसव या किसी अन्य तैलीय पदार्थ के साथ विशुद्ध शरीर के हृद्रोगी में प्रयुक्त किये जाने चाहिए।

अथवा इसका रोगी सोंठ का क्वाथ बना उस गरम काढ़े का पान करे। यह क्वाथ, जठराग्निवर्धक, श्वास, खाँसी, वात, शूल तथा हृदयरोग विनाशक होता है।

पित्तोत्पन्न हृद्रोग में चंदनादि का शीतल प्रलेप, सिंचन तथा विरेचन कर्म करने चाहिए। विरेचन द्वारा शरीरशोधन हो जाने पर अंगूर, शक्कर, मधु तथा फालसे के साथ पित्तशामक अन्नपान किये जाने चाहिए।

हृद्रोगी में रोगशमनार्थ मुलेठी और कटुकी को पीसकर शक्करमिश्रित जल के साथ पान करना उपयोगी सिद्ध होता है।

अथवा अर्जुन वृक्ष की छाल, शक्कर, लघु पंचमूल, खिरेंटी और मुलेठी—इनमें से किसी एक पदार्थ के साथ पकाये हुए दूध का पीना लाभप्रद है।

अर्जुनवृक्ष की छाल का चूर्ण, घी, दूध या गुड़ के शर्बत के साथ पान करने पर हृद्रोग, जीर्णज्वर तथा रक्तपित्त रोग दूर होते हैं।

अनार, काला नमक, सोंठ, हींग और अम्लबेंत—इनका एकीकृत योग अपतानकवात, हृदयरोग, श्वास, खाँसी तथा ज्वरहारक कहा गया है।

कफोत्पन्न हृदयरोग में वचा तथा नीम की छाल का काढ़ा पिलाकर वमन कराना तथा वातोत्पन्न में पिप्पल्यादि चूर्णों का सेवन हितकर है।

त्रिदोषज हृदय रोग में पहले लंघन कराकर दोषानुसार अन्नपानादि दें। वातज हृद्रोग में हीनता, प्रखरता तथा संगत्व के विचार से त्रिदोषों में उचित उपचार करें।

कूठ के चूर्ण में मधु मिलाकर चाटने से श्वास, खाँसी, क्षय तथा हिक्का आदि रोग नष्ट होते हैं।

तैल से अठगुने गुड़ में पकाये गये गेहूँ के चूर्ण को खाकर दुग्धपान करने वाला जीवन-भर स्वस्थ रहता है।

गेहूँ और अर्जुन वृक्ष की छाल को बकरी के दूध और घृत में मिलाकर पकावें। इसमें मधु और शक्कर मिलाकर सेवन करने से प्रचण्ड हृदयरोग भी शमित होता है।

नागबला (गंगरेन) की जड़ अथवा अर्जुन वृक्ष की छाल का चूर्ण दूध के साथ पान करने पर यह हृदयरोग, श्वास और खाँसी को मिटा देता है।

यह मत्स्यनाथनिर्मित अत्यन्त शक्तिदायक रसायन है। इसके एक वर्ष तक निरन्तर प्रयोग करने के फलस्वरूप मानव शतायु बन जाता है।

हींग, वचा, विड् नमक, सोंठ, छोटी पीपर, कूठ, हर्रें, चीता, जवाखार, काला नमक, पुष्करमूल—इन सबके चूर्ण को जौ के काढ़ा के साथ पान करना शूल तथा हृद्रोगनाशक होता है।

दशमूल के कषाय को लवणक्षार के संग मिला देने पर श्वास, खाँसी, हृद्रोग तथा गुल्मपीड़ा का नाशक बन जाता है।

कृमिजनित हृदयरोगी को तीन दिनों तक मांस के साथ पकाये हुए भात को दही के साथ खिलाकर विरेचन कर्म कराना लाभकारी होता है।

उक्त रोगी को उपचार सुगंधित, नमकयुक्त, शक्करमिश्रित, वायविडंग की आत्यंतिक मात्रा वाले योगों तथा अत्यम्ल पदार्थों के आश्रयण में करने चाहिए।

अथवा कृमिज हृद्रोग में भाभीरंग और कूठ के चूर्ण को गोमूत्र के साथ पान करने से हृत्प्रदेश में स्थित कीड़े नीचे आकर मल के द्वारा बाहर निकल जाते हैं।

कृमिजन्य हृदय रोग में भाभीरंग के साथ यवान्न का प्रयोग कराये। अथवा कच्ची हलदी को पकाकर रात्रि के समय गरम जल के साथ पिलाने से लाभ मिलता है।

श्वदंष्ट्रादि घृत का लाभ

गोखरू, खस नामक तृण, मंजीठ, खिरेंटी, गम्भारी, पिठवन, कुश की जड़, इलायची, सरसों, शालवन—इनके १-१ पल परिमाण का क्वाथ तैयार करें। काढ़ा के पककर चौथाई भाग रहने पर उसे छान लें।

तदनन्तर उस काढ़े से चौथाई दूध, उसके समान ही घृत डालकर उसमें क्रौंच, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, जीवक, शतावरी, ऋद्धि, अंगूर, शक्कर, गोरखमुंडी और वासा (अडूसा)—इनका कल्क बना उस काढ़े को पुन: पकावें।

पकने के अनन्तर यह घृत **वात-पित्त**, **हृद्रोग**, **श्वास**, **शूल**, **मूत्रकृच्छ्र**, **प्रमेह**, **अर्श**, **वातजनित खाँसी** तथा **क्षयादि रोगों** का उन्मूलन करता है। इसके साथ ही बाण प्रक्षेपण, स्त्रीसंसर्ग तथा मद्यपान से निस्तेज व्यक्तियों को सबल बनाकर उन्हें प्रोत्साहित करता है।

बला (खिरेंटी), नागबला (गंगरेन) तथा अर्जुन की छाल के क्वाथ में मुलेठी का कल्क मिलाकर घृतपाक करें।

इस घृत के सेवन से हृद्रोग, पीड़ा, क्षतक्षय, रक्तपित्त, खाँसी तथा वातरक्त आदि रोगों का दमन होता है।

मूत्रकृच्छ्र का उपचार

अत्यन्त व्यायाम, मदिरापान या अतिमैथुन के फलस्वरूप प्रकुपित वातोत्पन्न दोष बस्तिप्रदेश में पहुँचकर मूत्रमार्ग का पीड़न करते हैं। ऐसी अवस्था में रुग्ण व्यक्ति

को अत्यल्प मात्रा में कष्टकर मूत्र का बार-बार परित्याग करना पड़ता है। इसे ही मूत्रकृच्छ्र के नाम से जाना जाता है।

इसके लिए पथरी रोगनाशक जो उपाय बतलाये गये हैं, उन्हें अपनाने के साथ-साथ स्नेहादि कर्म भी दोषानुसार करने चाहिए।

वातज मूत्रकृच्छ्र में शास्त्रकथित तैलादि से अभ्यंग, स्नेहन, बस्ति, निरूहबस्ति, स्वेदन, प्रलेप, उत्तरबस्ति तथा परिषेक आदि कर्म करने आवश्यक कहे गये हैं।

इसके साथ ही शालवन आदि वातशामक पदार्थों से पकाये गये मांसादि रसों का प्रयोग करें।

पित्तज मूत्रकृच्छ्र में शीतल जल से शारीरिक सेचन, ठण्ढे जलराशि में स्नान, ठण्ढे पदार्थों, जैसे—खस, चंदनादि द्रव्यों का लेपन, ग्रीष्मकालीन उपचार, बस्तिकर्म, दुग्धादि द्वारा विरेचन तथा दाख, बिदारीकन्द और गन्ने का रस आदि घृत के साथ पान करना उपयोगी होता है।

कफज मूत्रकृच्छ्र हेतु क्षारपदार्थ, उष्ण पदार्थ, पंचकोलादि तीक्ष्ण औषध, तीक्ष्ण भोजन, स्वेदन, यवान्न, वमन, निरूहबस्ति, तिक्त औषधियों के मिश्रण से पकाये गये तैल का मट्ठे के साथ मर्दन और पानकर्म करना उत्तम फलदायक होता है।

त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र में पूर्वकथित वातादि दोषों के कथित उपचारों के साथ अवस्थानुसार प्रयुक्त करें। कफाधिक्य वाले त्रिदोष में सर्वप्रथम वमन, पित्ताधिक्य में विरेचन तथा वाताधिक्य में बस्तिकर्म पहले किये जाने चाहिए।

गुरुच, सोंठ, आँवला, असगंध और गोखरू। इनके चूर्ण का प्रयोग वातग्रस्तता तथा मूत्रकृच्छ्रता में गरम जल के साथ करना हितकर है।

कुश, कास, रामशर, डाभ और ईख—इन पंचमूल नामक तृणों की जड़ का शर्बत बनाकर पान करना पित्तज मूत्रकृच्छ्रविनाशक तथा बस्तिप्रदेश का शोधन करने वाला कहा गया है।

पंचतृणों का क्वाथ दूध के साथ पीने से लिंगगत प्रदूषित रक्त का निवारण होता है। शतावरी, कास, कुश, गोखरू, बिदारीकन्द, शालवन, ईख, कसेरूकन्द—इनके क्वाथ के ठण्ढा होने पर मधु और शक्कर मिलाकर पीना पित्तज मूत्रकृच्छ्र का नाशक होता है।

दाहजनित, पीड़ायुक्त तथा मलावरोधक वाले मूत्रकृच्छ्र में हर्रे, गोखरू, अमलतास, पाषाणभेद, दालचीनी और अड़ूसा के क्वाथ में मधु डालकर पीने से लाभ होता है।

गुड़मिश्रित आँवला वृष्य, श्रमविनाशक, तर्पक, रेचक और पित्त-रक्तदाह, शूल एवं मूत्रकृच्छ्रनाशक होता है।

छोटी इलायची को गोखरू, मदिरा या केले के रस में बारीक पीसकर पीने से कफज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है।

कंटकारी, पिठवन, पाठा, मुलेठी और कूठ—ये योग त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र में लाभकारी होते हैं। गुड़ मिला हुआ गरम दूध पीने से सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ्र, शर्करानामक प्रमेह तथा वातरोगों में लाभकारी होता है।

सद्योव्रण में कथित चिकित्सा अभिघातज मूत्रकृच्छ्र में उपयोगी कही गयी है। इसके साथ ही निरन्तर वातशामक उपाय भी किये जाने चाहिए। मलोत्पत्र मूत्रकृच्छ्र में स्वेदन, चूर्णसेवन, अभ्यंग, बस्तिकर्म आदि आवश्यक होते हैं।

गोखरू के बीज का काढ़ा बना जवाखार के साथ पीने से भीषण मूत्रकृच्छ्र भी एक बारगी ही दूर हो जाता है। शर्करा प्रमेह, पथरी तथा मूत्रकृच्छ्र में इलायची और हींग के चूर्ण को दूध के साथ घी मिलाकर पीने से लाभ होता है।

गोखरू, अमलतास, डाभ, कास, दुरालभा, पाषाणभेद और हरड़। इनका चूर्ण मधु के साथ प्रयोग करने पर पथरी और मूत्रकृच्छ्र से मरणासन्न व्यक्ति भी स्वस्थ हो जाता है। इलायची, पाषाणभेद, शिलाजीत और छोटी पीपर। इनके चूर्ण को चावल की धोवन या गुड़ के साथ सेवन करने वाला व्यक्ति मृत्यु के मुख में जाने से बच जाता है।

मंडूर के सूक्ष्म चूर्ण का सेवन तीन बार मधु के साथ कर लेने से मूत्रकृच्छ्र का निश्चय ही विनाश हो जाता है। अथवा जवाखार और शक्कर को समान भाग में खाने पर मूत्रकृच्छ्र का शमन होता है। कंटकारी के रस में मधु मिलाकर पीना भी मूत्रकृच्छ्रनाशक होता है।

शतावरीघृत का लाभ

शतावरी, कास, कुश, गोखरू, बिदारीकंद, ईख और आँवला। इनके मिश्रण से पकाये गये घृत या शक्करमिश्रित दुग्ध से पित्तज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। गोखरू, रेंड़ की जड़, कुशादि पंचमूल, शतावरी, तरबूज तथा ईख—इनके रस में पकाये गये घृत से आधा गुड़ मिलाकर पान करने पर मूत्रकृच्छ्र, पथरी तथा मूत्राघात आदि रोगों का विनष्टीकरण होता है।

मूत्राघात का उपचार

मल-मूत्रादि वेगों के अवधारण करने के फलस्वरूप वातादि दोष कुपित होकर तेरह प्रकार के मूत्राघात की उत्पत्ति कर देते हैं जो इस प्रकार से हैं।

जैसे—वातकुंडलिका, अष्ठीला, वातबस्ति, मूत्रातीत, मूत्रोत्संग, मूत्रक्षय, मूत्रशुक्र, उष्णवात, मूत्रसाद, विड्विघात, बस्तिकुंडल और मूत्रग्रंथि।

मूत्राघात रोग में स्नेहपान, स्वेदन, नस्य, स्नेहन के द्वारा विरेचन, शोधनकर्म के पश्चात् उत्तरबस्तिकर्म लाभकारी सिद्ध होते हैं।

पाठा वृक्ष की छाल, जवाखार पारिभद्र (फरहद) और काला तिल। इनका अलग-अलग क्षार बनाकर जल में घोल दें।

तदनन्तर इस क्षारयुक्त जल के साथ इलायची और कालीमरिच का चूर्ण मदिरा के सहित पान करें अथवा उक्त क्षारजल में गुड़ मिलाकर पीना चाहिए।

केशर के कल्क को मधु के साथ मिला कर रातभर जल में भिंगोकर प्रातः पान करें। पाठा की छाल का भस्म बना जल में डालकर उसे सात बार निथार लें।

पुनः उसे तैल के साथ पान करें। अथवा केवल काला नमक मदिरा के साथ सेवन करने पर भी मूत्राघात नहीं रह जाता।

एक तोला ककड़ीबीज का कल्क बना सेंधानमक मिला कांजी के साथ पान करने से मूत्राघात नष्ट होता है।

अथवा वीरतरादिगण के क्वाथ में शिलाजीत मिलाकर पीवें। दुरालभा या अड़ूसे के कषाय को पीने से मूत्राघात का निवारण होता है।

गोखरू, रेंड़ की जड़ और शतावरी—इन्हें दूध में पकाकर या पंचमूल में गुड़, घी अथवा दूध को पकाकर पीना मूत्रकृच्छ्र में लाभप्रद होता है।

रक्तस्राव वाले मूत्राघात में चावल की धोवन आधा तोला चंदन घिसकर बार-बार पीने से लाभ मिलता है।

अतिमैथुन के फलस्वरूप दूषित रक्त की विप्लुति में स्त्रीसंसर्ग से विरत रहना ही एकमात्र पुष्टिकर औषधि होती है।

मुरगे की चरबी का तैल, उत्तरबस्तिकर्म में प्रशस्त होता है। क्रौंच के बीज, त्रिफला, दाख, छोटी पीपर और गोखरू—इनके चूर्ण में समान भाग शक्कर मिला दूध, मधु और घृत के साथ घोंटकर अक्ष परिमाण की मात्रा में खाकर जल का पान करें।

चित्रकादि घृत का निर्माण एवं लाभ

चित्रक की जड़, सरिवन, दाख, छोटी पीपर, त्रिफला, मुलेठी और आँवला। प्रत्येक वस्तुओं के अक्ष परिमाण का कल्क १ द्रोण जल, १ द्रोण दूध और ४ प्रस्थ घी डालकर पकावें।

पककर शीतल होने पर उसे छानकर उसमें १ प्रस्थ शक्कर तथा १ पल वंशलोचन डाल दें।

तत्पश्चात् इस घृत को दोष बलानुसार पान करने से शुक्रगत वात, पित्त, कफ, रक्त, ग्रंथि तथा मूत्र-संबंधी सभी रोगों का विनष्टीकरण होता है।

यह घृत जीवनीय, पुष्टिकारक, रोगनाशक, बुद्धिवर्धक तथा समस्त रोगों का अपहारक है। इसके सेवन से वन्ध्या नारी भी शीघ्र ही गर्भाधान में समर्थ हो जाती है।

इसके साथ ही यह रक्तविकार तथा अनेक प्रकार के योनि-संबंधी रोगों से छुटकारा दिलाता है।

अतः मूत्राघात आदि जैसे दुष्कर रोगों में यह घृत सदैव ही ग्रहणीय होता है।

अश्मरी रोग का उपचार

वात, पित्त, कफ और शुक्र—इन चार प्रकार के विकारों से पथरी रोग की उत्पत्ति होती है।

इन चारों में वातादि तीन दोषों से युक्त अश्मरी कफाश्रित रहती हैं। अतः सभी दृष्टियों से पथरी के ये चारों प्रकार अत्यन्त कष्टकारक होते हैं।

सोंठ, गोखरू तथा वरुण की छाल का काढ़ा जवाखार और गुड़ मिलाकर पका लें। इस क्वाथ-पान से दीर्घकालिक वातज पथरी का निवारण होता है। कुम्हड़े के रस में जवाखार और गुड़ मिलाकर पीना मूत्रावरोध, शर्कराप्रमेह तथा अश्मरीनाशक होता है।

अथवा सहिजन की जड़ का काढ़ा बनाकर गुनगुना पीने से पथरी रोग का उन्मूलन होता है।

खस, अरनी काष्ठ, ईश्वरमल्लिका, अडूसा, गोखरू, दीर्घलोहित-यष्टि, पीली कटसरैया, नीली कटसरैया, कास, अम्लबेल, नल नामक तृण, डाभ, वृन्ततृण, एरका, सोनापाठा, मूर्वा (मरोड़फली), कुरंटक, उत्तम और सूर्यबेल—ये सब वीरतरादिगण कहे जाते हैं।

इनसे वातज रोग, पथरी, शर्कराप्रमेह, मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात-जैसे रोगों का निर्मूलन होता है।

शतावरी, गोखरू, कटेरी, कंटकारी, ब्राह्मी, नागबला (गंगेरन), सोनापाठा, खस, कटक फल, अमरबेल, वरुना, शाकफल, यव, कुलथी, कोल और अनार के फल। इनके क्वाथ में उषकादिगण के पदार्थों का प्रतिवाप देकर घृत को पका लें। इस घृतपाक के द्वारा वातोत्पन्न पथरी का शीघ्र ही नाश होता है।

खारी मिट्टी, नीलाथोथा (तूतिया), हींग, दोनों प्रकार के कासीस, सेंधा नमक और शिलाजीत उषकादिगण कहे गये हैं। ये सभी मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, मेदोरोग तथा कफजन्य रोगों के उन्मूलक होते हैं।

कुश, कास, रामशर, गुण्ठ, इत्कट, मरोड़फली, डाभ, बिदारीकंद, वाराहीकंद, चौलाई शाक की जड़, गोखरू, सोनापाठा, पाटला, पतंग, कुरंटा, पुनर्नवा (विषखपरा, गदहपूरना) और शिरीष।

इनके क्वाथ में ककड़ी के बीज, नीलकमल, मुलेठी या शिलाजीत का प्रतिवाप देकर घृतपाक तैयार करें। इस घृतपान के परिणामस्वरूप पित्तज पथरी विखंडित हो जाती है।

गुग्गुलु, इलायची, रेणुका, कूठ, मोथा, कालीमरिच, चीता और देवदारु। इनके साथ वरुणादिगण या उषणादिगण में पाचित बकरी का घृत कफोत्पन्न पथरी का तत्काल ही भेदन कर देता है।

वातज पथरी में वातनाशकगण, पित्तज में पित्तशामकगण तथा कफज में कफविनाशकगण के साथ पकाये हुए क्षार, यवागू, मेदा, कषाय और दूध आदि का आहार ग्राह्य है।

वरुणा, दोनों प्रकार की कटसरैया (नीली और पीली), शतावरी, चीता, मरोड़फली, बेल का गूदा, मेढासिंगी, कटेरी, कंटकारी (भटकटैया), दोनों प्रकार के करंज, अरनी, हर्रें, सहिजन, डाभ और हिंताल—ये वरुणादिगण कफ, मेद, अग्निमांद्य, अपानवायु, शिर:शूल, गुल्म तथा विद्रधि रोगनाशक होते हैं।

शुक्रदोषोत्पन्न पथरी रोग में पेठे (कुम्हड़े) के रस में गुड़ और जवाखार मिलाकर पीने से उत्तम फल मिलता है।

सोंठ, वरुणा की छाल, गोखरू और ब्राह्मी। इनके क्वाथ में गुड़ और जवाखार मिलाकर पीने से पथरी निकल जाती है।

वरुणा की छाल, पाषाणभेद, सोंठ और गोखरू—इनके कषाय में जवाखार मिलाकर पीने से पथरी गिर जाती है।

अथवा केवल वरुणा की छाल के कषाय में गुड़ मिलाकर पीना पथरी तथा बस्तिशूल निवारक होता है।

वरुणा के काढ़ा में कूठ, पेठा तथा गोखरू का कल्क मिला घृतपाक करें। इस घृतपान से समस्त प्रकार की पथरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राभिघात तथा मूत्रावरोध दूर होते हैं।

कुश, कास, रामशर आदि पंचमूल के कषाय में गोखरू का कल्क मिलाकर १ प्रस्थ घी में पकावें। पकने के पश्चात् उसमें शक्कर मिलाकर खायें। इससे पथरी, मूत्रकृच्छ्र तथा जननेंद्रिय के रोगों का निर्मूलन होता है।

वरुणादि घृत का निर्माण एवं लाभ

वरुणे की १०० पल छाल को पीसकर १ द्रोण जल में पका लें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसे निथारकर १ प्रस्थ घी में पुन: पकावें। पूरी तरह से पक जाने पर इसे १ अक्ष की मात्रा में पान करें। इसके जीर्ण होने पर अगरु मिलाकर बासी दही

के पानी के साथ पीना पथरी, शर्कराप्रमेह (बीस प्रकार के प्रमेहों में से एक) तथा मूत्रकृच्छ्र का उन्मूलक सिद्ध होता है।

सैंधवादि तैल में दुगुना दूध मिलाकर पूर्वकथित वीरतरादिगण के द्रव्य-समूहों का कल्क बनाकर पकावें। यह तैल पथरी के विनष्टीकरण हेतु सर्वोत्तम कहा गया है। इसे मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्र के साथ ही रगड़े या मसले हुए अंगों, टूटे-फूटे अवयवों या प्रस्तरादि से गिरकर आघातित हुए व्यक्तियों पर भी सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया जा सकता है।

प्रमेहमधुमेहपिडिका रोग का उपचार

वातादि दोष के भिन्न-भिन्न रूप या सान्निपातिक रूप के बस्तिगह्वर में पहुँचकर शरीरस्थ (धातुओं—रस, रक्त, मांस, मेद आदि) के कर्षण से स्थानभेदानुसार विविध भाँति के प्रमेह की उत्पत्ति होती है।

इस रोग में श्यामाक (साँवाँ नामक धान्य), कोदो, वनकोदो, गेहूँ, चना, अरहर तथा पुरानी कुलथी ग्राह्य मानी जाती है। इसके विपरीत गुड़, खाँड़, भारी आहार (मत्स्य-मांसादि) आदि पदार्थ अग्राह्य होते हैं।

कटु शाक, जंगलप्रदेशीय मृगों, कुक्कुटों या तीतर आदि पक्षियों के मांसरस, यवान्न के विकार, मूँग, शालिधान्य, साठी का चावल—ये सभी पदार्थ प्रमेह रोग में लाभदायक होते हैं।

दूध, कसेरू, पूतिकरंज, नागकेशर, केवटीमोथा और सिवार। इन्हें जल में पकाकर पीने से शुक्रप्रमेह का निवारण होता है।

त्रिफला, अमलतास और अंगूर। इनके कषाय के ठण्ढा होने पर मधु के साथ पान करने से फेनप्रमेह नष्ट होता है।

पित्तज प्रमेह निदान

यहाँ पित्तजप्रमेह के नाशार्थ चार प्रकार के प्रयोग पृथक्-पृथक् रूप में दिये जा रहे हैं जो इस प्रकार से हैं—

१. लोध, हर्रें, कट्फल (कायफल) और मोथा।

२. वायविडंग, अर्जुन वृक्ष की छाल, पाठा और धामिन।

३. कदम्ब, शाल (सखुआ वृक्ष), अर्जुन की छाल और मोरशिखा।

४. वायविडंग, दारुहलदी, धव के फूल, सोनापाठा, नीलकमल, इलायची, पेठा (कुम्हड़ा) और अर्जुन की छाल।

उक्त चार प्रकार के कषायों में से किसी एक के प्रयोग से पित्तज प्रमेह उसी

प्रकार खंडित हो जाता है जिस प्रकार इन्द्रदेव के वज्रप्रहार द्वारा पर्वत छिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

अमलतास, पीपर, न्यग्रोध (गूलर) आदि गण के द्रव्यसमूह, त्रिफला तथा रक्तचंदन के साथ मंजीठ।

इन पाँच प्रकार के क्वाथ में मधु डालकर सेवन करने से नीलमेह, हरिद्राप्रमेह, शुक्रप्रमेह तथा रक्तप्रमेह नष्ट होते हैं।

खजूर, कम्भारी, तेंदुक और गुरुच। इनके अलग-अलग क्वाथों को चित्रक के कषाय में पका लें।

तदनन्तर इसमें चीता, कूठ, हींग और कटुकी चूर्ण को मिलाकर पान करना घृतप्रमेह में लाभकारी होता है।

चन्द्रप्रभा वटि का लाभ

भटेउर, चित्रक, त्रिकटु, त्रिफला, देवदारु, चिरायता, पिपरामूल, मोथा, कचूर, वचा, सोनामाखी, नमक, खार, हलदी, दारुहलदी, धनिया, गजपीपर और अतीस—१-१ कर्ष, शिलाजीत ८ पल, शुद्ध गूगुल २ पल, मंडूर २ पल, शक्कर ४ पल, वंशलोचन १ पल, निशोत तथा दन्ती १-१ पल एवं त्रिसुगंध (इलायची, तेजपात, दालचीनी) १ पल लेकर कूट-पीस लें।

तत्पश्चात् इसे गोघृत में मिलाकर वटी बना लें। इसका नाम चंद्रप्रभा वटी है। भोजन के पूर्व इस वटी को मधु के साथ खाकर रोगानुसार मट्ठा, दही का पानी, बकरे का मांसरस, जंगली हिरनों का मांसरस, दूध या ठण्ढा पानी पीना चाहिए।

इससे अग्निमांद्य, वात-पित्तोत्पन्न पुराना बुखार, नाड़ीव्रण, मर्मव्रण, राजयक्ष्मा, गृध्रसीवात (सायेटिका) एवं अन्यान्य प्रकार के राजरोगों (दु:साध्य रोगों) का विनाश संभव हो जाता है।

उक्त रोगों के अतिरिक्त यह स्त्रियों के प्रदर, शुक्रक्षीणता, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रवाह, औदरिक रोग तथा सम्पूर्ण प्रकार के वातज रोगों में भी प्रयोक्तव्य होता है।

इसके सेवनकाल में खान-पान, गली-सड़ी, वात और मैथुनादि में भी ग्राह्याग्राह्य का विचार नहीं किया जाता।

इसका सेवन करने वाला हाथी के समान बलवान, घोड़े के समान वेगवान, गरुड़ पक्षी के समान दूर दृष्टि वाला तथा श्रवण में शूकर के सदृश हो जाता है। इसके प्रयोग द्वारा वातादि विकारों, बीस प्रकार के प्रमेह रोगों तथा वलीपलितादि से विमुक्त होकर वृद्ध व्यक्ति भी तरुणावस्था को प्राप्त कर लेता है।

पपरिया कत्था, खैर और सुपारी का क्वाथ पीना मधुमेह (डायबिटीज) रोग में लाभदायक है।

वसाप्रमेह (मूत्र के साथ चरबी का निकलना) में अरनी के कषाय तथा हस्तिमेह (हाथी के समान धीरे-धीरे मूत्र का त्याग) में पाठा, शिरीष (सीसम), क्रौंच, मरोड़फली, पलाश, तेंदू तथा कैथ का कषायपान लाभकारी होता है।

कबीला, सतौना, शाल, (सखुआ), बहेड़ा, रोहिड़ा, कूठ और कैथ के फलों को चूर्णित कर मधु के साथ सेवन करने से कफ-पित्त संबंधी प्रमेह नष्ट होता है।

प्रमेह रोग में दोषानुसार स्नेहन, वमन, विरेचन, निरूहबस्ति कर्म होने के अनन्तर उसे सभी प्रकार के प्रमेह हेतु हलदी और आँवले के रस में मधु मिलाकर पीने चाहिए।

अथवा देवदारु, त्रिफला और मोथे का काढ़ा या त्रिफला, देवदारु, दारुहलदी और मोथे के काढ़े में मधु मिलाकर पीने से सर्वप्रमेह निर्मूल होते हैं।

अथवा कूठ, विजयसार, हलदी, मोथा और त्रिफला—इनके क्वाथ को या गुरुच के स्वरस को शहद के साथ अथवा शाल, कठपाठा, कबीला—इनके कल्क को एक अक्ष की मात्रा में मधु तथा आँवले के रस के साथ पान करने चाहिए।

त्रिफला, दारुहलदी, इन्द्रायण और मोथा—इनकों हलदी के कल्क के साथ पकाकर पीने से सभी प्रमेह दूर होते हैं।

अथवा त्रिफला, शिलाजीत, मंडूर और हरड़—इनमें से किसी एक चूर्ण को मधु के साथ चाटने से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं।

न्यग्रोधादि चूर्ण का लाभ

बरगद की छाल, गूलर की छाल, पीपल की छाल, सोनापाठा की छाल, अमलतास, विजयसार, आम्रपाठी, कैथ, जामुन, चिरौंजी, अर्जुन वृक्ष की छाल, धव, महुआ, मुलेठी, लोध, वरुना, फरहद, परवल, मेढ़ासिंगी,दन्ती, चीता, डूम्बरिफल, पूतिकरंज, त्रिफला, इन्द्रयव और भिलावाँ नामक फल—इन्हें समान भाग में लेकर चूर्ण कर लें।

इस चूर्ण का नाम न्यग्रोधादि चूर्ण है। इस चूर्ण को ८ माशे मधु के साथ खाकर १ पल त्रिफला का रस पीने से मूत्रविकार दूर होते तथा मूत्र का शोधन होता है।

इसके द्वारा बीस प्रकार के प्रमेहों का उन्मूलन होकर मूत्रकृच्छ्र से निवृत्ति होती है। इससे पिडिका (प्रमेह के कारण शरीर पर होने वाले फोड़ा-फुंसी का विस्फोट) की उत्पत्ति भी नहीं होती।

त्रिकण्टकादि घृत का लाभ

गोखरू, हलदी, लोध, सफेद कत्था, वचा, अर्जुन, कमलगट्टा, आंवुटा (दीपाधाराच्छादन नामक वृक्षविशेष), नीम, चंदन, अगरु, अजमोदा, परवल, मोथा, मंजीठ, काला अतीस तथा भिलावाँ फल।

इन सबको समान भाग में घृत और तैल के साथ अलग-अलग पका लें। वातज-कफज दोष में तैल, पित्तज में घृत तथा मिश्रित दोषयुक्त प्रमेह में घृत और तैल, दोनों का प्रयोग करने से लाभ मिलता है।

त्रिकटु और त्रिफला के समान भाग चूर्ण में बराबर का गूगुल मिलाकर गोखरू के काढ़ा में घोंटकर वटी बना लें। इस गोली का सेवन बलाबल के अनुसार करें। इससे वातादि दोषों का उपशम होता है।

इसके सेवनकाल में पथ्यापथ्य का कोई निषेध नहीं है। वह इच्छानुसार सभी चीजें खा-पी सकता है। इसके प्रयोग से समस्त प्रकार के प्रमेह, वातज रोग, वातरक्त, मूत्राघात, मूत्रविकार तथा पथरी रोग का भी निवारण होता है।

कफज प्रमेहनाशक क्वाथ में पकाया गया घृत कफदोष में तथा पित्तज प्रमेहनाशक क्वाथ में पाचित घृत पित्तजनित प्रमेह में लाभकारी होते हैं।

धान्वन्तरघृत का लाभ

दशमूल, दोनों प्रकार का करंज, देवदारु, हर्रै, लाल पुनर्नवा, वरुणा, दन्ती, चित्रक, श्वेत पुनर्नवा, थूहर (सेंहुड़ का पौधा), छोटी कदम्ब, बड़ी कदम्ब, बेल का गूदा, भिलावाँ फल, कचूर, पुष्करमूल और छोटी पीपर।

इन सबके अलग-अलग १०-१० पल, यव, बेर तथा कुलथी को १६-१६ पल लेकर एक द्रोण जल में पकावें। (इसे कुछे विद्वानों ने जल से अठगुना भाग में क्वाथ को माना है।) पकाने पर चौथाई भाग शेषांश में उसे छानकर एक प्रस्थ घी मिलाकर पुन: पाक करें।

दोबारा पकाने के समय उसमें हिज्जल, त्रिफला, भारंगी, सुगंधि तृण (रोहिष तृण), गजपीपर, अदरक, भाभीरंग, वचा और कबीला—इनका कल्क बनाकर मिला दें और अग्निबलानुसार सेवन करें।

इस धान्वन्तर नामक प्रसिद्ध घृत से कोढ़, गुल्म, प्रमेह, सूजन, वातरक्त, पेट का बरवट, बवासीर, विद्रधि, पित्तज रोग, अपस्मार, उन्माद आदि सभी रोगों पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

वमन, विरेचनादि कर्मों के द्वारा शरीरशोधन के पश्चात् शुद्ध शिलाजीत को शालसारादिगणों के द्रव्यरस में भिंगोकर उसी रस में खरल कर बलाबल के अनुसार सेवन करें।

सेवनोपरान्त जंगलदेशीय हिरनों का मांसरस पी लें। प्रयुक्त औषधि का परिपाक होने पर पथ्याहार ग्रहण करें।

इस प्रकार १०० पल शिलाजीत सेवन करने वाला मनुष्य मधुमेह, शर्करामेह तथा पथरी आदि दुष्कर रोगों को नियंत्रित कर १०० वर्षों तक स्वस्थ जीवन जीने का सौभाग्य प्राप्त करता है।

इसी भाँति सोनामाखी का प्रयोग करके भी उक्त फल की उपलब्धि कर सकता है।

मेह संबंधी पिडिका (फोड़ा-फुंसी) की अपरिपक्वावस्था में शोथ की चिकित्सा पद्धति अपनायें। पकने के अनंतर व्रणरोग की भाँति तथा पूर्वावस्था में क्षीरीवृक्षों का जल, अजामूत्र तथा तीक्ष्ण औषधों के द्वारा शोधन कर्म हितकर होता है, क्योंकि मल की विषमता से मेही विरेचन के अयोग्य माना जाता है।

एलादिगणसमूहों से पकाया हुआ तैल व्रणरोपक होता है। इसी प्रकार आरग्वधादिगणीय पदार्थों के क्वाथ और उबटन से भी व्रण का पूरण होता है।

असनादिगण के द्रव्यों से परिषेक तथा वत्सगणादि द्रव्यों के पाचित अन्नपान भी रोगविमुक्ति न होने तक किये जाने चाहिए।

प्रमेह रोगी को गरिष्ठ पदार्थ, सौवीर कांजी, मदिरा, तैल, दुग्ध, गुड़, घृत, अत्यम्ल पदार्थ, गन्ने का रस तथा जलीय देशों के जीवों के मांस नहीं खाने चाहिए।

प्रमेही व्यक्ति में स्वच्छ, श्वेत, निरुपद्रवविहीन, कुछ तिक्त और कड़ुए मूत्र का निकलना आदि आरोग्यतासूचक लक्षण माने जाते हैं।

आधा पल पारद और एक पल गंधक की कज्जली बनाकर पत्थर के खरल में घोंट लें। पुनः त्रिफला, त्रिकटु, नागरमोथा, भाभारंग और चीता—इन सबके ३-३ पल और इनके समान लौहकिट्ट।

इनको एकीकृत रूप से खरल करें। तत्पश्चात् १ तोले की मात्रा में इस चूर्ण का सेवन मधु एवं शक्कर के साथ करें।

इस चूर्ण के सेवन से मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी, मधुमेह, लिंगज रक्त, शुक्रसंबंधी अष्टदोष तथा बीस प्रकार के प्रमेह रोगों के उन्मूलन होते है। इतना ही नहीं, वरन् वृद्ध पुरुष भी वलीपलितादि रोगों से मुक्ति पाकर यौवनावस्था में आ जाता है।

मोटापा रोग का उपचार

शारीरिक स्थूलता के निवारणार्थ निम्न प्रकार की सावधानियाँ अपेक्षित होती हैं, जैसे—आहार में पुराने चावल, मूँग, कुलथी, वनकोदों तथा कोदों आदि अन्नों

का प्रयोग, बस्तिकर्म, चिन्ता, क्रोध, धूम्रपान, व्यायाम, यन्त्रादि उपकरणों द्वारा रक्त का निष्कासन, उपवास, उपकरणरहित शैय्या में शयन, सत्त्वगुण और उदारता का भाव, तमोगुण का त्याग तथा निद्रानाश आदि निद्रा के विनाशक हैं।

आहार-विहार में संयम, एक बार के किये गये भोजन पचने के अनन्तर दोबारा आहार-ग्रहण, प्रतिदिन व्यायाम सेवन, वाणी पर नियंत्रण तथा यव, गेहूँ आदि खाद्य पदार्थों के सेवन से स्थूलता घटती है।

परिश्रम, चिन्ता, स्त्रीप्रसंग, मार्गगमन, मधुसेवन, जागरण, यवान्न तथा साँवाँ नामक धान्य का आहार लेना भी स्थूलता को मिटाते हैं। प्रात:काल जल में मधु मिलाकर पीने से भी मोटापा दूर होता है।

अथवा वायविडंग, सोंठ, जवाखार, काले लौह की मंडूर और मधु के सेवन तथा आँवला और यवचूर्ण से स्थूलता घटती है।

प्रतिदिन अन्न की गरम-गरम माँड पीने से भी मोटापा दूर होकर कृशता आ जाती है।

अथवा चव्य, जीरा, त्रिकटु, हींग, कालानमक और चित्रक—इनके चूर्ण को सत्तू में मिलाकर दही के पानी के साथ प्रयोग करने से चरबी नष्ट होती तथा जठराग्नि बढ़ती है।

व्योष (सोंठ, कालीमरिच, पीपर), सहिजन की जड़, त्रिफला, कटुकी, कटेरी, कंटकारी, हलदी, दारुहलदी, पाठा, अतीस, शालवन, केतकी की जड़, अजवायन, चीता, कालानमक, कालीजीरी, हाऊबेर—इन सब पदार्थों का चूर्ण १ भाग, घृत १ भाग, मधु १ भाग तथा १६ भाग यवनिर्मित सत्तू।

इन सबका एकीकरण करके किसी रुचिकार और शीतल पेय के साथ पान करें।

इसके प्रयोग से प्रमेह, मूढ़वात, कुष्ठ, अर्श, कामला, पाण्डु, प्लीहा, सूजन, मूत्रकृच्छ्र, अरोचकता, हृदय-संबंधी रोग, क्षयरोग, खाँसी, श्वास, गलग्रह, कृमि, ग्रहणी, शैत्य (शीत का प्रकोप) तथा मोटापा आदि कठिन रोगों का शीघ्र ही उन्मूलन होता है।

इसके साथ ही क्षुधाग्नि, शक्ति, बुद्धि तथा स्मरणशक्ति भी बढ़ती है।

त्रिफलादि तैल का लाभ

त्रिफला, अतीस, मरोड़फली, निशोत, चित्रक, अडूसा, नीम, अमलतास, वचा, सतवन, हलदी, गुरुच, अर्जुन की छाल, छोटी पीपर, कूठ, सरसों, सोंठ। इनके मिश्रण से पकाये गये तैल को सुरसादिगण के द्रव्यों के क्वाथ में उबाल लें।

पुनः इसे पान, मर्दन, गंडूषधारण, नस्य तथा बस्तिकर्म के रूप में प्रयुक्त करने पर स्थूलता, आलस्य, कफजनित कम्पन आदि रोग दूर होते हैं।

शिरीष, लामज्जक तृण (सुगंधित तृणविशेष), लोध, नागकेशर—इन्हें पीस कर लेप लगाने से त्वचा के विकार नष्ट होते हैं।

तेजपात, सुगंधवाला, अगरु,खस और चंदन—इनका लेप शरीर की दुर्गन्धि को मिटाता है।

अथवा बेलपत्र के रस में अडूसा के पत्तों का रस मिला शंखचूर के साथ प्रयोग किये जाने पर समस्त प्रकार की शारीरिक दुर्गन्धि का नाश होता है।

हर्रें, लोध, नीम की पत्ती, आम की छाल तथा अनार के छिलके का उबटन तथा काकजंघानिर्मित क्वाथ से शरीरांग का सौन्दर्यवर्धन होता है। यह राजरमणियों हेतु एक श्रेष्ठ अंगराग होता है।

अथवा त्रिकटु, चीता, मोथा, त्रिफला, वायविडंग—इनके चूर्ण के साथ समान भाग गूगुल का सेवन करने से मोटापा, कफ तथा आमवातोत्पन्न रोगों का निवारण होता है।

उदररोग का उपचार

वातादि दोषों की प्रकुपितावस्था में शरीरस्थ स्वेदवाहिनी तथा जलवाहिनी नाड़ियाँ अवरुद्ध होकर आठ प्रकार के उदररोगों को उत्पन्न कर देती हैं जिनके नाम इस प्रकार से बतलाये गये हैं—

वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, सन्निपातोदर, प्लीहोदर, यकृदाल्युदर, बद्धगुदोदर तथा क्षतोदर।

ऐसी स्थिति में प्राणवायु, अपानवायु तथा जठराग्नि भी दूषित हो उठती है।

इन सब में अत्यन्त दुःसाध्य अवस्था जलोदर की मानी जाती है। ऐसी दशा आने पर रोगी के उदर में अत्यधिक जल का संचयन हो जाता है जो असाध्य कहा जाता है।

समस्त प्रकार के उदर रोगों में लालवर्णीय धान्य, यव, मूँग, जंगली मृगमांस का रस, विरेचन, आस्थापन, बस्तिकर्म आदि प्रयोग अवश्य किये जाने चाहिए।

वातोदर में शक्तिशाली रोगी के लिए स्नेहन और स्वेदन कर्म आवश्यक होते हैं। रोगी के स्निग्धित और स्वेदित होने के पश्चात् उसे स्नेहपान के द्वारा विरेचन कराना उचित हैं।

रेचक पदार्थों के प्रयोगोपरान्त भी पेट में अफरा होने पर स्निग्ध, अम्ल तथा लवणयुक्त पदार्थों से एवं निरूहबस्ति के द्वारा रोगी के उपचार किये जाने चाहिए।

सामुद्रादि चूर्ण का लाभ

समुद्रीनमक, काला नमक, सेंधा नमक, विड् नमक, जवाखार, अजमोदा, छोटी पीपर, चीता, अदरक, हींग और कूठ—इनको समान भाग में लेकर चूर्ण बना उसमें घी डालकर भोजनोपरान्त सेवन करें।

इस चूर्ण के उपयोग से वातोदर, गुल्म, अपच, वातदोष, ग्रहणीदोष, अर्श, पाण्डु तथा भगन्दर रोग (गुदाद्वार का रोगविशेष, फिस्चुला) शीघ्र ही निर्मूल हो जाते हैं।

वातोदर में मट्ठे के साथ छोटी पीपर और नमक मिलाकर पीना उचित है। पित्तोदर में शक्कर और कालीमरिच मिलाकर तक्रपान, कफोदर में अजवायन, सेंधा नमक, कालीजीरी तथा त्रिकटु चूर्ण के साथ मट्ठा तथा सन्निपातोदर में त्रिकटु, जवाखार और सेंधा नमक के चूर्ण को मट्ठे साथ पान करना लाभकारी होता है।

एक हजार नग छोटी पीपर को सेंहुड़ के दूध में भिगोकर भोजन के पूर्व शत्त्यानुसार उदररोग में खाने से लाभ मिलता है। अथवा शिलाजीत, गोमूत्र, गूगुल, त्रिफलाचूर्ण और सेंहुड़ का क्षार—इनके अलग-अलग प्रयोग से उदररोग का शमन होता है।

चावल के कणों को थूहर (सेंहुड़) में दूध में भिंगोकर बनाये गये चूर्ण को पकाकर उसके कषाय को मात्र सात दिन पीने से ही औदरिक नष्ट होते हैं।

अथवा औदरिक रोग को नियंत्रित करने हेतु छोटी पीपर के कल्क का अण्डीतैल के साथ प्रयुक्त करना सर्वश्रेष्ठ औषध है। इससे बढ़कर अन्य कोई प्रयोग लाभप्रद नहीं होता।

दशमूल, दारुहलदी, सोंठ, गुरुच, पुनर्नवा और हर्रे—इनके क्वाथ का पान करना जलोदर, सूजन, श्लीपद (फीलपाँव, हाथीपाँव), गलगंड और वातज रोगों का उन्मूलक होता है।

पटोलादि चूर्ण का लाभ

परवल की जड़, त्रिफला, हलदी और वायविडंग—इन सबका १-१ कर्ष भाग, कबीला २ भाग (२ तोला), नीली ३ भाग (३ तोला) और निशोत ४ भाग (४ तोला)।

इनके चूर्ण को गोमूत्र के साथ पान करें। तदनन्तर जांगल मृग-मांस रस का पेया भी पी लें। इस प्रयोग से विरेचित होने के पश्चात् त्रिकटु चूर्ण दूध में पकाकर छह दिनों तक पान करें।

इस प्रकार पटोलादि चूर्ण का अनेक बार उपयोग करने से जलसंचित असाध्य औदरिक रोग भी निर्मूल हो जाते हैं।

नारायणचूर्ण का लाभ

अजवायन, हाऊबेर, धनिया, सौंफ, कलौंजी या अजमोदा, पिप्पलीमूल, तुलसी, कचूर, वचा, चित्रक, कालीजीरी, सोंठ, कालीमरिच, पीपर, व्योष, त्रिफला, सज्जीखार, जवाखार, पुष्करमूल, कूठ, पाँच प्रकार के नमक और वायविडंग—इनके १-१ भाग, दन्ती ३ भाग, निशोत और इंद्रायण २-२ भाग और सातला ४ भाग।

उक्त रीति से इस नारायण चूर्ण को निर्मित कर लें। जिस प्रकार नारायण (विष्णु) के समक्ष कोई दैत्य अग्रसर नहीं हो पाते उसी प्रकार इसके सेवन से किसी रोग की बढ़ोत्तरी नहीं हो पाती।

इसे उदर रोगियों को मट्ठे के साथ, गुल्म में बड़बेरी (बड़े आकार वाले बेर के फल) के जल, आनाहवात में मद्य, वातज रोगों में प्रसन्ना नामक मदिरा, विड्विबंध में दधिजल, अर्श में अनार के जल, परिकर्त रोग में कांजी, अपच में उष्ण जल तथा भगंदर, पाण्डु, खाँसी, श्वास, गलग्रह, हृदयरोग, ग्रहणीरोग, कोढ़, अग्निमांद्य, ज्वर, श्वानविष, मूलविष एवं कृत्रिमविष में यथायोग्य अनुपान के साथ प्रयोग करने चाहिए।

दशमूलषट्पलिक घृत का लाभ

दशमूल के ५० पल रस में छोटी पीपर, पिप्पलीमूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार के १-१ पल कल्क को मिला लें। तदनन्तर ४ पल दही का पानी और २ प्रस्थ घी डालकर पकावें।

इस घृत के सेवन से औदरिक रोग, सूजन, वातविष्टंभ, गुल्म और अर्शरोग का निवारण होता है।

चित्रक घृत का प्रयोग व लाभ

जल ४ प्रस्थ, गोमूत्र २ प्रस्थ, चीते का कल्क १ प्रस्थ तथा घी १ प्रस्थ। इन्हें घी में पकाकर जवाखार के साथ पीने से औदरिक रोग नष्ट होता है।

वृद्धबिन्दु घृत का लाभ

मदार का दूध २ पल, सेंहुड़ का दूध ६ पल, (आवश्यकतानुसार जल), कबीला, श्यामा, अमलतास, सफेद किणही, नीली, निशोत, दन्ती, चोरहुली और चित्रक—इनके १-१ प्रस्थ कल्क को १ प्रस्थ घी डालकर पाक करें।

पकने के पश्चात् इस घृत की एक बूँद बद्धकोष्ठ वाले रोगी को पिलाने से सुगमतापूर्वक मल बाहर आ जाता है। इसकी जितनी बूँदें प्रयुक्त की जायेंगी उतनी ही बार मल का निःसरण भी तेजी से होगा।

इस घृत से गुल्म (गाँठ), कुष्ठ, उदावर्त, सूजन, भगन्दर तथा आठ प्रकार

के औदरिक रोग उसी प्रकार समूल नष्ट हो जाते हैं जैसे इन्द्र के वज्राघात से पेड़-पौधे। इसे बिन्दुघृत के नाम से जाना जाता है।

इस घृत के शरीर पर मालिश करने मात्र से ही कब्जियत दूर हो जाती है।

उदर कृत प्लीहा रोग का उपचार

अजवायन, चीता, जवाखार, छोटी पीपर, दन्ती और ममचा—इनका चूर्ण बना गरमजल, दधिजल या मदिरा के साथ पीने से प्लीहा रोग निर्मूल होता है।

पलाशक्षार के जल में भिंगोकर पकायी गयी छोटी पीपर के प्रयोग से प्लीहा की वेदना का शमन तथा क्षुधाग्नि का वर्धन होता है।

अथवा भाभीरंग, चीता, सेंधा नमक और यवनिर्मित सत्तू में वचा का चूर्ण दूध में उबालकर पीना गुल्म, प्लीहा और उदररोगनाशक होता है।

मदार के पत्ते को नमक के साथ अन्तर्धूमविधि से पकाकर दूध या जल के साथ पिप्पलियों का प्रयोग करें।

अथवा प्रयोगविधानानुसार दूध या दही के साथ जवाखार का पान करें। भिलावाँ, कालीजीरी और गुड़ के कल्क को मिलाकर मोदक बना लें। इस मोदक के प्रयोग द्वारा एक सप्ताह में ही प्लीहा रोग निर्मूल हो जाता है।

सहिजन के क्वाथ में सेंधा नमक, चित्रक और छोटी पीपर को मिलाकर पान करें। अथवा जवाखार के साथ पलाशक्षार का मिश्रण प्रयुक्त करें।

यकृत रोग में नमकयुक्त तिलों का, षट्पलिक घृत तथा प्लीहा रोग में कथित प्रयोगों का उपयोग करें।

अथवा यकृत् (लीवर) और प्लीहा रोग से त्राण पाने के लिए लहसुन, छोटी पीपर और हर्रें को खाकर एक चुल्लू गोमूत्र का पान करना लाभप्रद कहा गया है।

शरपुंखा (झुंझरू) के कल्क को मट्ठे के साथ पीने से यकृत् और प्लीहा रोग निश्चय ही निर्मूल हो जाता है।

रोहड़ा, हरड़ और मधु—इन्हें गोमूत्र में भिंगोकर जल के साथ पान करने से प्लीहा, प्रमेह,बवासीर, कृमि तथा गुल्म रोग नष्ट होते हैं।

चिकित्सक को चाहिए कि वह प्लीह रोगी को दही के साथ कूठ खिलाकर उसकी दाहिनी भुजा के मध्य भाग में शिरोच्छेदन करे तथा साथ-ही-साथ शिराव्रण के मार्ग से सम्पूर्ण दूषित रक्त के निष्कासन हो जाने पर रोगमुक्ति संभव होती है।

दन्ती घृत का लाभ

दन्ती के ४ प्रस्थ क्वाथ में दन्ती का कल्क मिला १ प्रस्थ घी में पका लें। इस घृतपान से **प्लीहा, कामला और पाण्डुरोग** विनष्ट होते हैं।

चित्रक घृत का लाभ

१०८ पल चित्रक क्वाथ में १ प्रस्थ घृत, १ प्रस्थ कांजी और ४ प्रस्थ दही का पानी डालकर पकावें। पकाने के समय उसमें पंचकोल, तालीशपत्र, जवाखार, लौंग, श्वेत जीरा, स्याहजीरा, हलदी, दारुहलदी और कालीमरिच—इनके १-१ पल कल्क को भी मिला दें।

उक्त घृतपाक के सेवन से प्लीहा, गुल्म, औदरिक रोग, अफरा, पाण्डु, अरोचकता, ज्वर, वस्तिशूल, हृत्शूल, पार्श्वशूल, कटिशूल, उदावर्त, पीनस (नकसीर), सूजन, मंदाग्नि तथा भस्मक रोग (एक रोगविशेष जिसमें भोजन के बाद भी भूख लगी रहती है।) का नियंत्रण होकर बल-वर्ण की वृद्धि होती है।

पिप्पली घृत का लाभ

घृत में छोटी पीपर के कल्क को डालकर घी से चौगुना दूध मिलाकर आग पर पकावें। यह घृत प्लीहा, अग्निमांद्य तथा हृदय के रोगों को नियंत्रित करता है।

रोहितक घृत का लाभ

२ प्रस्थ बड़बेर के कषाय में २५ पल रोहिड़ा की छाल को पकावें। पककर चौथाई भाग रह जाने पर ५ पल पंचकोल तथा ५ पल रोहिड़ा की छाल को चूर्णित कर मिला दे। तत्पश्चात् उसे १ प्रस्थ घी में पाचित करें।

इसके प्रयोग से प्लीहा की पीड़ा, गुल्म, उदर, श्वास, कृमि, पाण्डु और कामला रोग नष्ट होते हैं।

महारोहितक घृत का लाभ

रोहिड़ा की छाल १०० पल और ४ प्रस्थ बेर को कूट-पीसकर १ द्रोण जल में पाक करें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें १ प्रस्थ घी, ४ प्रस्थ बकरी का दूध तथा १-१ अक्ष की मात्रा में त्रिकटु, त्रिफला, हींग, जवाखार, पुष्करमूल, अजवायन, धनिया, विड् नमक, स्याहजीरा, काला नमक, अनार, देवदारु, पुंडरिया, इन्द्रायण, वायविडंग, हाऊबेर, चविका और वचा। उक्त वस्तुओं का कल्क बनाकर उस क्वाथ में मिलाकर पकावें।

भली प्रकार से घी के पक जाने पर किसी स्वच्छ पात्र में रख लें। अब मलशोधन के निमित्त रोगी को पहले त्रिफला क्वाथ को मांसरस, यूष या दूध के संग पीकर अपने कोष्ठ की शुद्धि कर लेनी चाहिए।

तदनंतर इस घृतपान से यकृत्, प्लीहा, औदरिक रोग, यकृत्प्लीहा-संबंधी पीड़ा, हृत्शूल, कुक्षिशूल, पार्श्वशूल, अरुचि, मलावरोधकशूल, कामला, पाण्डु, सभी प्रकार के अतिसार (डायरिया), आलस्य तथा ज्वरादि रोग निर्मूल होते हैं। यह महारोहितक नामक घी प्लीहा रोग की सर्वश्रेष्ठ औषधि कही गयी है।

शोथोदर रोग का उपचार

हर्रें, सोंठ, देवदारु, पुंडरिया और गुरुच। इनका कषाय बनाकर गोमूत्र और गूगुल के साथ पीने से पेट की सूजन दूर होती है।

अथवा दशमूल के क्वाथ में अण्डीतैल, गोमूत्र में त्रिफला क्वाथ मिलाकर पान करना वातोदर, शोथ और शूल का विनाशक होता है।

पुनर्नवा, नीम, परवल, सोंठ, कटुकी, गुरुच, दारुहलदी और हर्रें। इन सबका कषाय बनाकर पीने से खाँसी, पीड़ायुक्त शोथोदर तथा श्वासयुक्त पाण्डुरोग का विनष्टीकरण होता है।

गदहपूरना, दारुहलदी, हर्रें और गिलोय। इनके कषाय का पान गोमूत्र या महिषाक्ष प्रजाति के गूगुल के साथ करने से त्वक्‌दोष, शोथोदर, पाण्डु, मोटापा, प्रसेकार्द्र, कफ आदि रोगों का उन्मूलन होता है।

अथवा शोथोदर रोग में भैंस के दूध में गोमूत्र या त्रिफला चूर्ण के साथ गोदुग्ध का पान करें या क्षीरान्नभोजी रहकर केवल गोमूत्र का पान करें।

पुरातन मानकंद का कल्क १ भाग, चावल २ भाग, कच्चा यव १ भाग तथा दूध ८ भाग। इन सबको पकाकर खीर बना लें।

इसके प्रयोग से **वातोदर**, **सूजन**, **ग्रहणी** तथा **पाण्डुरोग** विनष्ट होते हैं। इस प्रयोग को चिकित्सकों ने सर्वोत्तम कहा है।

पुनर्नवा, देवदारु, गुरुच, पाठा, बेल, गोखरू, कटेरी, कंटकारी, हलदी, दारुहलदी, छोटी पीपर, चीता और अड़ूसा।

इनके बराबर भागों का चूर्ण बनाकर गोमूत्र के साथ पीने से प्रत्येक प्रकार की शारीरिक सूजन, अष्ट प्रकार के औदरिक रोग तथा उग्ररूप वाले व्रण विनष्ट होते हैं।

पूर्वोक्त रोगियों को अधिक मात्रा में जल का पान, दिन में शयन, भारी तथा जलनकारी वस्तुओं का भोजन, व्यायाम तथा वाहनारोहण करना अपथ्यरूप होता है। अतः इनका परित्याग कर देना आवश्यक है।

शोथ रोग का उपचार

शुष्क मांसभक्षण, विषम भोजन, उपवास, अत्यन्त स्त्रीप्रसंग आदि के फलस्वरूप दूषित वायु, पित्त, रक्त और कफ को प्रदूषित करके बाह्य नाड़ियों में समायोजित कर देता है जिसके कारण गतिरोध होने से वह त्वचा तथा मांसस्थ उन्नत और सघन रूप में सूजन की उत्पत्ति करता है।

इसी हेतु शोथ को सन्निपातज भी कहा जाता है; किन्तु विशेष कारणों से

उत्पन्न होने वाले शोथ नव प्रकार के होते हैं, जैसे—वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, सन्निपातज, विषज, और अभिघातज।

सोंठ, पुनर्नवा, रेंड़ की जड़ और लघुपंचमूल—इनके पकाये हुए जल को वातज शोथ में पान करना लाभकारी होता है।

पित्तज शोथ में दुग्धाहार ग्रहण करते हुए निशोत, गुरुच और त्रिफला कषाय या अक्ष परिमाण में त्रिफलाचूर्ण, कफज शोथ में पुनर्नवा, सोंठ, निशोत, गुरुच, अमलतास, हर्रें, देवदारु के कल्क अथवा गूगुल के साथ गोमूत्र का पान करना लाभप्रद होता है।

स्याहजीरा, पाठा, मोथा, पंचकोल, कटेरी और हलदी। इनके चूर्ण का सेवन गुनगुना जल के साथ करने से दीर्घकालिक त्रिदोषज शोथ का उन्मूलन होता है।

इस रोग में चरक में वर्णित पिप्पलीविरजक नामक योग में प्रयुक्त होने वाली हर्रें के स्थान में गजपीपर का प्रयोग करना उचित है।

अदरक के रस में पुराना गुड़ मिलाकर बकरी के दूध के साथ पीने से सभी प्रकार के शोथ दूर होते हैं।

पुनर्नवा, देवदारु और सोंठ—इनका क्वाथ अथवा केवल गोमूत्र या दशमूल के क्वाथ में गूगुल मिलाकर पान करने से शोथ का विनष्टीकरण होता है।

बेलपत्र के रस में कालीमरिच का चूर्ण मिलाकर पीना त्रिदोषज शोथ, बवासीर, पाण्डु और कामला रोग का नाशक होता है।

इसके अतिरिक्त गुड़, छोटी पीपर और सोंठचूर्ण के सेवन से शोथ, आमारोचक शूलनाशक तथा बस्तिस्थान का शोथ नष्ट होता है।

शोथ रोग में गोमूत्र के साथ गूगुल, दूध के साथ छोटी पीपर, गुड़ के समान भाग में हरड़ या गुड़ के साथ सोंठ का प्रयोग करना भी लाभदायक होता है।

गुड़-अदरक, गुड़-सोंठ, गुड़-हरड़, गुड़-पीपर या गुड़-त्रिफला—इनमें से किसी एक का पन्द्रह दिन या एक मास प्रयोग करने पर शोथ, प्रतिश्याय (सर्दी-जुकाम), मलसंबंधी रोग, मुखरोग, साँस, खाँसी, अरुचि, पीनस, पुराना बुखार, अर्श, ग्रहणी तथा वातज-कफजनित सम्पूर्ण रोग विनष्ट हो जाते हैं।

पुष्करमूल के कल्क को दूध में उबालकर पीने से प्लीहा और सर्वांगशोथ का नाश होता है। देवदारु, पुनर्नवा और सोंठ—इनका पाचित जल या चित्रक, त्रिकटु, निशोत और देवदारु।

इन्हें दूध में पकाकर पीने से शोथ रोग का निवारण होता है।

अड़ूसा, गुरुच और कटेरी—इनके काढ़ा में मधु डालकर पीने से कुष्ठ, सूजन, खाँसी, साँस, ज्वर तथा वमन आदि रोग नष्ट होते हैं।

मदार और पुनर्नवानिर्मित क्वाथ से शोथ स्थान को सेंकने से भी लाभ होता है।

अथवा मुलेठी, दूध, काला तिल और नवनीत—इनके साथ तथा शालपत्र के वृन्तों से भिलावाँ कल्क का लेप भी शोथघ्न होता है।

विषोत्पन्न सूजन में पूर्वकथित विषाधिकार प्रकरण में दी गयी क्रियाओं का अवलंबन करना उचित होता है।

पुनर्नवा, चीता, देवदारु, पंचोषण (सोंठ, कालीमरिच, पीपर, पिपरामूल और चीता), सरल वृक्ष का गोंद और हर्रे—इनके कल्क को दशमूल के काढ़ा में घी डालकर पका लें। इस घृत को भी शोथनिवारक कहा गया है।

अथवा पंचकोल और कुलथी के काढ़े में पुनर्नवा-कल्क मिला घृत के साथ पकावें। यह घृत भी शोथघ्न होता है।

दशमूल के काढ़ा में सोंठ का कल्क मिलाकर घी के साथ पाक कर लें। यह घृत शोथ तथा आमदोषज ग्रहणी रोग को भी दूर करने में सक्षम होता है।

चित्रकादि घृत का प्रयोग

चीता, धनिया, पाठा, अजवायन, अजमोदा, त्रिकटु, अम्लबेंत,बेल का गूदा, अनार, छोटी पीपर और चव्य। इन सबको एक-एक अक्ष की मात्रा में लेकर पीस डालें और ४ प्रस्थ जल में पकावें।

चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें १ प्रस्थ घी मिलाकर पुनः पाक करें। इस घृत के सेवन से क्षुधाग्निवर्धन होकर बवासीर, गुल्म और शोथ रोग का निर्मूलन होता है।

चित्रक कल्क से लेपित मृत्तिका कलश में दधिमिश्रित दूध को डालकर भलीभाँति मथित तक्र में चीता की जड़ का कल्क मिलाकर बकरी के घी में पका लें। इस घृत के प्रयोग से सूजन, अर्श, अतिसार, वातगुल्म और प्रमेह का निर्मूलन होकर क्षुधाग्निवर्धन भी होता है।

मानक घृत का लाभ

मानकंद के काढ़ा में मानकंद का कल्क मिलाकर १ प्रस्थ घी में पकावें। पकने पर इस घृत से एक दोषज, द्विदोषज और त्रिदोषज शोथ का विनाश होता है।

शैलेयादि तैल का प्रयोग

भूरिछड़ीला, कूठ, अगरु, देवदारु, रेणुका, दालचीनी, इलायची, कमलगट्टा, सुगंधवाला, पलाश के बीज, प्रियंगु पुष्प, थुनेर, नागकेशर, बालछड़, तालीशपत्र, केवटीमोथा, तेजपात और धनिया, गंधाबिरोजा, सुंगंध तृण, छोटी पीपर और नखी नामक द्रव्य।

इनके कल्क को तैल में पकावें। इस तैल के मालिश करने तथा उक्त द्रव्यों को पीसकर लेपन करने से वातजनित शोथ दूर होते हैं।

शुष्कमूलादि तैल का लाभ

सूखी मूली, पुनर्नवा, देवदारु, मोथा और सोंठ। इनके कल्क को तैल में पकाकर शिलारस के साथ अंगों पर मालिश करने से शोथ का नाश हो जाता है।

कंसहरीतकी का लाभ

चार प्रस्थ (कंस) दशमूल के कषाय में १०० नग हरड़ और १०० पल गुड़ मिलाकर पकावें। पककर लेह की भाँति गाढ़ा और ठण्ढा होने पर उसमें २-२ तोले की मात्रा में त्रिकटु, त्रिसुगंध, जवाखार तथा आधा प्रस्थ मधु भी डाल दें।

इससे श्वास, **ज्वर**, **अरुचि**, **प्रमेह**, **गुल्म**, **प्लीहा**, **त्रिदोष**, **औदरिक रोग**, **पाण्डुरोग**, **दुर्बलता**, **आमवात**, **रक्तपित्त**, **अम्लपित्त**, **वर्णविरूपता**, **मूत्रदोष**, **वातदोष** तथा **वीर्यदोष** का निवारण होता है।

पुनर्नवालेह का प्रयोग

पुनर्नवा, गुरुच, देवदारु और दशमूल। इनके ४ प्रस्थ काढ़ा में १ प्रस्थ अदरक के रस को डालकर १०० पल गूगुल को पका लें। पकने के पश्चात् ठण्ढा होने पर त्रिकटु, तेजपात, इलायची, दालचीनी—इनके २-२ तोले चूर्ण तथा ३२ तोले शहद का मिश्रण कर चाटें।

इस पुनर्नवा लेह से सूजन, पीड़ा, खाँसी, साँस, अरुचि आदि विनष्ट होते तथा जठराग्नि का वर्धन होता है।

शोथ रोगी को पीसे हुए अन्न, अम्ल और नमकीन खाद्य, मदिरा, मृत्तिका, दिन में शयन, जांगलप्रदेशीय मृगमांस के अतिरिक्त भारी पदार्थ के सेवन से बचने चाहिए।

वृद्धिब्रध्न रोग का उपचार

दीर्घकालिक वातवृद्धि में गूगुल या अंडीतैल को दूध में मिलाकर पान करने से रोगमुक्ति होती है।

अथवा एक मास तक अंडीतैल में दूध डालकर पीना चाहिए।

इसके अतिरिक्त नारायण तैल का प्रयोग पान करने, अभ्यंग करने या बस्तिकर्म में प्रयुक्त किये जाने पर भी आशातीत सफलता मिलती है।

चन्दन, मुलेठी कमलगट्टा, खस और नीलकमल—इनको दूध में पीसकर शरीर पर लेप लगाने से वातज जलन दूर होकर शोथरोग निर्मूल होते हैं।

पित्तवृद्धि में बरगद, गूलर, पीपर, पाखर और बेंत—इन पाँच वृक्षों की छाल का कल्क घी में मिलाकर लेपन करना उपयोगी होता है।

रक्तवृद्धि में संयंत्र से रक्त का निष्कासन कराने से लाभ होता है। कफवृद्धि में उष्ण पदार्थों (सोंठ आदि वस्तुएँ) को गोमूत्र में पेषित कर प्रलेपित करें।

अथवा धूपसरल के क्वाथ का पान गोमूत्र के साथ करना लाभप्रद होता है।

मेदोत्पन्न वृद्धिरोग में पहले स्वेदन देकर सुरसादिगण के द्रव्यों से या शिर को विरेचित करने वाले द्रव्यों को गोमूत्र में हलका गरम करके प्रलेपित करें।

मूत्रोत्पन्न वृद्धिरोग में स्निग्ध पदार्थों द्वारा स्वेदन करके वस्त्राच्छादित कर दें और सीवन के निचले भाग को शस्त्र या प्राणिमुख से वेधित कर दें।

इसके लिए मुख्यतया बद्ध व्रण का आरोपण करना चाहिए। आँतों के द्वारा उत्पन्न वृद्धिरोग यदि अंडकोश में प्रविष्ट न हुआ हो तो उसके लिए वातवृद्धि के समान उपचार करना आवश्यक है।

रास्ना, मुलेठी, गुरुच, एरण्डमूल, खिरेंटी और गोखरू—इनके क्वाथ में अंडीतैल मिलाकर पान करने से अंत्रवृद्धि (आँतों का बढ़ना) रोग का विनष्टीकरण होता है।

अथवा अंडी के तैल में खिरेंटी को पकाकर पीने से अफरा तथा पीड़ायुक्त आँतवृद्धि का निवारण होता है।

हर्रें को गोमूत्र में पकाकर प्रतिदिन प्रात:काल तैल और नमक के साथ सेवन करने पर कफवातजनित अंडरोग दूर होते हैं।

गोमूत्र में हरड़ को पकाकर उसे अंडीतैल तथा सेंधानमक के साथ पुन: पकाकर खायें और उसके बाद गरम जल का पान करें। इसके द्वारा वात-कफोत्पन्न वृद्धि नष्ट होती है।

नित्यप्रति प्रात:काल त्रिफला क्वाथ को गोमूत्र के साथ पीने से यौवनावस्था में कफ-वातोत्पन्न अंडकोश की सूजन नहीं रह जाती।

धूपसरल, अगरु, कूठ, देवदारु और सोंठ—इन्हें गोमूत्र और कांजी में पीसकर पीने से कफ-वातजनित शोथ नष्ट होते हैं।

हर्रें के कल्क को छोटी पीपर और सेंधानमक के साथ अंडीतैल में मिलाकर पीने से वृद्धिरोग दूर हो जाते हैं।

गोधृत में सेंधानमक को मिलाकर चुक्रभाण्ड में एक सप्ताह तक स्थापित कर उसे सूर्यकिरणों के ताप में पकावें।

इसके सेवन से अंडवृद्धि दूर होती है। अथवा वचा और सरसों का कल्क बनाकर शोथ स्थान पर लेप लगाने से सूजन नहीं रह जाती।

दोष की वृद्धि होने से बस्ति (पेड़ू) के नीचे जाँघ और जननेंद्रिय की भीतरी संधि में गाँठ की तरह का शोथ उत्पन्न कर देता है।

इसी को ब्रघ्नरोग कहा जाता है। ऐसी अवस्था अत्यन्त गरिष्ठ, अभिष्यंदी तथा अपरिपक्व पदार्थों के सेवन करने से आती है।

इसकी उत्पत्ति होने पर ज्वर, शूल और शारीरिक जलन रहती है।

ऐसा मानना है कि जिस किसी व्यक्ति में पहले उपदंश रोग (सिफिलिस) होकर दब गया हो उसी में इस रोग की उत्पत्ति देखी जाती है।

बेल, कैथ, सोनापाठा, चीता, कटेरी, कंटकारी, श्यामा, पूतिकरंज और सहिजन की जड़ को लेकर उसमें सोंठ, भिलावाँ, पीपर, गठिवन, चव्य, पंचलवण, जवाखार और अजमोदा मिला चूर्ण बना लें।

इस चूर्ण को गरम जल या मट्ठे के साथ पीने से ब्रध्नरोग समाप्त हो जाता है।

गेहूँ और कुन्दरू के कल्क को भेंड़ी के दूध में किंचित् गरम लेप लगाने से ब्रध्नरोग में लाभकारी होता है।

बृहत्सैन्धवादि तैल का प्रयोग

सेंधानमक, मदनफल (मैनफल), कूठ, सोया, समुद्रफल, वचा, सुगंधवाला, मुलेठी, भारंगी, देवदारु, सोंठ, कायफल, पुष्करमूल, मेदा, चव्य, चीता, कचूर, वायविडंग, अतीस, अनन्तमूल, रेणुका, नील, सरिवन, बेल का गूदा, अजमोदा, पीपर, दन्ती और रास्ना।

इनके कल्क को अंडी या तिलतैल में पका लें। इस तैल की मालिश करने से कफ-वात, ब्रध्न, उदावर्त, गुल्म, अर्श, प्लीहा, प्रमेह तथा आढ्यवात रोग समूल नष्ट हो जाते हैं।

गलगंड, गण्डमाला, ग्रंथि अर्बुद और अपची आदि रोगों का उपचार

किसी व्यक्ति के गले में लघु या बृहदाकार शोथ जब स्थिरभाव से अंडकोश के समान नीचे की ओर लटकता रहता है तब उसे गलगंड रोग के नाम से जाना जाता है।

इसके शमनार्थ रोगी को यव, मूँग, परवल, कटु और अम्ल पदार्थों का भोजन, वमन तथा रक्तमोक्षण के प्रयोग करने चाहिए।

समुद्रफल, सहिजन के बीज या दशमूल के कल्क को वातज रोग में थोड़ा गुनगुना प्रलेप लगाये।

अथवा रेंड़ और पलाश की जड़ को चावल की धोवन में पीसकर गलगंड में प्रयुक्त करें। सरसों, सहिजन के बीज, सन के बीज, तीसी, यव तथा मूली के बीजों

को खट्टे मट्ठे में पीसकर लेपित करने से गलगंड, गंडमाला, तथा गलग्रंथिरोग अल्पकाल में ही नष्ट हो जाते हैं।

पुराने तरबूज के रस में विड् नमक और सेंधा नमक मिलाकर नाक से सूँघने पर नवीन गलगंड रोग निश्चय ही दूर हो जाता है।

लौहकिट्ट को भैंस के मूत्र में कुछ समय तक भिंगोकर अंतर्धूम की विधि से भस्म बनाकर उसे शहद के साथ चाटें तो गलगंड का निवारण होता है।

जिह्वा के पार्श्व के नीचे बारह नाड़ियाँ अवस्थित होती हैं जिनमें दो नाड़ियाँ स्थूल होती हैं।

इन दोनों को सँड़सी के द्वारा धीरे-धीरे दबाकर कुशपत्र नामक संयंत्र से छेदित कर रक्त को बाहर निकाल दें।

रक्तमोक्षण के अनन्तर घाव पर गुड़ और अदरक को पीसकर लगा दें।

ऐसी स्थिति में कफनिवारक पदार्थों का भोजन और कुलथी का यूष सेवन करना उत्तम है।

दोनों कानों के बाहरी संधिस्थल के बीच ऊपर की तीन नाड़ियों को गलगंड रोग में छिद्रित कर देना लाभप्रद होता है।

भाभीरंग, जवाखार, सेंधानमक, रास्ना, चित्रक, त्रिकटु और देवदारु—इनके कल्क को कड़ुई तुम्बी के रस में मिलाकर कड़ुए तैल में पकावें।

इस तैल का नस्य लेने से दीर्घकालीन गलगंड रोग भी समाप्त हो जाता है।

गोरखमुंडी के पत्तों का निचोड़ा हुआ रस आधा-आधा पल पीने से अपची, गंडमाला तथा कामला रोग का निर्मूलन होता है।

वनकपास की जड़ को चावल के साथ पीसकर उसकी पूरी बनाकर खाने से भीषण अपची भी दूर हो जाती है।

विशेष—जब गंडमाला पककर फूट न रहा हो, उसके अधपका रहने पर ही उसमें से पीब निकल रहा हो, कोई-कोई नष्ट होकर नये निकल भी रहे हों तो इसे अपची नाम से संबोधित किया जाता है।

सहिजन की जड़ और देवदारु को कांजी के साथ पीसकर गरम लेप लगाने से उग्रतम अपची भी नष्ट हो जाती है। तोरई या तुम्बी के रस में छोटी पीपर मिलाकर नस्य लें।

अथवा अरिष्टादि तैल या वचा और छोटी पीपर के चूर्ण में मधु मिलाकर नस्य लेने से भी अपची समाप्त हो जाती है।

वातादि दोष के प्रकोप से मांस, रक्त, मेद तथा नाड़ियाँ भी प्रदूषित हो जाती है जिनके फलस्वरूप बड़ी-बड़ी गाँठों के रूप में शरीर पर सूजन उत्पन्न हो जाती है।

ऐसी अवस्था को ग्रंथिरोग कहा जाता है। अपक्व ग्रंथिरोग में शोथ की चिकित्सा विधि का प्रयोग करना चाहिए। पक जाने पर उसे खरोंचकर उसमें से मवाद को निकाल दें।

तदनंतर व्रणरोगोक्त औषध उपचार से व्रण का रोपण करे। ग्रंथिरोग में कटेरी, कटुकी, गुरुच, भारंगी, सोनापाठा, बेल के गूदा का रस, सहिजन की छाल और सोंठ—इनको गोमूत्र में पीसकर लेप लगाने से रोगमुक्ति संभव होती है।

पित्तज, ग्रंथिरोग में जोंक के द्वारा रक्तनिष्कासन, क्षारजल से सिंचन तथा काकोल्यादिगण के पदार्थों से निर्मित क्वाथ में शक्कर मिलाकर पान करना लाभकारी होता है।

कफज ग्रंथि में महुआ, जामुन, अर्जुन और बेंत। इनकी छाल को पीसकर लेप लगायें।

उसमें से पीब का बहाव हो जाने के पश्चात् दन्ती की जड़, चित्रक की जड़, सेहुड़ की जड़, मदार का दूध,पुराना गुड़, भिलाँवे की गुठली और हीराकसीस—इनको लेपित करने से गाँठ ही नहीं बल्कि पत्थर का भी भेदन हो जाता है।

मर्मस्थलों में उत्पन्न न होने वाली अपक्व गाँठों को खुरच कर अग्नि से जला दें या उनका क्षार द्वारा प्रतिसारण करें।

शास्त्रोक्त विधि से सुपरिचित चिकित्सक को अर्बुद रोग (ग्रंथि के समान ही शरीर में मांस की गाँठें उभरना) में भी मुख्यत: ग्रंथिरोगोक्त विधि से चिकित्सा करनी चाहिए।

वातज अर्बुद में चिकने मांस का वेशन बना कर लेपन, स्वेदन, सिंगी के द्वारा नाभि-प्रदेश से रक्त निष्कासन आदि कर्म करने चाहिए।

पित्तज अर्बुद में मृदु स्वेद, मृदु प्रलेप, पित्तशामक पथ्य, विरेचनादि के कर्म प्रशस्त होते हैं।

गूलर और गोजिया के पत्तों में मधु मिलाकर लेप लगाने से अर्बुद नष्ट होता है।

अथवा राल, प्रियंगुपुष्प, जलमहुआ, लोध, रसौत और मुलेठी। इनको बारीक पीसकर लेपित कर रुग्ण स्थान में पोई का रस लगाकर उसके पत्तों को लपेट देने से भी अर्बुद रोग जाता रहता है।

शंख का चूरा और सूखी मूली का भस्म बनाकर लेप लगाना कफज अर्बुद का विनाशक होता है।

इसे प्राय: गंधादि में प्रयुक्त करने से विशेष लाभ मिलता है।

लोबिया, खली, कुलथी और मांस। इन्हें दही के साथ खूब घोंटकर लेप लगायें। इसके लपेनकाल में व्रण को कृमियों तथा मक्खियों के संक्रमण से बचायें।

घाव में कुछ दोष की वर्तमानता रहने और कृमिपातन की दशा में उसे शस्त्र द्वारा खुरचकर उसकी जड़ में काँच, ताँबे या लोहे की शलाका से अग्निदग्ध कर दें।

इस प्रकार रोगी की शक्ति के अनुसार बारम्बार क्षारप्रयोग, अग्निप्रयोग तथा शस्त्रप्रयोग करते रहना आवश्यक है।

स्वयं पक्वित होने वाले अर्बुद विनाश के लिए व्रणपाकोक्त की विधि अपनानी चाहिए।

किसी-किसी का ऐसा अभिमत है कि मर्मस्थलोत्पन्न अर्बुद के शमनार्थ प्रतिदिन कांजी और मट्ठे के साथ पीसी हुई पोई शाक के कल्क में नमक डालकर लेप लगायें।

थूहर (सेंहुँड़) और गंडारिका अथवा नमक और सीसे के द्वारा विधिवत् स्वेदन कर्म किये जाने पर भी अर्बुद का निर्मूलन होता है।

हलदी, लोध, मुलेठी, गृहधूम और मैनसिल। इनके चूर्ण में अधिकाधिक मात्रा में मधु मिलाकर लेप लगाने से मेदोत्पन्न अर्बुद का उन्मूलन होता हैं।

यही प्रयोग शर्करार्बुद में भी उपयोगी माना जाता है। सरसों, नीम के पत्ते तथा भिलावाँ फल को अन्तर्धूम की रीति से भस्म करके बकरी के मूत्र में मिलाकर लेपित करने से अपची के साथ-ही-साथ अर्बुद रोग भी निर्मूल हो जाता है।

एड़ी से एक बालिश्त (१२ अंगुल) स्थान छोड़कर इन्द्रबस्ति के पशवाड़ों को विदीर्ण करने के पश्चात् वहाँ से मछली के अंडों के समान जालरूपी दोषों को निकालकर अग्निकर्म करना उचित है।

अथवा मणिबंध (कलाई) के ऊपर एक अंगुल का स्थान छोड़कर पूर्वकथित प्रक्रियाओं के द्वारा सभी प्रकार की अपची का निवारण होता है।

शाखोटक तैल की मालिश करने अथवा नीम, बाँस, सम्भालू—इनके मिश्रण से पकाये गये तैल की मालिश करने से भयंकर गंडमाला दूर होती हैं।

अथवा छुदुन्दरी के साथ पकाये हुए तैल की मालिश से भी गंडमाला में तत्क्षण ही लाभ होता है।

चंदन, हरड़, वचा, लाजा और कटुकी—इनके क्वाथ द्वारा पक्वित तैल मालिश से अपची का समूल विनाश हो जाता है।

श्लीपद रोग का उपचार

श्लीपद रोग (फीलपाँव) केवल पैरों में ही न होकर हाथ, नाक, ओष्ठ और कानों में भी उत्पन्न होता है। यह रोग आनूपदेशों में मुख्यतया देखने में आता है।

इसमें चंदन आदि पदार्थों का लेप, स्वेदन कर्म, रक्तनिष्कासन तथा कफनिवारक रूक्ष द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करने से लाभ होता है।

धतूरा, रेंड़ की जड़, निर्गुण्डी (सम्भालू), पुनर्नवा, सहिजन और सरसों। इन्हें पीसकर लेप लगाने से दीर्घकालीन श्लीपद भी निर्मूल हो जाता हैं।

श्वेत मदार की जड़ और दालचीनी को कांजी में पीसकर लेपित करने से बद्धमूल तथा दृढ़ीभूत श्लीपद का विनाश होता है।

चित्रक और देवदारु अथवा सरसों और सहिजन के कल्क को गोमूत्र में पीसकर लेप लगाने से उत्तम फल मिलता है।

वातजनित श्लीपद में स्नेहन, स्वेदन और लेपन कर्म के पश्चात् एड़ी के ऊपर चार अंगुल स्थान के अन्तर पर शिराभेदन से लाभ मिलता है।

पित्तजनित श्लीपद में एड़ी के नीचे शिराभेदन करके पित्तज अर्बुद तथा विसर्प रोग की भाँति पित्तविनाशक प्रक्रिया का अवलम्बन करना उचित है।

मंजीठ, मुलेठी, रास्ना, बालछड़— इनको कांजी में पीसकर लेप लगाने से पित्तज श्लीपद का निर्मूलन होता है।

कफज श्लीपद में पैर के अंगूठे की नाड़ी का बेधन करके मधुमिश्रित तीक्ष्ण क्वाथों का पान करना लाभदायक होता है।

हरड़ के कल्क को गोमूत्र या इसी के समकक्ष किसी अन्य वस्तु के साथ पान करें।

अथवा इसी प्रकार गुरुच, सोंठ और देवदारु का उपयोग करें।

जवाखार के रस के साथ पूतिकरंज को सरसों के तेल के साथ पान करने से श्लीपद का विनष्टीकरण होता है।

सरसों के तैल में पलाशमूल के रस को तैल के बराबर मिलाकर पान करना चाहिए। अथवा, हरड़, देवदारु, सोंठ और गूगुल। इन्हें गोमूत्र के साथ पीने से **श्लीपद रोग** नष्ट होता है।

विधायरा के चूर्ण को कांजी के साथ तथा हलदी और गुड़ को गोमूत्र के साथ प्रयोग करने से अच्छा लाभ मिलता है।

गंधर्व तैल में भुनी हुई हर्रें को केवटी मोथा या गोमूत्र के साथ पीने से एक सप्ताह में ही श्लीपद का उन्मूलन हो जाता है।

कांजी में तैल मिलाकर पीना **कफजवात, वातजदोष, प्रमेह, श्लीपद** रोगनाशक तथा दीपनकारक साबित होता है।

समवृद्धदारक चूर्ण का लाभ

त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, दारुहलदी, वरुना, गोखरू, गोरखमुंडी। इन सबका समान भाग में चूर्ण बनाकर इस चूर्ण के बराबर उसमें विधायरा का चूर्ण मिश्रित कर कांजी के साथ अक्ष परिमाण की मात्रा में पान करें।

रोग की जीर्णावस्था में अभीष्ट भोजन करें या पथ्य का अनुपालन करें। इस चूर्ण के द्वारा श्लीपद, मोटापा, आमवात, गुल्म, कुष्ठ, अरोचकता तथा वात-कफजनित समस्त रोग निर्मूल होते हैं।

पिप्पल्यादि चूर्ण का प्रयोग

छोटी पीपर, त्रिफला, देवदारु, सोंठ और पुनर्नवा—इन्हें २-२ पल और विधायरा १४ पल लेकर चूर्ण बना लें।

इस चूर्ण को कांजी के साथ एक कर्ष की मात्रा में सेवन करें। रोग की जीर्णावस्था में पथ्यापथ्य का विचार आवश्यक नहीं है।

किन्तु कुछ लोगों का अभिमत है कि चूर्ण सेवनोपरान्त भरपेट भोजन करें अथवा पथ्य के अनुसार आचरण करें।

इस चूर्ण के प्रयोग से श्लीपद, वातरोग, प्लीहा तथा भस्मक रोग (भोजनोपरान्त पुनः भोजन करने की इच्छा) नष्ट होकर क्षुधाग्नि का वर्धन होता है।

कृष्णादि मोदक का लाभ

छोटी पीपर आधा कर्ष, चित्रक आधा पल, दन्ती १ पल, हरड़ २० नग और गुड़ २ पल। इनका मोदक बनाकर मधु के साथ सेवन करने पर श्लीपद रोग से मुक्ति मिलती है।

शौरेश्वर घृत का प्रयोग

दशमूल के एक प्रस्थ रस में कांजी १ प्रस्थ, दही का पानी १ प्रस्थ मिला लें। तदनंतर उसमें १-१ कर्ष तुलसी, गठिवन, त्रिकटु, वायविडंग, चित्रक, वचा, कचूर, पाठा, इलायची, हाऊबेर, प्रियंगु का फूल, वचा, देवदारु, पंचलवण और जवाखार—इनका कल्क बनाकर १ प्रस्थ घी डालकर पकावें।

इस घृत के तीन दिन तक सेवन करने के फलस्वरूप भयंकर श्लीपद, अंडकोशवृद्धि, अर्श, ग्रहणी, गलगंड, अर्बुद, अपची, कृमि और कुष्ठादि रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। इसे शौरेश्वर घृत कहा जाता है।

विडङ्गादि तैल का प्रयोग

भाभीरंग, कालीमरिच, मदार, सोंठ, चीता, देवदारु, इलायची, स्याहजीरा,

पंचलवण—इनके कल्क को तैल में पाचित कर पान करने से श्लीपद का निर्मूलन होता है।

विद्रधि रोग का उपचार

वातादि दोष उत्पन्न होने से त्वचा, मांस तथा रक्त आदि धातुएँ भी दूषित हो जाती हैं जिसके परिणामस्वरूप वे पीड़ायुक्त गोलाकार या लंबोतरा शोथ उत्पन्न कर देते हैं।

इसी को शास्त्रों में विद्रधि रोग कहा जाता है। यह बाहरी और भीतरी दो प्रकार का होता है।

बाह्य विद्रधि की उत्पत्ति शरीर के बाहरी भागों में तथा अन्तर्विद्रधि शरीर के भीतरी अंगों—जैसे गुदा, बस्ति आदि स्थानों में होते हैं।

सभी प्रकार के विद्रधि रोगों में जोंक के द्वारा दूषित रक्त का निष्कासन, हलका रेचक पदार्थों का सेवन और हलका भोजन करना उत्तम होता है।

पित्तज विद्रधि के अतिरिक्त अन्य प्रकार के विद्रधि में स्वेदन कर्म लाभकारी होता है।

वातज विद्रधि में वातनाशक औषधि मूल का कल्क बना चरबी, घी या तैल के साथ गुनगुना और गाढ़ा लेप लगाना चाहिए।

सहिजन की जड़ को पीसकर लेपित करना तथा स्वेद देना अथवा गेहूँ, यव और मूँग को काले धतूरे के साथ पीसकर लेप लगाने से शीघ्र ही अपरिपक्व विद्रधि रोग नष्ट होता है।

पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, दशमूल और हरड़—इनके क्वाथ में गूगुल या अंडी के तैल को मिलाकर पान करने से विद्रधि निर्मूल होता है।

पित्तज विद्रधि में शक्कर, लाजा, मुलेठी और सारिवा—इन्हें दूध में पीसकर या खस और चंदन को दूध में पीसकर लेप लगाना लाभप्रद है।

त्रिफला के क्वाथ में निशोत का कल्क बनाकर पीना भी हितकर कहा गया है। कफज विद्रधि में ईंट, बालू, लोहा, गोबर का चूरा—गोमूत्र में पीसकर स्वेद देने से लाभ मिलता है।

स्नेह और नमकयुक्त दशमूल के काढ़ा को गुनगुना बनाकर पीड़ायुक्त शोथ और व्रण में परिषेक करना उचित है।

पित्तज विद्रधि में कथित प्रयोग ही रक्तज तथा आगन्तुक विद्रधि में भी करने चाहिए।

सहिजन के काढ़ा में हींग और सेंधानमक मिलाकर प्रात:काल प्रतिदिन पीने से विद्रधि रोग का निवारण होता है।

सहिजन की जड़ को पानी से धोकर दरदरा कूटकर उसका रस निकाल लें। उस रस को मधु के साथ पीने पर भीतरी भागों के विद्रधि में लाभदायक होता है।

श्वेत पुनर्नवा की जड़ और वरुना की छाल का काढ़ा पीना अपक्व विद्रधिविनाशक होता है। पाठा की जड़ को मधु मिलाकर चावल की धोवन के साथ पीने से प्रचण्ड अन्तर्विद्रधि का उन्मूलन होता है।

ये सब क्रियाएँ अपक्व विद्रधि में उपयोगी हैं, किन्तु परिपक्व विद्रधि में व्रणशोथ की प्रक्रिया अपनानी चाहिए। प्रियंगु, धव, लोध, कायफल और तिरिच्छा की छाल का कल्क तैल में पका लें। इस तैल के प्रयोग से शीघ्र ही घाव भर जाते हैं।

व्रणशोथ रोग का उपचार

शरीर के किसी स्थान में सूजन होंकर घाव के रूप में परिवर्तित हो जाना ही व्रणशोथ कहलाता है।

इसके सात भेद कहे गये हैं। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, सन्निपातज, रक्तज तथा आगन्तुक।

सर्वप्रथम इस रोग में विग्लापन, अवसेचन, प्रलेप, व्रणोच्छेदन, शोधन, रोपण तथा वैकृतनाशन कर्म करने चाहिए।

बिजौरा नीबू, अरणी, देवदारु, सोंठ, काकादनी, और रास्ना। इनका लेप वातज व्रणशोथ में लाभकारी होता है।

दूब, नील की जड़, मुलेठी, चंदन तथा उत्पलादिगणीय पदार्थों का लेपन पित्तज व्रणशोथ में लाभप्रद है।

बरगद, गूलर, पीपर, पाकड़ और बेंत की छाल को पीसकर लेप लगाने से भी पित्तज और रक्तज व्रणशोथ दूर होता है। तिलवन, असगंध, पलंकष और धूपसरल—इनका लेप कफज व्रणशोथ को विनष्ट करता है। इसी भाँति काकड़ासिंगी का लेप लगाना भी फलदायक होता है।

कफ-वातोत्पन्न व्रणशोथ में पुनर्नवा, देवदारु, सहिजन, दशमूल और सोंठ। इनके कल्क को गरमा कर गुनगुना लेप लगाने से लाभ मिलता है।

व्रणशुष्कता की स्थिति दिखाई पड़ने पर उसकी यकायक चिकित्सा न करके केवल वेदना शान्ति के लिए लेप लगाते रहें।

व्रण के मुख पर लेप न लगाकर उसे खुला रखें, क्योंकि मुख बंद हो जाने से दूषित पीब आदि बाहर न आ सकेंगे।

सिहोरा की छाल का कल्क बना कांजी में पीसकर लेप करने से वातजशोथ उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे गरुड़ को देखकर सर्प पलायित हो जाते हैं।

वेगपूर्वक उभरने वाले पीड़ायुक्त शोथ में रक्तावसेचन कर देने से उसकी उभार नियंत्रित हो जाती है।

ऐसे शोथ जो स्वेद, प्रसेक, लेप तथा अवतर्पणों से भी दमित न होते हों वे एकमात्र दूषित रक्तमोक्षण होने पर किसी भी रोग की उत्पत्ति होने की संभावना नहीं रह जाती। अत: यह सभी प्रयोगों में श्रेष्ठ होता है।

व्रणशोथ का दमन प्रलेपादि से न होने पर उसे पकाने वाली औषधियों के द्वारा उपचारित करें। तिल, तीसी के बीज, दही और मट्ठा—इन्हें सत्तू की पिण्डी की भाँति बनाकर व्रणशोथ पर लेपित करें।

अथवा हाथी दाँत को नील के साथ घिसकर कठिन शोथ पर लेप लगाने से शीघ्र ही व्रण पककर फूट जाता है।

पिच्छिल पदार्थों के छिलके तथा मूल को गेहूँ और उड़द के कणों को पीसकर व्रण की सूजन पर लेप लगायें।

रात्रि में लेपन न करें। जो लेप छूटे, सूखे या बासी हो गये हों उन्हें हटाकर दोबारा नये लेप लगा देने चाहिए।

करंज, भिलावाँ, दन्ती और चित्रक—यह व्रणशोथ का अपसारक है। कबूतर, कौए और चील का बीट—यह व्रणपाक करने तथा विदीर्ण करने वाला योग है।

अम्ल और क्षार पदार्थ या केवल जवाखार भी व्रणशोधक और विदारक होता है।

अथवा परवल और नीम की पत्तियों का काढ़ा भी व्रणशोधक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

इसके अतिरिक्त न्यग्रोधादिगणीय पदार्थों का क्वाथ भी सभी व्रणशोथ में उपयुक्त होते हैं।

वातज व्रणशोथ में दशमूल, पित्तज में न्यग्रोधादिगण के द्रव्य तथा कफज में आरग्वधादिगणीय पदार्थों के लेप तथा प्रसेक आदि से लाभ होता है।

घाव में से उसके मवाद आदि के निकलने, सूजन के घटने से दुर्गन्धरहित व्रण के हो जाने पर मुलेठी और तिल का कल्क बनाकर लगाने से घाव का पूरण होता है।

नीम की पत्ती और मुलेठी का कल्क भी व्रणशोधक होता है। मरोड़फली के कल्क में घी मिलाकर लगाने से व्रण का आरोपण होता है।

तदुपरान्त नीम की पत्तियों और तिलों का कल्क बना मधु के साथ लगाने से व्रणशोधन होता है।

तत्पश्चात् यव का कल्क घी के साथ क्रमानुसार प्रयुक्त व्रण का आरोपक होता है।

नीम की पत्ती, घी, मधु, दारुहलदी, मुलेठी और तिल—इनके कल्क की बत्ती व्रण का संशोधन कर घाव को भर देती है।

अथवा मुलेठी और नीम की पत्ती का लेप लगाने से भी घाव का पूरण होता है।

त्रिफला, खैर, दारुहलदी, न्यग्रोधादिगणीय द्रव्य, खिरेंटी, पंचमूल, नीम की जड़ और उसकी पत्ती—इनका कषाय भी घाव का संशोधन करता है।

मुलेठी और तिलाष्टक द्रव्यों का घृत के साथ लेपन करने से घाव शीघ्र ही भर जाता है।

अड़ूसा और नीम की जड़ का लेप व्रणशोधन हेतु सर्वोत्कृष्ट प्रयोग कहा जाता है।

सतौना के दूध का लेप करने से दुष्टव्रण का शमन होता है। मधु के साथ तुलसी का लेप लगाने से घाव का पूरण होता हैं। बरगद, गूलर, पीपर आदि पंचवृक्षों की छाल का चूर्ण अथवा शंखचूर्ण के साथ धव और लोध का चूर्ण भी घाव भरने में सहायक सिद्ध होता है।

वातोत्पन्न पीड़ायुक्त व्रण में तिलों को भूनकर दूध में पका उसी दूध में पीसकर लेप लगायें। करंज, नीम और निर्गुण्डी के रस से घाव के कीड़े नष्ट होकर उनका पूरण होता है।

नीम, कलायधान और निशोत के पत्ते तथा कोशाम्र फल की गुठली के चूर्ण से घाव भरता है।

सुरसादिगण के रस से सेंक, लहसुन का लेप तथा नीम, अमलतास, चमेली, मदार और सतौना (सतिवन)—ये सभी मारक द्रव्य हैं।

अर्थात् गोमूत्र के साथ इनका सेंक और लेप करने से घाव के कीड़े मर जाते हैं। अथवा मांसपेशियों से व्रण को आच्छादित करने पर सभी कीड़े एक साथ खिंच आया करते हैं।

जो व्रण बृहदाकार, पीबयुक्त, दुर्गंधित, पीड़ा तथा सूजनयुक्त हों वे सभी गूगुल के साथ त्रिफला रस के प्रयोग से ठीक हो जाते हैं।

त्रिफला चूर्ण और गूगुल की गोली बनाकर खाने से तिर्यग् व्रण का विबंध

दूर होकर व्रण का शोधन और रोपण होता है। अमृतागुग्गुलु और वज्रक तैल भी व्रणशोथ में गुणकारी होता है।

अथवा वायविडंग, त्रिफला, त्रिकटु और गूगुल—इनको घी के साथ वटी बनाकर सेवन करके पथ्याहार लेने से दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह तथा विभिन्न प्रकार के कुष्ठ का परिशोधन होता है।

गुरुच, परवल की जड़, हर्रें, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिरिच, पीपर, भाभीरंग—इनके अलग-अलग १-१ पल को २ पल गूगुल के साथ १-१ अक्ष की वटी बना लें।

प्रतिदिन १-१ गोली सेवन करने से व्रणशोथ, वातोदर, गुल्म, सूजन और पांडुरोग का उन्मूलन होता है।

मैनसिल, मंजीठ, लाख (लाह) और दोनों हलदी (हलदी, दारुहलदी)—इन्हें पीसकर घी और शहद के साथ लेप लगाने से व्रणशोथ के स्थानीय चर्म का शुद्धिकरण होता है।

सद्योव्रण का उपचार

किसी कारणवश ठोकर लगने या टकराने से उत्पन्न होने वाले घाव को सद्योव्रण कहा जाता है। वाग्भटादि संहिताओं में इसके आठ भेद बतलाये गये हैं। इसके उपचारार्थ मुलेठी और घृत से परिसेक करना लाभदायक है।

बड़े आकार वाले सद्योव्रण को जुड़ाने के लिए मधु-घृत देकर पित्तशामक शीतल पदार्थों का उपयोग करें। घाव की बढ़ी हुई अवस्था में ठण्ढे और मधुर रसवाले कषाय, स्निग्धरूप सेंक तथा लेप करने चाहिए।

यदि भीषण टक्कर से आमाशय में रक्त आ गया हो तो वमन कार्य उपयुक्त होता है। पक्वाशय में रक्त के आ जाने पर विरेचन देने से लाभ होता है।

साल वृक्ष की छाल, दालचीनी, रेंड़ की जड़, गोखरू और पाषाणभेद—इनके क्वाथ में हींग और सेंधा नमक मिला कर पान करने से पक्वाशय में जमा हुआ रक्त फट जाता है।

अथवा यव, बड़बेर, कुलथी—इनके स्नेहरहित रसों में पकाय गये अन्न या सेंधा नमक के साथ यवागू का प्रयोग करें। घाव से अधिक रक्त निःसृत होने पर वायु प्रकोप के फलस्वरूप अत्यन्त पीड़ा होने पर स्नेहपान, परिषेक, लेप, स्वेद, स्नेहबस्ति तथा वातविनाशक औषधों का उपयोग लाभकारी होता है।

सद्योव्रण की आरंभिक अवस्था में इस विधान को एक सप्ताह तक ही अपनाना चाहिए। तदनन्तर सद्योव्रण में व्रणशोथ में कथित चिकित्सा करनी चाहिए।

गौरादि तैल का प्रयोग

सफेद सरसों, हलदी, मंजीठ, मांसी, मुलेठी, पुनर्नवा, हाऊबेर, भद्र-मोथा, चंदन, जाती, नीम, परवल, करंज, कटुकी, मोम और मषवन।

उक्त पदार्थों के कल्क को पंचवल्कल क्वाथ में मिलाकर एक प्रस्थ तैल में पकावें। पकने पर यह गौरादि तैल कहलाता है। इस तैल से सभी प्रकार के व्रणों का शुद्धिकरण होता है।

इसके अतिरिक्त टकराने के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले आगन्तुक घाव, वातादि दोषों से उत्पन्न होने वाले निज घाव, दीर्घकालिक विषम घाव तथा नाड़ीव्रण आदि का भी इस तैल के द्वारा शोधन होता है।

करञ्जादि तैल का प्रयोग

करंज के पत्ते, घीकुआर, त्रिफला, चमेली के पत्ते, परवल के पत्ते, नीम की पत्ती, हलदी, दारुहलदी, मोम, मुलेठी, कटुकी, मंजीठ, चंदन, खस, नीलकमल, सारिवा और निशोत।

इनके १-१ कर्ष कल्क को १ प्रस्थ तैल में पाचित कर लें। पक जाने पर इस तैल के प्रयोग से सभी प्रकार के दुष्टव्रण एवं नाड़ीव्रण का संशोधन होता है।

जातीकादि घृत का प्रयोग

जाती (चमेली), नीम तथा परवल के पत्ते, कटुकी, हलदी, दारुहलदी, अनंतमूल, मंजीठ, कालावाला, शिरीष के बीज, तूतिया (नीलाथोथा), मुलेठी और करंज के बीज—इनके साथ पकाये गये घृत के प्रयोग से सूक्ष्ममुखी, मर्माश्रित, क्लेदित, गंभीर तथा फूटकर प्रवाहित होने वाले शूलयुक्त व्रण तत्क्षण ही शुद्ध होकर भर जाते हैं।

मोम, मुलेठी, लोध, राल, मंजीठ, चंदन और मरोड़फली। इनके कल्क को घृत में पका लें। इस घृत से आग से जले हुए घाव शीघ्र ही सूखकर भर जाते हैं।

पुनर्नवा, मंजीठ, मुलेठी, खस, कमलगट्टा और हलदी। इनके कल्क में दूध डालकर घी में पकावें। इससे घाव का शीघ्र ही पूरण होता है।

पाटली के कषाय में पाटली का ही कल्क मिलाकर सरसों के तैल में पकावें। इस तैल से दग्धव्रण की वेदना, स्राव, शूल, जलन और विस्फोट का नाश होता है।

चंदन, बरगद की छाल, गुंजा (घुँघुची), मंजीठ और मुलेठी—इनके कल्क के साथ दुग्धयुक्त घृत को पकाकर प्रयोग करने के फलस्वरूप अग्निदग्ध व्रण शीघ्र ही भर जाता है।

कुटेरकादि तैल का प्रयोग

तुलसी की पत्तियों को १०० पल लेकर एक द्रोण जल में पकावें। जब चौथाई भाग रह जाय तब उसमें चिरचिरा, तुलसी, प्रोष्ठिका तथा निर्गुण्डी (सम्भालू)

का कल्क डालकर एक प्रस्थ तैल में पाचित कर लेने पर यह तैल व्रणशोधक तथा व्रणपूरक हो जाता है। इसके साथ ही आगन्तुक या निजत्वरूप नाड़ीव्रण में भी मालिश करने से लाभप्रद होता है।

दूर्वादि तैल का प्रयोग

दूर्वा को निचोड़कर निकाले गये रस में कबीला और दारुहलदी की छाल का कल्क मिलाकर तैल में पका लें। यह तैल भी घाव भरने में सहायक सिद्ध होता है।

शस्त्रादि भग्ना का उपचार

शस्त्राघात से प्रहारित होने या प्रस्तरादि से पतित होने के परिणामस्वरूप जहाँ-तहाँ की शरीरस्थ हड्डियाँ टूट जाया करती हैं। इसी को भग्न होना कहा जाता है।

ऐसी दशा में सुश्रुत संहिता के मतानुसार उन टूटी हड्डियों को बाँधकर उन्हें अपने स्थान पर बैठा देने चाहिए। नीचे की ओर लटकी हुई हड्डियों को ऊपर उठायें तथा ऊपर उठी हुई हड्डियों को नीचे की ओर ले आवें।

जो हड्डियाँ क्षत-विक्षत होकर नीचे की ओर आ गयी हों उन्हें ऊपर की ओर ले जायें। इसके अतिरिक्त कुश के द्वारा पट्टी बाँधकर हड्डियों को यथास्थान जमाने का प्रयत्न करें।

उन बँधी हुई हड्डियों को ग्रीष्मकाल में ३ दिन, शीतकाल में ७ दिन तथा शरद्, वसंतादि सामान्य दिनों में ५-५ दिनों के अंतराल से उन पट्टियों को बदलता रहे।

तदनन्तर न्यग्रोधादिगणीय द्रव्यों से निर्मित शीतल क्वाथ से उन्हें सिंचित करते रहें। पीड़ा की अधिकता में दूध को पंचमूल क्वाथ में पकाकर सिंचन करें।

अथवा वातनाशक औषधों के कल्क और क्वाथ में पाचित तैल को गुनगुना प्रयोग करें। ऐसे रोगी को मांस, मांसरस, दूध, घृत, यूष तथा पौष्टिक आहार देने चाहिए।

घृतमिश्रित मधुर औषधों से साधित तथा लाक्षामिश्रित एक बार की व्यायी हुई गाय के शीतल दूध को प्रात:काल सेवन करें।

संधिस्थान या मांसस्थान से हड्डी के पृथक् हो जाने पर मधु, घृत, शक्कर और लहसुन को दही के पानी के साथ खाने पर अस्थिसंधान होता है।

इसी प्रकार कौड़ीचूर्ण को २-३ रत्ती की मात्रा में अपक्व दूध के साथ पीने से भग्न हड्डियाँ जुड़ जाती हैं।

लाक्षागुग्गुलु प्रयोग

लाख, हड़जोड़, कोह, असगंध और गंगेरन। इनके समान भाग चूर्ण में

समान भाग गूगुल मिलाकर प्रयोग करने से अस्थिपीड़ा दूर होकर प्रत्येक अवयव वज्र के समान कठोर हो जाते हैं।

अभागुग्गुलु प्रयोग

बबूल, त्रिफला और त्रिकटु। इनके समान भाग चूर्ण में सम भाग गूगुल मिलाकर उपयोग किये जाने पर भग्नास्थि पुनः अपने स्थान पर आ जाते हैं।

हड्डी टूटने के फलस्वरूप घाव के विदीर्ण हो जाने की स्थिति में पूर्वकथित सद्योव्रण में कथित घी और मधु के साथ प्रतिकारक कषायों का उपयोग करते हुए शेष प्रक्रियाएँ की जानी चाहिए।

यथासंभव घाव को पकने से बचाना ही चिकित्सक का कर्तव्य है। इसके लिए वातरोगविनाशक तैलों का प्रयोग भी किया जा सकता है।

भग्नरोगी को पूर्णरूप से स्वस्थ हो जाने तक नमकीन, कडुए, खारे तथा अम्ल पदार्थों के सेवन से दूर रहना उचित है। उसके लिए स्त्री-संसर्ग, धूपसेवन, व्यायाम तथा रूक्ष अन्नों का आहार भी वर्जित किया गया है।

नाड़ीव्रण का उपचार

कुशल चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि वह नाड़ियों की गति को भली प्रकार से खोजकर उन्हें शस्त्रों द्वारा विदीर्ण करें। तदनंतर व्रणरोगोक्त शोधन, रोपणादि क्रियाओं को अपनाये।

वातोत्पन्न नाड़ी को विदारित कर चिरचिरा के बीज, तिल और सेंधा नमक को पीसकर उस स्थान में लेपित कर दें।

पित्तजनित नाड़ी को तिल, मंजीठ, हाथीशुंडा और हलदी—इन सबका लेप लगाये तथा कफजनित नाड़ी पर मुलेठी, दन्ती, नीम और सेंधा नमक का लेप करें।

शल्य द्वारा उत्पन्न नाड़ी को विदीर्ण करने और शोधन करने के पश्चात् तिल, मधु और घी का लेप लगायें। मेषिण्या नाड़ी पर शोधन कर्म करना उचित है।

इसके अतिरिक्त अन्य गति का खोज करके क्षारपीत सूत्र से कई बार विदीर्ण कर दें।

दुष्टव्रण, सूक्ष्ममुखी तथा गंभीर व्रणों में कथित बत्ती और तैलादि के प्रयोग नाड़ीव्रण में भी करने चाहिए। चंचुफल को पीसकर लेपित करने से नाड़ीव्रण नहीं रह जाता।

सुपारी के पेड़ की छाल, सेंधा नमक, लाह, रेंड़ का पत्ता, नारीस्तन का

दूध, सेंहुड़ का दूध तथा मदार का दूध—इनके कल्क की वर्तिका के प्रयोग द्वारा अल्पकाल में ही नाड़ीव्रण दूर हो जाता है।

सेंधानमक की बत्ती का प्रयोग शहद के साथ करने पर नाड़ीव्रण का निवारण होता है।

इसके साथ दुष्टव्रणनाशक तैल भी इसमें लाभदायक होता है। अथवा चमेली, मदार, अमलतास, करंज, दन्ती, सेंधा नमक, काला नमक, जवाखार और चीता—इन्हें सेंहुड़ के दूध में पीसकर बत्ती बना प्रयोग करने से शीघ्र ही नाड़ीव्रण नष्ट होता है।

कृशकाय, निर्बल और कायर व्यक्ति की नाड़ी तथा मर्मस्थल पर रहने वाली नाड़ी को भी क्षारपीत सूत्र के द्वारा ही विदारित करना चाहिए। इसके लिए शल्यकर्म करना अनुपयोगी होता है।

सप्ताङ्गगुग्गुलु का प्रयोग

गूगुल, त्रिफला, त्रिकटु और मांस। इनको घी के साथ प्रयोग करने पर नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण, शूल और भगंदर—जैसे कठिन रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

स्वर्जिकादि तैल का प्रयोग

सज्जीखार, चित्रक, सफेद सुहागा, दन्ती, सफेद मदार, नरसल, नीली और चिरचिरा के बीज। इनके कल्क को गोमूत्र मिलाकर तैल में परिपाक करें। इस तैल से दुष्टव्रण और कफजनित नाड़ीव्रण निर्मूल होता है।

कुम्भीकाय तैल का प्रयोग

जलकुंभी, खजूर, कैथ और बेल नामक फल, पिपरिया बेल तथा अष्टवर्गान्तर्गत औषध—इनका एकीकृत क्वाथ तैयार कर लें।

क्वाथ के पककर चौथाई भाग रहने पर उसमें धूपसरल, प्रियंगु, कमल, मोचरस और अहिपुष्प—इनके १-१ पल कल्क के साथ तैल पका लें।

इस तैल के प्रयोग से शल्यकर्मोद्भव नाड़ी तथा अन्यान्य प्रकार के घाव भी शीघ्र ही भर जाते हैं।

भल्लातकादि तैल का प्रयोग

भिलावाँ, मदार, सेंधानमक, वायविडंग, हलदी, दारुहलदी और चित्रक—इनके कल्क को प्रियंगु पुष्प और मदार के काढ़ा में मिश्रित कर तैल के साथ पाचित करें। इस तैल से कफ-वातोत्पन्न नाड़ी, अपची तथा व्रणादि रोगों का विनष्टीकरण होता है।

भगन्दर रोग का उपचार

योनि या लिंग के नीचे मलद्वार से ऊपर वातादि दोषों के फलस्वरूप उन्हीं के रंग वाली पिड़िकाएँ उत्पन्न होकर पक जाती हैं।

पाकावस्था में ये पिड़िकाएँ मलद्वार से लेकर योनि या लिंग तक की बस्ति को चीर डालती हैं, जिसे भगन्दर के नाम से जाना जाता है।

जिस समय गुदा के दो अंगुल ऊपरी भाग में सूजन दिखाई पड़े, उसी समय से लंघन, वमन, विरेचन तथा शोधन कर्मोपरान्त उस पिड़िका का रक्त जोंक के द्वारा निष्कासित करा दें ताकि वह पकने न पाये।

भगन्दर की उस पिड़िका पर बरगद वृक्ष का पत्ता, ईंट का चूरा, सोंठ, गुरुच और पुनर्नवा—इनको पीसकर लेप लगा दें।

पिड़िका के परिपाक न होने तक अवसंतर्पण आदि विरेकान्त कर्म करते रहने चाहिए। पकने पर उनके भिन्न-भिन्न रूप और मुख हो जाने पर उसके उपचार कहे जा रहे हैं।

बवासीर की भाँति ही भगंदर की पिड़िका भी बहुमुखी हुआ करती है। सर्वप्रथम उन मुखों को चून कर वातादि दोषानुसार उनको विदीर्ण करना, क्षार का प्रयोग करना तथा अग्नि से दग्ध कर देना आदि कर्म के पश्चात् व्रणशोथ में कथित चिकित्सा का अवलम्बन करना उचित है।

निशोथ, तिल, हाथीशुंडा, मंजीठ, घृत, सेंधा नमक और मधु—इनका लेप करना भगंदरनाशक होता है।

रसोत, हलदी, दारुहलदी, मंजीठ, नीम की पत्ती, निशोथ, तेजबल और दन्ती—इनका कल्क लगाने से भगंदर नष्ट होता है।

अथवा सेंहुड़ का दूध, मदार का दूध और दारुहलदी। इनकी बत्ती का प्रयोग भगंदर की गति के अनुसार करें।

इस वर्तिका के द्वारा सम्पूर्ण शरीरस्थ नाड़ियों का विनाश संभव होता है।

तिल, हरड़, लोध, नीम की पत्ती, हलदी, दारुहलदी, वचा, कूठ, गृहधूम की कालिख—इनको पीसकर लेप लगाने से भगंदर, नाड़ीव्रण, उपदंश (गरमी नामक रोग, फिरंग) तथा दुष्टव्रणों का शोधन होकर व्रणों का पूरण होता है।

अथवा केंचुए को गधी के दूध में पकाकर लेप करने या हाथीशुंडा, चीता और अतीस—इनको पीसकर लेप करने से भगंदर का नाश होता है।

अथवा कुत्ते की हड्डी को त्रिफला के रस में घिसकर लेपित करने पर भी भगंदर और दुष्टव्रणों का उन्मूलन होता है। त्रिफला ३ भाग, गूगुल ५ भाग ओर छोटी

पीपर १ भाग—इन्हें पीसकर वटी बना लें। इस वटी के द्वारा नाड़ीव्रण तथा भगंदर पिड़िका का शुद्धिकरण होता है।

सप्तविंशतिक योग का प्रयोग

त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, वायविडंग, गुरुच, चित्रक, निशोथ, पिप्पलीमूल, हाऊबेर, देवदारु, कूठ, चव्य, इन्द्रायण, हलदी, दारुहलदी, विड्नमक, कालानमक, सेंधानमक, जवाखार और गजपीपर।

इनका सम भाग चूर्ण बना तिगुना गूगुल मिलाकर एक तोले की गोली बनाकर शहद के साथ सेवन करें।

इस गोली के सेवन से खाँसी, श्वास, सूखापन, अर्श, भगंदर, हृत्शूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल, गुदाशूल, अश्मरी (पथरी), मूत्रकृच्छ्र, आँतों की वृद्धि, कृमिरोग, पुराना बुखार, अफरा, उन्माद, कोढ़, जलोदर, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण, प्रमेह, श्लीपद (फीलपाँव) आदि अनेक रोगों का उन्मूलन होता है।

यथार्थ में इस सप्तविंशतिक योग से एकबारगी ही रोग-समूहों का निर्मूलन हो जाता है।

पंचतिक्तमिलित गुग्गुलु योग भी भगंदर में गुणकारी होता है। न्यग्रोधादिगणीय द्रव्य भगंदर के शोधन और रोपण में काम आते हैं।

अथवा पूर्वकथित पदार्थों में पाचित तैल और घृत भी इसके लिए लाभकारी होते हैं।

विष्यन्द तैल का प्रयोग

चित्रक की जड़, मदार की जड़, निशोथ, पाठा, कठूमार, कनेर की जड़, मदार का दूध, वचा, कलिहारी, हरताल, सज्जीखार और मालकंगनी—इनका कल्क बनाकर तैल पका लें। यह विष्यन्दन तैल है। इससे भगंदर का शुद्धिकरण होकर रोग का निर्मूलन होता है।

करवीरादि तैल का प्रयोग

कनेर, हलदी, दन्ती, लांगली (कलिहारी), सेंधा नमक, बिजौरा नीबू की जड़, मदार की जड़ और कूड़ा—इनके कल्क का तैल पकाकर भगंदर में उपयोग करने से लाभ मिलता है।

निशादि तैल का प्रयोग

हलदी, मदार का दूध, सेंधा नमक, गूगुल, चीता और कूड़े की छाल—इनके कल्क से पकाया हुआ तेल भगंदर का नाशक होता है।

भगंदर से मुक्त होने वाले रोगी को एक वर्ष तक व्यायाम, स्त्रीसंसर्ग, युद्ध, मधुर पदार्थ, गरिष्ठ आहार तथा मद्यपान से परहेज रखना आवश्यक है।

उपदंश रोग का उपचार

दूषित यौन-संबंध में आने, हाथ में चोट लगने या अन्य प्रकार के विष द्वारा गुह्यस्थल में उपदंश (आतशक, सिफिलिस) रोग की उत्पत्ति होती है।

इसके लिए पहले रुग्ण व्यक्ति को स्निग्धित और स्वेदित करके जननेन्द्रिय के मध्य भाग में शिराभेदन करें अथवा जोंक लगाकर दूषित रक्तमोक्षण या वमन—विरेचन द्वारा शुद्धिकरण करें।

इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि निकली हुई फुंसियाँ पकने न पायें। पकने की दशा में लिंगक्षय होने की आशंका बनी रहती है। इसके लिए प्रलेप, प्रक्षालन तथा गुंडन आदि की प्रक्रिया से चिकित्सा करें।

परवल के पत्ते, नीम, त्रिफला और गुरुच—इनके क्वाथ या खैर या शालवृक्ष के क्वाथ में गूगुल और त्रिफला मिलाकर पान करें। इससे सभी प्रकार के उपदंश का विनाश होता है।

पुनर्नवा, मुलेठी, रास्ना, कूठ, धूपसरल, अगरु और मोथा—इनको पीसकर लेप लगाना और सेंक करना वातज उपदंश में लाभप्रद होता है।

गेरू, रसोत, मंजीठ, महुआ, खस, कमलगट्टा, चन्दन और नीलकमल—इनका लेप पित्तज उपदंश में लाभकारी सिद्ध होता है।

पित्तोत्पन्न तथा रक्तोत्पन्न उपदंश में नीम, अर्जुन, पीपर, कदम्ब, शाल, जामुन, बरगद, गूलर और बेंत—इनके द्वारा क्षालन, लेपन, घृत और चूर्ण के रूप में प्रयुक्त करना चाहिए।

कफोत्पन्न उपदंश रोग में शाल, विजयसार, लताशाल तथा धव—इनकी छालों को मदिरा में पीसकर गरम लेप लगायें।

त्रिफला के काढ़ा या भँगरैया के रस से घाव धो देने से भी रोग का शमन होता है।

समान परिमाण में त्रिफला को लोहे की कड़ाही में भूनकर मधु के साथ घाव पर लेपित करने से घाव शीघ्र ही भर जाता है।

अथवा जयन्ती, चमेली, कनेर, मदार और अमलतास—इनके पत्तो द्वारा निर्मित क्वाथ से उपदंश के घाव को धोने से रोगमुक्ति होती है।

करञ्जादि घृत का प्रयोग

करंज, नीम, अर्जुन, शाल, जामुन और बरगद—इन सबकी छाल के कल्क तथा इन्हीं के कषाय से पाचित घृत द्वारा पके तथा पीब निकलने वाले उपदंश के घाव नष्ट होते हैं।

रसोत और शिरीष चूर्ण के साथ अथवा हरड़ के साथ मधु मिला कर लेप लगाने से सभी प्रकार के जननेंद्रिय रोग दूर होते हैं। बबूल के पत्तों का चूर्ण या अनार की छाल का चूर्ण अथवा मानवास्थि का चूर्ण उपदंश पर लेपित करने से रोग का उन्मूलन होता है।

भूनिम्बादि घृत का प्रयोग

चिरायता, नीम की छाल, त्रिफला, पटोलपत्र, करंज, चमेली, खदिर, विजयसार—इनके कल्क और क्वाथ के द्वारा घृतपाक कर लें। यह घृत सभी प्रकार के उपदंश को निर्मूल कर देता है।

अगारधूमादि तैल का प्रयोग

गृहधूम का चूरा, हलदी और मदिरा—इनकी मात्रा को क्रमानुसार बढ़ाकर तैल में पाक करें। इस तैल के प्रयोग से खाज-खुजली, सूजन आदि का निवारण, व्रणशोधन तथा रोपण होता है।

इसके अतिरिक्त छिन्नदग्ध बवासीर में जो क्रियाएँ की जाती हैं वे ही क्रियाएँ उपदंश में भी करणीय होती हैं।

उपंदश रोगी के लिए यह आवश्यक है कि वह रोगमुक्त न होने तक यवान्न के अतिरिक्त किसी अन्न या कुएँ के जल के अतिरिक्त किसी जल का प्रयोग न करें। उसके लिए नमकीन तथा जलनकारक पदार्थ भी त्याज्य होते हैं।

शूकदोष रोग का उपचार

सर्वप्रथम यहाँ शूकदोष की उत्पत्ति का कारण जान लेना अति-आवश्यक है। इस रोग की उत्पत्ति उन विलासी व्यक्तियों में हुआ करती है जो लिंगस्थूलीकरण या उनका वर्धन करने हेतु विषाक्त औषधों का प्रयोग करते हैं।

ऐसे ही मनुष्यों में सर्षपिका, अष्ठीला आदि भेदानुसार अट्ठारह प्रकार के शूकदोष पाये जाते हैं। इसमें समस्त प्रकार के शूकदोषों हेतु विषनिवारक उपचार करने चाहिए। इसके अतिरिक्त उन्हें घृतपान, विरेचन, रक्तनिष्कासन तथा हलका भोजन भी आवश्यक होता है।

सम्रणिका नामक शूकदोष में जोंक द्वारा रक्त निकलवाकर बरगद, मंजीठ आदि के कषाय चूर्णों को घाव में लगाने चाहिए।

यही प्रयोग अवमंथ नामक शूकदोष में भी लाभप्रद होता है।

अष्ठीला नामक शूकदोष के निमित्त प्रदूषित रक्त का निष्कासन कराने के पश्चात् कफज ग्रंथिरोग के समान उपचार करें।

कुंभिका नामक शूकदोष में रक्तमोक्षण तथा पकने पर पीब निकालकर शोधन करें।

तदनंतर तेंदू, त्रिफला और लोध का लेप तथा व्रणशोधक तैल का प्रयोग लाभकारी होता है।

इसी प्रकार अलजी रोग में भी उपचार करें। ग्रंथित नामक शूकदोष में नाड़ीस्वेद के क्रमानुसार बार-बार स्वेदित कर स्निग्ध और गुनगुना लेप लगायें।

उत्तमा नामक शूकदोष की पिड़िका को सँड़सी से खींचकर व्रणशोधक कल्क, चूर्ण तथा कषायों का प्रयोग मधु के साथ करें।

पुष्करी और संमूढ़ शूकदोष में पित्तज विसर्प रोग के समान चिकित्सा करने से रोगोन्मूलन होता है।

त्वक्पाक, स्पर्शहानि तथा मृदित नामक शूकदोषों के नाशार्थ बला नामक तैल को गरम करके घाव पर चुपड़ दें तथा मधुर पदार्थों का लेप लगायें।

शतपोनक नाम के शूकदोष में रक्तमोक्षण के बाद रसक्रिया और पिठवन आदि द्रव्यों से तैलपाक करके प्रयोग करें।

रक्तज अर्बुद में रक्तज विद्रधि के समकक्ष चिकित्सा करने से लाभ मिलता है।

समस्त प्रकार के शूकदोषों में व्रणशोधक कषाय, कल्क, घृत, तैल, चूर्ण, रसक्रिया, शोधन और रोपण कर्म करने चाहिए।

कुष्ठ रोग का उपचार

असंयमित आहार-विहार, दिवास्वाप तथा प्रचंड पाप के परिणामस्वरूप शरीरस्थ धातुएँ विकृतावस्था में आकर कुष्ठरोग की उत्पत्ति कर देती हैं।

ऐसे रोगियों में बार-बार वमन, विरेचन, रक्तनिष्कासन आदि के द्वारा शोधन कर्म करने चाहिए। दोषों के मिट जाने पर तत्काल ही वायुबल को घटाना आवश्यक होता है।

पित्ताधिक्य वाले कुष्ठियों के दूषित रक्त को विरेचन द्वारा दूर कर दें। सभी प्रकार के कुष्ठ में शिराभेदन करना परमावश्यक है।

वचा, मांसरोहिणी, परवल, नीम और प्रियंगु की छाल—इनके कषाय में मैनफल मिलाकर पीने से कुष्ठशोषक वमन आते हैं।

निशोथ, दंती, त्रिफला—इनके द्वारा विरेचन दें। वमन-विरेचन द्वारा शुद्धिकरण के पश्चात् लेपादि के प्रयोग करने चाहिए।

मैनसिल, इलायची, कालीमरिच, मदार का दूध और तैल—इनके लेप लगाने से कुष्ठ का निर्मूलन होता है।

करंज के बीज, चकवँड़ और कूठ—इनको गोमूत्र में पीसकर लेप लगाने से कुष्ठ मिट जाता है।

अमलतास और मकोय का लेप लगाने पर कुष्ठ का विनाश होता है।

चक्रमर्द (चकवँड़), कूठ, सेंधा नमक, सौवीर, कांजी, सरसों और वायविडंग। इनको पीसकर लेप लगाने से दाद-खाज, किट्टिभ, कुष्ठ तथा किलास रोग विनष्ट होते हैं। अथवा अमलतास के पत्तों को कांजी के साथ पीसकर लेपित करने से कुष्ठ दूर होता है।

थुनेर, कूठ, हलदी और दूब—इनको धतूरे के रस में पीसकर सात बार लेप लगाने से खुजली, किलास और कुष्ठ नष्ट होते हैं।

कसौदी की जड़ को सौवीर कांजी में पीसकर लेपित करने पर दाद, किट्टिभ और कोढ़ नहीं रह जाते।

सरसों और मूली के बीज, लज्जालु, हलदी, चकवँड़ के बीज, धूपसरल, त्रिकटु, भाभीरंग और कूठ—इनको गोमूत्र में पीसकर लेप करने से सभी प्रकार के कुष्ठरोगों का उन्मूलन होता है।

भाभीरंग, चकवँड़, कूठ, हलदी, सेंधा नमक और सरसों—इन्हें कांजी में पीसकर लेप लगाने से दाद-खाज और कुष्ठ दूर होते हैं।

दूर्वा, हरड़, सेंधा नमक, चकवँड़ और तुन—इनको कांजी में पीसकर लेप लगाने से तीन बार में ही पुरानी खुजली और दाद से छुटकारा मिलता है।

साल वृक्ष की छाल १ भाग, चकवँड़ १ भाग, हरड़ १ भाग, सोमराजी १ भाग और गंध रस ४ भाग।

इन सबको पीसकर लेप लगाने से दादरूपी हाथी को वश में लाने के लिए यह सिंह के समान प्रतीत होती है। चिरचिरा के रस या हलदीयुक्त कदलीक्षार में मूली के बीजों को पीसकर लेपित करने से किलास रोग नष्ट हो जाता है।

कसौंदी और मूली के बीजों को गंधक में पीसकर लेप लगाने से किलास रोग का निवारण होता है। आँवले का रस, राल और खिरेंटी—इनको कांजी में पीसकर उबटन करने पर पुन: किलास की उत्पत्ति होने की संभावना नहीं रह जाती।

तेजपात, कालीमरिच, कसीस, तैल और मैनसिल—इन सबको एक साथ पीसकर एक सप्ताह तक कांस्यपात्र में रख छोड़ें।

इसके बासी लेप का प्रयोग करने से किलास और सफेद कोढ़ दूर हो जाते हैं। त्रिफला, वायविडंग, चित्रक, भिलावाँ, सोमराजी, अगरु और भँगरैया—इनको क्रमश: एक-एक भाग की मात्रा में बढ़ाकर तिलतैल में पका गाढ़ा लेह बनाकर प्रयुक्त करने से सभी प्रकार के कोढ़ रोग का निर्मूलन होता है।

गुरुच या सोमराजी की लता, भाभीरंग का सार, छोटी पीपर, चित्रकमूल,

मंडूर और आँवला को तैल में लेह की भाँति बनाकर लेपित करने से समस्त प्रकार के कुष्ठ का उन्मूलन होता है।

कौआडोंड़ी, चकवँड़, कूठ और छोटी पीपर—इन्हें पीसकर गोली बना लें। गोली के सूख जाने पर गोमूत्र में पीसकर लगाने से खुजली नहीं रह जाती। चकवँड़ क बीज को सेंहुड़ के दूध में भिंगोकर गोमूत्र मिला थोड़ी देर तक धूप में रख दें।

तदुपरान्त उसके लेपित करने से किट्टिभ नामक कुष्ठ नष्ट होता है। नीम की पत्ती और आँवला चूर्ण का प्रतिदिन प्रात:काल सेवन करने पर कुष्ठ का विनष्टीकरण होता है।

हाथी की लीद (मल) की राख ३२ सेर लेकर हाथी के मूत्र में इक्कीस बार निथारकर छान लें। इस क्षारजल को ६४ सेर परिमाण में लेकर उसमें ६ सेर बाकुची के बीज मिलाकर पका लें।

पक कर गाढ़ा और नरम होने पर नीचे उतारकर गोलियाँ बना लें। इन गोलियों को जल में घिसकर लगाने से श्वित्र कुष्ठ (सफेद कोढ़) नष्ट होकर चमड़े का रंग उज्ज्वल हो जाता है।

मानकन्द के क्षारजल में धतूरे के बीज का कल्क मिला सरसों के तैल में पाचित करें। इस तैल के द्वारा विपादिका (विमची) नामक कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

नारियल के जल में चावलों को भिंगो दें। जब उसमें से दुर्गन्धि आने लगे तब उन चावलों को पीसकर लेप लगाने पर दीर्घकालिक विपादिका कुष्ठ विनष्ट होता है।

बाकुची के बीज, कसौंदी, चकवँड़, हलदी और सेंधा नमक। इनके बराबर भाग को दही के पानी और कांजी में पीसकर लेप लगाने से कच्छू, कुष्ठ तथा दाद-खाज आदि निर्मूल होते हैं।

अड़ूसा के कोमल पत्ते और हलदी को तुलसीदल के रस में घोंट कर लगाने से तीन दिनों में ही खुजली बन्द हो जाती है।

महाभल्लातक गुड का लाभ

नीम की छाल, अनन्तमूल, अतीस, कुटकी, त्रायमाण, त्रिफला, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, बाकुची, गौरीसर, वचा, खदिर, लालाचंदन, पाठा, सोंठ, कचूर, भारंगी, अड़ूसा की जड़, चिरायता, कूड़े की छाल, निशोथ, इन्द्रायण, मूर्वा, भाभीरंग, इन्द्रयव, विष, चित्रक, एरण्डककूल, गुरुच, बकायन नीम, परवल के पत्ते, हलदी, दारुहलदी, छोटी पीपर, अमलतास, सोया, कालाबेंत, घुँघुची, सूरन, सुगंधितृण, मंजीठ, पवाँर के बीज, मुसली, प्रियंगुपुष्प, नीम, सरफोंका और क्षीरकंचुकी; इन्हें अलग-अलग २-२ पल लेकर एक द्रोण जल में पका लें।

पकाकर ४ सेर रह जाने पर इस काढ़े को छान लें। तत्पश्चात् तीन हजार की संख्या में भिलावाँ फलों को काट-छाँटकर एक द्रोण जल में पकावें। चौथाई भाग रहने पर उतारकर छान लें।

तदनंतर दोनों क्वाथों को छानकर एकीकरण कर लें। इस एकीकृत क्वाथ में १०० पल गुड़ तथा एक सहस्र भिलावाँ फलों को मिलाकर पुन: पकावें।

परिपाक होने के समय ही उसमें त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, सेंधा नमक और अजवायन—इन्हें १-१ पल तथा दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर—इन्हें १-१ तोले और ४ पल सूरन के चूर्ण को डाल दें।

यह शिवनिर्मित महाभल्लातक नामक गुड़ है। यह विश्वकल्याणकारी गुड़ श्वेत कुष्ठ, औदुम्बर कुष्ठ, दाद, ऋक्षजिह्व, काकण, पुंडरीक, चर्मकुष्ठ, विस्फोट, मंडल, कंडू, कपालकुष्ठ, खुजली, विमची आदि प्रजाति वाले कुष्ठों तथा वातरक्त, पाण्डुरोग, व्रण, कृमि, छह प्रकार के अर्श रोग, खाँसी, श्वास, भगंदर, आमवात तथा वलीपलित रोगों का उन्मूलक होता है।

इसके साथ गुरुच का काढ़ा या दूध का सेवन अनुपान के रूप में करना चाहिए। इस गुड़ के सेवनकाल में प्रतिदिन गरम पदार्थ और गरम भोजन ही लेने चाहिए।

हलदी का कल्क बनाकर २ पल गोमूत्र के साथ पान करने से कोढ़ छूट जाता है।

वचा के कल्क को गोमूत्र के साथ प्रयोग करने पर सूजन, पाण्डु, गुल्म, प्रमेह, कफज रोग तथा कुष्ठ रोग से मुक्ति मिलती है।

गंधक चूर्ण को सरसों के तेल में मिलाकर धूप में गरम कर आधा पल की मात्रा में पान करने तथा शरीर पर मर्दन करने से पामा रोग दूर होता है तथा शरीर का रंग स्वर्ण के समान चमकीला बन जाता है।

किन्तु इसके प्रयोग काल में केवल दुग्धाहार लेना ही आवश्यक होता है।

हलदी, गुरुच, अमलतास, मकोय, चिरचिरा के बीज, दारुहलदी और चकवँड़ के बीज। इनकी छाल को पीसकर सरसों का तेल डाल शरीर पर उबटन लगाने से पामा और कुष्ट का विनष्टीकरण होता है।

जटामांसी, लालचंदन, अमलतास, करंज, नीम, सरसों, कचूर, कूड़ा, दारुहलदी और मोथा—ये सभी पदार्थ **कुष्ठविनाशक** कहे गये हैं।

सरसों के तैल में जल मिलाकर बाकुची को पका लें। तदनन्तर धर्मनिष्ठ

भाव से दुग्धाहार ग्रहण करते हुए इसके इक्कीस दिन प्रयोग मात्र से ही कुष्ठ रोग का उन्मूलन हो जाता है।

चकवँड़, काला तिल, सरसों, कूठ, जूही, हलदी, दारुहलदी और मोथा—इनको जल में पीसकर तीन दिनों तक रख छोड़ें।

इसके अनन्तर इस बासी लेप का प्रयोग करने पर कुष्ठ, विचचिका (शरीर पर पीबयुक्त फुंसियों का निकलना) तथा दाद-खाज आदि रोग निर्मूल होते हैं।

भिलावाँ, चित्रक, गुरुच, मदार की जड़, घुँघुची, त्रिकटु, शंखचूर्ण, कूठ, पंचलवण, जवाखार, सज्जीखार और पिठवन—इनके कल्क को लौहपात्र में रखकर सेंहुड़ और मदार के दूध के साथ पकावें।

पक जाने पर सलाई द्वारा शरीर पर प्रलेपित करने से कुष्ठ, किलास, कापालिक कुष्ठ तथा समस्त प्रकार के अर्श रोग का उन्मूलन हो जाता है।

विष, वरुना, हलदी, चित्रकमूल, गृहधूम की धूलि, मैनफल, कालीमिर्च, दूब, मदार और सेंहुड़ का दूध—इनका एकीकृत लेप करने के फलस्वरूप सभी प्रकार के कुष्ठरोग उसी प्रकार भस्मीभूत हो जाते हैं जिस प्रकार इन्द्रदेव के वज्राघात से वृक्ष।

त्रिफला, पटोलपत्र, हलदी, मंजीठ, मांसरोहिणी, वचा और नीम—इनके कषाय के सेवन से कफ-पित्तोत्पन्न कुष्ठ दूर होते हैं।

महाकषाय का लाभ

नीम, चिरायता, पाठा, मोथा, परवल, त्रिफला, तगर, प्रियंगु पुष्प, गंधेज घास, खदिर, भारंगी, अड़ूसा, लालचंदन, वचा, गुरुच, छोटी पीपर, सोंठ, कटुकी, फणिजूक, हलदी, कूड़े की छाल, इन्द्रयव, गौरीसर, मरोड़फली, त्रायमाण, पित्तपापड़ा, इंद्रायण, कटेरी, चकवँड़, अतीस, भाभीरंग और कृष्णचंदन—इन सबके द्वारा साधित इस महाकषाय को गोमूत्र के साथ प्रयुक्त किये जाने पर समस्त प्रकार के कुष्ठ उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अंधकार नहीं रह जाता।

महाकषाय की अन्य विधि और प्रयोग

नीम, एरंडमूल, वायविडंग, सोंठ, वचा, मरोड़फली, हलदी, नागर, दारुहलदी, त्रायमाण, परवल के पत्ते, चित्रक, बकायन नीम, गुरुच, भारंगी, देवदारु, गूलर, करंज, खैर, सिहोरा, सतौना, कटेरी, मोथा, शिरीष, बेल, छोटी पीपर, चिरायता, इन्द्रयव, चकवँड़, बाकुची, कुश, जटामांसी, हस्तिकर्ण, समुद्रफल, पाठा, पित्तपापड़ा, इन्द्रवारुणी, अतीस, दन्ती, निशोथ, रक्तचंदन, मंजीठ, कूठ, कूड़ा की छाल, कटुकी, अमलतास और गठिवन—इनको सम भाग में लेकर कषाय बनाकर रख छोड़े।

तदनन्तर वमन-विरेचन द्वारा कोष्ठ का शुद्धिकरण कर गोमूत्र के साथ इस महाकषाय का पान कर पथ्याहार लेते रहें।

इसके द्वारा दाद, उदुम्बर, पुंडरीक, किट्टिभ तथा पामा आदि सभी कुष्ठ नष्ट होकर शरीर का वर्ण तपे हुए स्वर्ण के समान हो जाता है।

गुरुच को कूटकर निकाले हुए रस को अग्निबल के अनुसार पीवें। उसके पच जाने पर घी के साथ अल्पाहार लें।

इस प्रकार के नियम का निरन्तर कुछ दिनों तक अनुपालन के फलस्वरूप दुर्गन्धित कोढ़युक्त शरीर भी निर्मल और स्वच्छ हो जाता है।

परवल के पत्तो, नीम, त्रिफला और काला बेंत—इनका काढ़ा बनाकर सेवन करें तथा प्रयोगकाल में तिक्त पदार्थों का अधिकाधिक सेवन करने से कुष्ठ रोग से मुक्ति मिलती है।

वायविडंग, त्रिफला, छोटी पीपर—इनका चूर्ण बना मधु के साथ चाटने से कोढ़, कृमि, प्रमेह, नाड़ीव्रण तथा भगन्दर आदि रोगों का निवारण होता है।

किसी शुभ मुहूर्त्त और शुभ घड़ी में घुँघुची का पौधा उत्पाटित कर उसका चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को घी और मधु के साथ सेवन करें। सेवनकाल में दूध-घृत का ही आहार लें।

इसके साथ ही अभयारिष्ट और आँवले का सेवन बार-बार करते रहने पर सभी प्रकार के कुष्ठ रोगों का शमन हो जाता है तथा उसके आयुकाल की सीमा भी तीन सौ वर्ष तक हो जाती है।

पञ्चाङ्गनिम्बादि का प्रयोग और लाभ

नीम के पल्लवित-पुष्पित होने के समय में उसके पंचांग (फूल, फल, पत्ता, छाल और जड़) को ग्रहण कर प्रत्येक का २-२ पल चूर्ण बना लें। पुनः त्रिफला, त्रिकटु, ब्राह्मी, गोखरू, चीता, आँवला, बाकुची, अमलतास, दारुहलदी, कूठ, इन्द्रयव, पाठा—इन सबको समान भाग में लेकर चूर्णित कर लें।

तदनंतर पूर्वोक्त पंचांग चूर्ण में इसे भी एकीकृत कर दें। इसके बाद खदिर, विजयसार और नीम के गाढ़े क्वाथ तथा भँगरैया के रस में अलग-अलग सात बार भिगो दें।

तत्पश्चात् कोष्ठ को स्निग्ध और शुद्ध करके शुभ मुहूर्त में इस चूर्ण को सेवन करायें।

तत्पश्चात् मधु, तिक्तघृत, खैर तथा विजयसार का क्वाथ एवं गरमजल—इनमें से किसी एक के साथ १ तोले की मात्रा में सेवन करें। इसकी मात्रा को क्रमशः

बढ़ाते हुए तब तक सेवन करते रहें जब तक उसकी मात्रा १ पल तक पूरी न हो जाय।

चूर्ण खाने के अनन्तर उसके पच जाने पर हलका और स्निग्ध भोजन करें। इसके सेवन-काल में रोगी को शान्तचित्त से धर्मनिष्ठ भाव में रहना चाहिए।

इस प्रकार चूर्ण का उपयोग करने के फलस्वरूप विचर्चिका, औदुम्बर, पुंडरीक, कापालिक, द्रद्रु, किट्टिभ, अलसक, पामा, विस्फोटक, विसर्प, कुष्ठ, कफप्रकोप, विविध भाँति का किलास रोग, भगन्दर, फीलपाँव, वातरक्त, नाड़ीव्रण, शिरोरोग, प्रमेह, प्रदर, सर्पविष तथा स्थावर विष निर्मूल होते हैं।

इसके सेवन से स्थूलोदर व्यक्ति पेट के पिचक जाने से कृशोदर बन जाता है तथा विश्लिष्ट संधिवाला मनुष्य सुश्लिष्ट संधिवाला हो जाता है।

इसके द्वारा वृद्धत्व का निवारण होकर समस्त आधि-व्याधि से मुक्ति मिलती है।

एकविंशतिक गुग्गुलु का प्रयोग

चित्रकमूल, त्रिफला, सोंठ, कालीमरिच, छोटी पीपर, स्याहजीरा, अजवायन, वचा, सेंधा नमक, अतीस, कूठ, चव्य, इलायची, जवाखार, भाभीरंग, अजमोदा, मोथा, देवदारु और भद्रमुस्तक।

इनको बराबर की मात्रा में लेकर चूर्ण बनावें। चूर्ण के समान भाग में गूगुल मिलाकर घी के साथ घोंटकर वटिका बना लें। इस गोली को भोजन के समय खायें।

इस वटी के सेवन से अट्ठारह प्रकार के कुष्ठ, कृमिरोग, दुष्टव्रण, ग्रहणी, अर्श, मुखदोष, गलग्रह, गृध्रसीवात (सायेटिका), भग्न, गुल्मरोग, सूजन तथा समस्त प्रकार के कोष्ठगत रोग वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे विष्णु के शस्त्रप्रहार से दानव-समूह।

तिक्तषट्पल घृत का प्रयोग

नीम, परवल, दारुहलदी, दुरालभा, कटुकी और त्रिफला—इन सबको आधा-आधा पल एवं पित्तपापड़ा, त्रायमाण, ऋद्धि, आँवला और वचा—इनको १-१ पल लेकर काढ़ा बना लें। पकने पर आधा क्वाथ शेष रह जाने पर उसे छान लें। पुनः उसमें चंदन, चिरायता, मागधी, त्रायमाण, मोथा और इन्द्रयव। इनके आधा-आधा पल लेकर कल्क बना उसमें मिला दें।

तदनन्तर उसमें ६ पल नवीन घृत डालकर पुनः पका लें। इस घृत के पान से कुष्ठ, रक्तविकार, बवासीर, गलग्रह, सूजन, पामा, विसर्प, पिड़िका, कण्डू तथा अन्य प्रकार के रोग भी निर्मूल हो जाते हैं।

पञ्चतिक्तं घृत का प्रयोग

नीम, परवल, कटेरी, गुरुच और अडूसा। इनको १०-१० पल की मात्रा में कूटकर एक द्रोण जल के साथ पाचित करें। पककर चौथाई भाग शेष बचने पर उसमें त्रिफला का कल्क मिला १ प्रस्थ घी में पकावें।

भली-भाँति पकने पर इसको पंचतिक्त घृत कहा जाता है। इस घृत के प्रयोग से समस्त प्रकार के कुष्ठ, अस्सी प्रकार के वातरोग, ४० प्रकार के पित्तरोग, २० प्रकार के कफज रोग, दुष्टव्रण, कृमिजन्य रोग, अर्श तथा पाँच प्रकार की खाँसी का शीघ्र ही उन्मूलन हो जाता है।

तिक्तक घृत का प्रयोग

त्रिफला, हलदी, दारुहलदी, अडूसा, जवासा, पित्तपापड़ा की जड़, त्रायमाण, कूठ और नीम—इनके २-२ पल भाग को १ द्रोण जल में पका लें। पककर चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें छोटी पीपर, मोथा, चन्दन, त्रायमाण, कूड़ा और चिरायता— इन्हें २-२ अक्ष परिमाण में लेकर कल्क बना १ प्रस्थ घृत में पाक करें।

इस तिक्तक घृत के पान करने से कोढ़, ज्वर, अर्श, ग्रहणी, सूजन और पाण्डुरोग की समाप्ति हो जाती है।

महातिक्तक घृत का प्रयोग

सतौना, अतीस, अमलतास, कटुकी, पाठा, मोथा, खस, त्रिफला, परवल, नीम, पित्तपापड़ा, कोह, जवासा, लाल चंदन, छोटी पीपर, कमलागट्टा, हलदी, दारुहल्दी, कचूर, कूड़ा, शतावरी, दोनों सारिवा, वचा, इन्द्रयव, अडूसा, मरोड़फली, चिरायता, मुलेठी और त्रायमाण।

इनके सम भाग कल्क के चार भागों को ३२ भाग जल में पकावें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें १ प्रस्थ घी तथा २ प्रस्थ आँवलें को डालकर पुन: पका लें।

परिपक्व होने पर इस महातिक्तक घृत के सेवन से सभी प्रकार के कोढ़, रक्तपित्त, खूनी बवासीर, विसर्प, अम्लपित्त, वातरक्त, गठिया (गाँठों की पीड़ा, गाउट), विस्फोटक, पामा, उन्माद, ज्वर, कंडू, कामला, पांडु, हृदय के रोग, गुल्म (गाँठ), पिडिका, असृग्दर, गंडमाला (गलरोग) आदि अविलम्ब ही नष्ट हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त अनेक दुरूह रोग जो किसी प्रकार भी नहीं जाते वे भी इस महातिक्तक घृत के पान से सहज ही दूर हो जाते हैं।

महाखदिर घृत का प्रयोग

खदिर (खैर) ५०० पल, शीशम १०० पल, विजयसार १०० पल, करंज ५० पल, नीम ५० पल, बेंत ५० पल, पित्तपापड़ा ५० पल, कूजा ५० पल, विष ५०० पल, वायविडंग ५० पल, हलदी एवं दारुहलदी ५०-५० पल,

अमलतास ५० पल, गुरुच ५० पल, त्रिफला १५० पल, निशोथ ५० पल और सतौना ५० पल।

इन सबको कूट-पीसकर १० द्रोण जल डालकर पकावें। आठवाँ भाग शेष रहने पर उसमें ४ प्रस्थ घी तथा ४ प्रस्थ आँवले का रस और महातिक्तक घृत में कथित औषधियों का १-१ पल कल्क मिलाकर विधिवत् पाक करें।

इस महाखदिर घृत के पीने तथा शरीर पर मालिश करने से सभी प्रकार के कुष्ठों का उन्मूलन होता है।

गुग्गुलुपञ्चतिक्तक घृत का प्रयोग

नीम, गुरुच, अडूसा, कटेरी तथा पटोलपत्र—इन सबको १०-१० पल लेकर एक द्रोण जल में पकावें। पक कर आधा भाग शेष रहने पर उसमें गूगुल १० पल तथा १-१ पल पाठा, वायविडंग, देवदारु, गजपीपर, जवाखार, सज्जीखार, सोंठ, हलदी, चव्य, कूठ, मालकंगनी, मरिच, अजवायन, अजमोदा, चित्रक, कटुकी, भिलावाँ, वचा, छोटी पीपर और मंजीठ के कल्क को मिलाकर एक प्रस्थ घी में पाचित करें।

इस घृत से सम्पूर्ण प्रकार के कुष्ठ, गुल्म, अर्श, प्रमेह, क्षय, अरोचकता, श्वास, पीनस (नकसीर), खाँसी, शुष्कता, हृद्रोग, पाण्डुरोग, मदात्यय (मद्यपान के फलस्वरूप उत्पन्न रोग), विद्रधि तथा वातरक्तादि रोगों का शमन होता है।

वज्रक घृत का प्रयोग

अडूसा, गुरुच, त्रिफला, परवल, करंज, नीम, कोह, काला बेंत। इनके क्वाथ और कल्क द्वारा परिपक्व घृत को वज्रक घृत कहा जाता है।

इस घृत के सेवन से कुष्ठग्रस्त व्यक्ति के कान, हाथ-पैर, कंठ तथा अँगुलियों के विदीर्ण हो जाने पर वे अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ जाते हैं और कुष्ठी सौ वर्षों तक जीवन धारण करने में समर्थ होता है।

तृणक तैल का प्रयोग

मंजीठ, कूठ, हलदी, चकवँड़ और अमलतास के पत्ते—इनके कल्क को सुगंधितृण के क्वाथ में सरसों के तैल में पकाकर प्रयोग करने से कुष्ठ का निवारण होता है।

वज्रक तैल का प्रयोग

सतिवन, करंज, मदार, मालती, कनेर, सुगंधितृण, शिरीष और चित्रक। इन सबकी जड़ तथा करंज के बीज, त्रिफला, त्रिकटु, हलदी, दारुहलदी, सरसों, भाभीरंग और चकवँड़—इन सबको गोमूत्र में पीसकर कल्क बना लें।

इस कल्क को तैल में डालकर आग पर पकाने से वज्रक तैल का निर्माण होता है। इस तैल की मालिश करने से कुष्ठ, नाड़ीव्रण तथा दुष्टव्रण का विनष्टीकरण होता है।

महामरिचादि तैल का प्रयोग

कालीमरिच, निशोथ, दन्ती, मदार का दूध, गोबर, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, मांसी, कूठ, चन्दन, इन्द्रायण, कनेर, हरिताल, मैनसिल, चित्रक, पिठवन, भाभीरंग, चकवँड़, शिरीष, कूड़ा, नीम, सतौना, सेंहुड़, गुरुच, अमलतास, करंज, मोथा, खैर, छोटी पीपर, वचा और मालकंगनी—इन सबके १-१ पल और २ पल विष का कल्क बनाकर एक द्रोण गोमूत्र में ४ प्रस्थ सरसों के तैल को डालकर मिट्टी या लोहे के बरतन में धीमी आँच पर पका लें। पकने के अनन्तर इसे कुष्टग्रस्त रोगी के घावों पर लगायें।

इस तैल की मालिश करने के फलस्वरूप पामा, विचर्चिका, दाद, विस्फोटक, कंडू, वलीपलित, केश झड़ना, मुख पर झाई पड़ना, बुढ़ापा आना, नीली तथा व्यंग आदि रोगों का उन्मूलन हो जाता है।

इससे शरीर में कोमलता आती तथा मुख की कान्ति बढ़ती है। युवती नारियों द्वारा इस तैल के नस्य लेने से उनके स्तन सदैव ही कठोर बने रहते हैं।

इसके अतिरिक्त वातव्याधि से ग्रस्त वृषभ, हाथी-घोड़े आदि पशु भी रोगमुक्त होकर गतिशील बने रहते हैं।

विषतैल का प्रयोग

करंज, हलदी, दारुहलदी, मदार, तगर, कनेर, वचा, कूठ, सरिवन, लालचंदन, मालती, सतौना, मंजीठ और मेउड़ी। इन सबको आधा-आधा पल तथा १ पल विष को मिलाकर कल्क बना डाले।

इस निर्मित कल्क के साथ १ प्रस्थ तैल को ४ प्रस्थ गोमूत्र मिलाकर पका लें। इस तैल के शरीर पर मालिश करने पर श्वेत कुष्ठ, विचर्चिका, लूता, विस्फोटक, कण्डू, कपिकच्छू आदि सभी प्रकार के रक्तदोष का निवारण तथा व्रणों का शोधन होता है।

करवीरादि तैल का प्रयोग

सफेद कनेर की जड़ को विष के साथ गोमूत्र में मिलाकर पीस लें। तदनंतर उसमें तैल डालकर आग पर पका लें। पक जाने पर इसे छानकर मालिश करने से चर्मदल, सिध्म (सेहुआँ), कुष्ठ, पामा, विस्फोटक आदि कुष्ठ के सभी भेद दूर होते हैं।

अन्य प्रकार

सफेद कनेर का रस, गोमूत्र, चित्रक, विड्नमक और तैल। इन्हें एकीकृत पकाकर मालिश करने से कुष्ठ का नाश होता है। सभी चिकित्सकों का यही अभिमत है।

सिन्दूरादि तैल का प्रयोग

आधा पल सिन्दूर और एक पल जीरे को पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क में ८ पल सरसों का तैल मिलाकर आग पर पका लें। इस तैल के द्वारा पामा रोग का शीघ्र ही विनाश होता है।

महासिन्दूरादि तैल का प्रयोग

सिन्दूर, चंदन, मांसी, भाभीरंग, हलदी, दारुहलदी, प्रियंगु का पुष्प, कमलगट्टा, कूठ, मंजीठ, खदिर, वचा, चमेली का फूल, मदार, निशोथ, नीम, करंज, विष, छोटी पीपर, चित्रक लोध और चकवँड़—इन सबको एकीकृत कर लें।

तत्पश्चात इसे महीन पीसकर तैल में पकावें। इस तैल की मालिश शरीर पर करने से समस्त प्रकार के कुष्ठ, पामा, विचर्चिका (सोरायसिस), कच्छू और विसर्प आदि अनेक प्रकार के रक्तविकार का उन्मूलन होता है।

सिन्दूरा तैल की अन्य विधि

सिन्दूर, गूगुल, रसोत, मोम और तूतिया—इनका कल्क बना सरसों के तैल में पकाकर मालिश करने से कच्छू, पिड़िका तथा कुष्ठादि रोगों का निवारण एक बार में ही हो जाया करता है।

आदित्यपाक तैल प्रयोग

मंजीठ, त्रिफला, लाख (लाह) हलदी, पत्थरफूल और गंधक—इनके चूर्ण को तैल में मिलाकर धूप में रख दें। सूर्यताप से पका हुआ यह आदित्यतैल पामा का विनाशक होता है।

दूर्वादि तैल प्रयोग

दूब के रस में चौगुना तैल मिलाकर उसे आग पर पका लें और उसकी मालिश करें तो कच्छू, विचर्चिका और पामा आदि रोगों का विनष्टीकरण होता है।

अर्क तैल प्रयोग

मदार के पत्तों के रस में हलदी का कल्क तैयार करके सरसों के तैल में पका लें। इस तैल की मालिश करने से पामा, कच्छू, विचर्चिका आदि रोगों का निर्मूलन होता है।

गण्डीरिका तैल का प्रयोग

सेंहुड़, चित्रक, भँगरैया, मदार, कूठ की छाल और सेंधा नमक। इनका कल्क गोमूत्र में मिला कर तैल में पाचित कर लें।

इसके उपयोग से मंडल कुष्ठ, दाद, दुष्टव्रण, और किट्टिभ नामक कुष्ठ (लिप्रोसी) भी दूर हो जाता है।

कुष्ठग्रस्त व्यक्ति के लिए पुराने शालि चावल, कोदो, गेहूँ, यव, मूँग, तिक्त शाक तथा जंगली जानवरों के मांस ग्राह्य होते हैं।

कुष्ठी को कुष्ठ मिटाने के निमित्त समय-समय पर केश एवं नखों का कर्तन, नित्य औषध सेवन में तत्पर रहना आवश्यक होता है, किन्तु उसे मैथुन, मद्यपान एवं मांसभक्षण का परित्याग करना भी अनिवार्य कहा गया है।

उदर्द कोठशीतपित्त का उपचार

सर्वप्रथम यहाँ इन रोगों के लक्षण बतलाये जा रहे हैं। कफाधिक्य वाले शीतपित्त विकार को उदर्द तथा वाताधिक्य वाले शीतपित्त को शीतपित्तरोग कहा जाता है।

पित्तविकारों के फलस्वरूप वमन द्वारा निकलने वाले दूषित पदार्थ के अवरोध से उत्पन्न होने वाले रोग कोढ़ कहलाते हैं।

उदर्द रोग में सरसों के तैल की मालिश, गरम जल का सेंक तथा परवल और नीम के जल से वमन कराना गुणकारी होता है।

इसके निवारणार्थ त्रिफला, गूगुल और छोटी पीपर द्वारा विरेचन कर्म भी लाभप्रद होता है। इसके लिए ९ कर्ष परिमाण में त्रिफलाचूर्ण को शहद के साथ चाटना भी हितकर कहलाता है।

इसके अतिरिक्त विसर्प रोग में कथित प्रयोग भी इसमें अपनाना उचित होता है।

अथवा छोटी पीपर और रेंड़ का या लहसुन का उपयोग भी लाभकारी है।

गुड़ के साथ अजवायन का सेवन करने वाले व्यक्ति का व्यापक उदर्द भी नष्ट होता है।

सरसों, हलदी, चकवँड़ और काला तिल—इनके कल्क में सरसों का तैल मिलाकर शरीर पर मलना लाभकारी सिद्ध होता है।

दूर्वा और हलदी को एक साथ पीसकर बार-बार लेपित करने से पामा, कृमि, दाद और शीतपित्त का उन्मूलन होता है।

इस रोग के नष्टीकरण हेतु कुष्ठविनाशक तथा अम्लपित्तनिवारक प्रयोग भी करने चाहिए।

अथवा आँवलाचूर्ण के साथ नीम की पत्तियों को पीसकर प्रतिदिन घी मिलाकर चाटने से विस्फोटक, कुष्ठ, सद्योव्रण, शीतपित्त, कण्डू, अम्लपित्त तथा छर्दि आदि रोगों का शमन होता है।

प्रतिदिन प्रात:काल १ कर्ष गोघृत में आधा कर्ष कालीमरिच मिलाकर सेवन करने से शीतपित्त नष्ट हो जाता है।

कूठ, हलदी, दारुहलदी, सफेद पनिलर, परवल, नीम, असगंध, देवदारु, सहिजन, तुम्बुरु और धनिया—इन्हें समान भाग लेकर चूर्णित कर लें।

तदनन्तर उक्त चूर्ण को मट्ठे में मिलाकर तैल प्रलिप्त शरीर पर उबटन की भाँति मर्दन करें। इस प्रयोग से कंडू, पिड़िका, कुष्ठ, कोट, शोथ आदि निर्मूल होते हैं।

एलादि चूर्ण को तैल में मिलाकर उबटन लगाना भी गुणकारी है। ऐसे रोगियों को सदैव ही लवा और तीतर पक्षी के मांसरस के साथ पथ्याहार लेने चाहिए।

शीतपित्त रोग में बलाबल के विचार से शीतोष्ण पदार्थों का प्रयोग करना आवश्यक होता है।

अम्लपित्त का उपचार

वर्षाऋतु में विरुद्ध आहार-विहार के करने, गरिष्ठ भोजन, खट्टे और जलनकारी पदार्थों के सेवन से पित्तप्रकोप के कारण अम्लरोग की उत्पत्ति हुआ करती है।

इस रोग में कड़ुई और खट्टी डकार, हाथ-पाँव में जलन और भूख की कमी आदि लक्षण पाये जाते हैं।

इसके शमनार्थ पहले वमन तथा बाद में हलके दस्तावर प्रयोग करने चाहिए। वमन-विरेचन के पश्चात् रोगी को स्निग्धित करके स्नेहबस्ति कर्म करें।

इस रोग में वात और कफ का भी मिश्रण रहता है। अत: दोषानुसार ही औषध और पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिए।

इसके ऊर्ध्वगामी होने पर वमन तथा निम्नगामी होने की अवस्था में विरेचन कर्म करना उपयुक्त होता है। इसमें कटु पदार्थों के सेवन से अधिक लाभ होता है।

इसके लिए गेहूँ, शक्कर तथा मधुमिश्रित लावा का उपयोग करना अच्छा होता है। ऐसा करने से विष विकार साम्यावस्था में आ जाते हैं।

अम्लपित्त में सोंठ और परवल का काढ़ा बना कर पीने से पाचन और दीपन होता है।

इसके द्वारा वात-कफ, वमन, कण्डू, पामा, शूल, अम्लपित्त, ज्वर, विस्फोटक और जलन का निवारण होता है।

अथवा परवल, सोंठ और धनिया—इनके क्वाथ का पान करने से कण्डू, पामा तथा मंदाग्नि का नाश होता है।

इंद्रयव, परवल, छोटी पीपर—इनके काढ़ा में मधु मिलाकर पीने से अम्लपित्त, अरोचकता तथा वमन आदि दूर होते हैं।

अड़ूसा, गुरुच, पित्तपापड़ा, नीम, चिरायता, भँगरैया, त्रिफला और परवल। इनके क्वाथ में शहद डालकर पीने से अम्लपित्त का उन्मूलन होता है।

अथवा त्रिफला, परवल और कुटकी—इनके क्वाथ में शक्कर, मधु और मुलेठी मिलाकर पान करने से ज्वर, वमन और अम्लपित्त नियंत्रित होते हैं।

अड़ूसा, नीम, परवल, त्रिफला, विजयसार और जवासा—इनके क्वाथ के साथ क्रमशः गूगुल का प्रयोग करना कफाधिक्य वाले अम्लपित्त में लाभकारी होता है।

परवल, त्रिफला और नीम— इनका काढ़ा मधु मिलाकर पीने से कफ, वमन, जलन और शूल आदि रोगों का शमन होता है।

गुड़, छोटी पीपर और हरड़—इनको समान भाग में मोदक बनाकर खाने से पित्त-कफ का विनाश और क्षुधाग्नि का वर्धन होता है।

नीम का पंचांग (फल, फूल, पत्ती, छिलका और जड़) १ भाग, विधायरा २ भाग और शक्करमिश्रित सत्तू १० भाग।

इनके चूर्ण का सेवन शीतल जल के साथ करने पर वात, कफ और शूल का विनष्टीकरण होता है तथा मधु के साथ चाटने से भीषण अम्लपित्त पर नियंत्रण होता है।

कालाजीरा और धनिया के कल्क को १ प्रस्थ घी में पकाकर खाने से कफ-पित्त, अरोचकता, वमन, मिचली तथा अग्निमांद्य का उन्मूलन होता है।

परवल और सोंठ का कल्क अथवा केवल परवल के कल्क को १ प्रस्थ घी में पाचित कर लें।

इस घृत के सेवन से कफ-पित्त का निवारण होता है। छोटी पीपर का कल्क या क्वाथ को घी में पका लें।

प्रतिदिन प्रातःकाल इसमें मधु मिलाकर पान करने से अम्लपित्त का दमन होता है।

मुनक्का, गुरुच, इन्द्रयव, परवल, सौवीर, आँवला, सरल वृक्ष का गोंद, लालचंदन, त्रायमाण, कमलगट्टा, चिरायता और धनिया।

इनके कल्क को घृत में पकाकर भोजनकाल में मात्रा के अनुसार सेवन करने के फलस्वरूप बलास, पित्त, ग्रहणी, खाँसी, मंदाग्नि, ज्वर तथा अम्लपित्त आदि रोग निर्मूल हो जाते हैं।

शतावरी के कल्क के साथ १ प्रस्थ घी, १ प्रस्थ जल और ४ प्रस्थ दूध मिलाकर धीमी आग पर पका लें।

इसके सेवन से अम्लपित्त, वातज-पित्तज रोग, रक्तपित्त, पिपासा, मूर्छा, श्वास तथा संताप आदि सभी निर्मूल होते हैं।

इसके अतिरिक्त कफ-पित्तनिवारक उपाय, गुडकूष्माण्डकयोग तथा खंडामलक योग के प्रयोग भी किये जाने चाहिए। इससे रक्तपित्त में अधिक लाभ होता है।

गुड़ और दूध में छोटी पीपर डालकर घी में पकाकर सेवन करना भी लाभप्रद सिद्ध होता है।

अम्लपित्त का रोगी स्वयं को अग्नि में दग्ध होता हुआ-सा अनुभव करता है। अम्लपित्त रोग में पित्त का संशोधन होना परमावश्यक है। शोधन के अभाव में कभी शान्ति नहीं मिलती।

अतएव रोग की नवीनता और जीर्णता आदि सभी अवस्थाओं में वमनकर्म अत्यंत आवश्यक कहा गया है।

क्षीर पिप्पली

छोटी पीपर का चूर्ण ३२ तोला, घी ६ पल, शतावरी का रस ८ पल, खाँड़ २ प्रस्थ तथा दूध २ प्रस्थ। इन सबको किसी पात्र में एकीकृत करके पका लें।

पक जाने पर इसमें इलायची, दालचीनी, तेजपात, मोथा, धनिया, सोंठ, जटामांसी, श्वेतजीरा, स्याहजीरा, हरड़, आँवला, कालीमरिच, नागकेशर और खदिर का गोंद। इन सबको चूर्णित कर १९ माशा परिमाण में मिला लें।

इस क्षीरपिप्पली के उपयोग से पीड़ा, अरुचि, हृद्दाह, वमन, पित्त तथा अम्लपित्त आदि सभी रोग नष्ट होते तथा क्षुधाग्नि का वर्धन होता है।

विसर्पविस्फोटक का उपचार

इस रोग में आग से जलने के समान शरीर पर फफोले निकलते हैं और उनमें सर्पदंश के समान जलन की अनुभूति होती है। इसी को विसर्प रोग के नाम से जाना जाता है।

इसके लिए दोषानुसार वमन, विरेचन,सिंचन, लेपन, रक्तनिष्कासन तथा शीतल उपचार करना उचित है। इसमें परवल, नीम, छोटी पीपर, मैनफल और इन्द्रयव—इनके द्वारा वमन कराना उत्तम है।

निशोथ और त्रिफला रसमिश्रित घृत का प्रयोग विरेचन हेतु करें।

अथवा आँवला रस में घृत मिलाकर देने से विसर्प की शांति होती है।

पंचमूल की पंच औषधियों में से तृण के अतिरिक्त शेष चार औषधियों का प्रयोग करने से भी लाभ होता है।

वातज विसर्प में सौंफ, मोथा, वाराहीकन्द, अड़ूसा, नीली कटसरैया, धनिया, हलदुआ, सहिजन और कूठ का लेप शरीर पर करें।

पित्तज विसर्प में चकवँड़, मंजीठ, खस, चंदन, कमलगट्टा, मुलेठी और नीलकमल—इनकों दूध में पीसकर लेपित करें।

पंचकल्क द्वारा लेप और सेंक करना लाभदायक होता है। अथवा कमलगट्टा, खस, जलसीपी और चंदन का लेप लगाना भी उत्तम फल देता है।

अथवा कमलिनी का शीतल कीचड़ मोती-मूँगा, शंख या सीपी का चूर्ण और गेरू—इनमें से किसी एक के चूर्ण को घी में मिलाकर लेप लगाने से विसर्प रोग का शमन होता है।

अथवा बरगद की जटा, भद्रमोथा, केले की भीतरी नलिका, कमलनाल की गाँठ—इनके कल्क को शतधौत घृत में मिलाकर लेप लगाना लाभप्रद सिद्ध होता है।

रेणुका, यव, मसूर, मूँग और शालिधान्य—इनमें से किसी एक या सभी के मिश्रित कल्क में घी मिलाकर लेपित करें।

मुनक्का, अमलतास, गंभारी, त्रिफला, खाँड़, पीलु या निशोथ और हर्रें।

इनके द्वारा विरेचन देने से पित्तज विसर्प में शोधन का कार्य होता है।

खदिर, सतौना, मोथा, अडूसा, अमलतास, देवदारु और केवटीमोथा का लेप कफज विसर्प में लाभकारी सिद्ध होता है।

सोनामाखी, असगंध, विधायरा या मंजीठ, शतावर या मेढ़ासिंगी को गोमूत्र में पीसकर लेप लगाने से कफज विसर्प नष्ट होता है। मैनफल, मुलेठी, नीम, इन्द्रयव—इनके योग से वमन कराना कफज विसर्प में लाभकारी है।

त्रिफला, कमलगट्टा, खस, मंजीठ, कनेर, नरसल की जड़ और दूब—इन्हें पीसकर लेप लगाना विसर्प रोगनाशक होता है।

अमलतास के पत्ते, लिसोड़ा की छाल, शिरीष के फूल और कौआडोंडी। इनके कल्क का लेप लगाना विसर्प में गुणकारी है।

मोथा, नीम और परवल अथवा आँवला, परवल के पत्ते और मूँग का काढ़ा घी के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के विसर्प का उन्मूलन होता है।

गुरुच, अडूसा, पटोलपत्र, नीम की पत्ती, त्रिफला, खैर का गोंद और अमलतास—इन्हें बराबर की मात्रा में लेकर काढ़ा बना उसमें गूगुल मिलाकर पीने से विष, विसर्प और अट्ठारह प्रकार के सभी कुष्ठ निर्मूल होते हैं।

गुरुच, अडूसा, परवल के पत्ते, मोथा, सतौना, खैर, नील और नीम की पत्ती और हलदी। इनका काढ़ा बनाकर पीने से अनेक प्रकार के विष, कुष्ठ, विसर्प, विस्फोटक, कण्डू, मसूरी रोग तथा शीतपित्तज्वर में लाभ होता है।

परवल के पत्ते, गुरुच, चिरायता, अडूसा, नीम, पित्तपापड़ा, खदिर और

मोथा। इनका क्वाथ पीना विस्फोटक की वेदना और ज्वरविनाशक सिद्ध होता है।

परवल के पत्ते, त्रिफला, नीम, गुरुच, मोथा, चंदन, मरोड़फली, कटुकी, पाठा, हलदी और दुरालभा—इनके कषायपान से कफ-पित्तज्वर, कण्डू (खुजली के दाने), चर्मदोष, विस्फोटक, विष और विसर्प का अपकर्षण होता है।

चिरायता, अडूसा, कटुकी, परवल, त्रिफला, चंदन और नीम। इनका कषाय पीने से विसर्प, जलन, ज्वर, मुख का सूखापन, विस्फोटक, पिपासा तथा वमन का निवारण होता है।

कफपित्तोत्पन्न विसर्प में गूगुल के साथ त्रिफला अथवा दुरालभा, पित्तपापड़ा, परवल और कटुकी—इनका गुनगुना क्वाथ या खदिराष्टक क्वाथ में गूगुल मिलाकर पीना रोगापकर्षक होता है।

गुरुच, नीम, खदिर और इन्द्रयव—इनके कषायपान से विस्फोटक उसी प्रकार दूर हो जाता है।

जिस प्रकार प्रबल झंझावात से मेघसमूह तितर-बितर हो जाया करते हैं। रोगी व्यक्ति नीरोग होकर इससे उसी प्रकार शोभित हो उठता है जिस प्रकार दीपक के प्रकाश से गृह की शोभा बढ़ती है।

शिरीष, रेंड, तगर, जटामाँसी, हलदी और कमल—इन्हें बराबर भाग में लेकर जल में पीस डाले और लेप लगायें तो सभी प्रकार के विस्फोटक दूर होते हैं।

शिरीष वृक्ष की जड़, मंजीठ, चव्य, आँवला, मुलेठी, चमेली के पत्ते और मधु का कवल धारण करना विस्फोटक में लाभप्रद होता है।

शिरीष, गूलर, जामुन या लिसोड़ा की छाल के द्वारा लेपन और सेचन करना उपयोगी सिद्ध होता है।

शिरीष, मुलेठी, तगर, चंदन, इलायची, जटामांसी, इन्द्रयव, कूठ और सुगन्धवाला—इन दश पदार्थों को पीसकर घृत के साथ लेप लगाने से विसर्प, ज्वर, कण्डू तथा विस्फोटक आदि दूर होते हैं।

शिरीष, खस, नागकेशर, और बालछड़। इनको लेपित करने से शीघ्र ही विसर्प, विष और विस्फोटक नष्ट होते हैं।

अडूसा, खैर, परवल के पत्ते, नीम की छाल, गुरुच और आँवला—इनके कषाय में इनका कल्क डालकर गाय के ताजा घृत में पका लें।

इस घृत के सेवन से विसर्प, विस्फोटक, कुष्ठ और गुल्म रोग का निवारण होता है। परवल के पत्ते, सतौना, नीम, अडूसा, त्रिफला और गुरुच—इनके साथ पकाया हुआ घृत पंचतिक्त कहा जाता है।

इस घृत के द्वारा तत्क्षण ही त्रिदोषज विस्फोट, विसर्प तथा कण्डू आदि रोग निर्मूल होते हैं।

विशेष सूचना—इन दिनों भारत सरकार का स्वास्थ्य मंत्रालय भी कुष्ठ उन्मूलन के क्षेत्र में तत्परतापूर्वक कार्य कर रहा है जिसके अंतर्गत सभी सरकारी स्वास्थ्य केन्द्रों से कुष्ठविनाशक एम.डी.टी. की टिकिया निःशुल्क उपलब्ध करायी जाती है।

मसूरिका (चेचक) रोग का उपचार

वातज कोप से रक्त प्रदूषित होकर जब शरीर के अवयवों पर मसूर के समान अगणित फुंसियों की उत्पत्ति कर देता है तब उसी को मसूरिका कहा जाता है।

इस रोग में परवल, नीम, अड़ूसा के कषाय में वचा, कूड़ा, मुलेठी और मैनफल—इनके कल्क को मिलाकर वमन कर्म कराना चाहिए। अथवा ब्राह्मीरस में हुलहुल के पौधे का रस डालकर मधु के साथ पिलावें। वमनोपरांत रेचन करके ही चिकित्सा में तत्पर हैं।

करेला के पत्तों का काढ़ा बनाकर उसमें हलदी का चूर्ण मिलाकर पान करें। अथवा रोहन्ती का काढ़ा पीवें।

ऐसा करने से ज्वर, विस्फोटक, : सूरिका आदि रोगों का शमन होता है।

वमन-विरेचन से संस्कारित मसू .का रोगी में वेदना कम होती है और उसकी फुंसियाँ भी शीघ्र पक्वावस्था में आ जाती हैं।

कुछ मसूरिकाएँ ऐसी होती है जो विना किसी प्रकार की चिकित्सा किये ही ठीक हो जाती हैं, किन्तु कुछेक अनेक उपायों से भी ठीक नहीं होती।

इसकी कुछ फुंसियाँ काली होती हैं और कुछ पीछे की ओर काली घनी हुआ करती हैं। ऐसी फुंसियों का दमन होना संदेहजनक होता है, किन्तु कुछ तो लाखों यत्न करने के बाद भी ठीक नहीं हो पातीं।

हलदी, दारुहलदी, खस, शिरीष, नागरमोथा, नीम, चंदन और नागकेशर—इनका लेप लगाने से पसीना, विस्फोटक, विसर्प, कुष्ठ, दुर्गन्धि तथा रोमहर्षण आदि औपद्रविक लक्षण विलुप्त हो जाते हैं।

नीम, तिरिच्छ, सालसा, इमली और बेंत—इनके छिलके से निकाले हुए जल को ठण्ढा करके फुंसियों का प्रक्षालन करें।

तंडुली, मोथा, अड़ूसा, धनिया, जवासा, चिरायता, नीम, कटुकी और पित्तपापड़ा। इनके जल का पान करने से मसूरिका, विस्फोटक तथा ज्वर का विनाश होता है। मसूरिका के पकने पर उसे सुखा लेना आवश्यक है।

क्षुद्ररोग का उपचार

अनेक प्रकार के छोटे-छोटे रोगों में एक अजगल्लिका रोग (बच्चों के शरीर पर निकलने वाली गाँठ के समान चिकनी फुँसी) भी होता है।

इस रोग की प्रारंभिक अवस्था में जोंक लगाकर प्रदूषित रक्त का निष्कासन कर देना आवश्यक होता है। तदनन्तर सीप और सौराष्ट्र मिट्टी को दूध में पीसकर बार-बार उन पर लेपन करें।

अनुशयी रोग (पैरों में निकलकर भीतर-ही-भीतर पक जाने वाली पिडिका) में कफज विद्रधि में प्रयुक्त होने वाली औषधियों को काम में लायें।

इसके अतिरिक्त विवृता (पके हुए गूलर के समान मंडलाकार फुंसी), इन्द्रगर्भा (कमलाकृति वाली फुंसी), गर्दभिका (मंडलाकार रूप में फुंसियों से युक्त फोड़ा), जालगर्दभ (विसर्प के सदृश विस्तरित होने वाली पाकरहित सूजन), इरिवेल्लिका (चमड़े में उत्पन्न होने वाली एक प्रकार की बड़ी फुंसी)—इन सब रोगों की चिकित्सा पित्तजन्य विसर्प की भाँति की जानी चाहिए।

उनके व्रणों को शमन मधुर औषधियों के मिश्रण से पाचित घृत के द्वारा करें।

विदारिका (जाँघ वंक्षण की संधि में बिदारीकंद के समान उत्पन्न होने वाला गोलाकार फोड़ा) में रक्तमोक्षण, रक्तावसेचन, स्वेदन, अवतर्पण आदि कर्मों के अनन्तर सहिजन और देवदारु का लेप लगाकर उन्हें नियंत्रित करना चाहिए।

इस प्रकार पनसिका नामक कर्णरोग और कच्छपिका नामक गाँठदार फुंसियों की भी चिकित्सा करणीय होती है।

इसी भाँति व्रातादि दोषोत्पन्न अन्यान्य रोगों की भी चिकित्सा करनी चाहिए। अंधालजी नामक फुंसी तथा कच्छपिका और पाषाणगर्दभ (ठोड़ी की संधि में होने वाली फुंसी) नामक रोग को स्वेदित करके देवदारु, मैनसिल और कूठ का लेप लगाया अथवा पूर्वोक्त कफवातजन्य शोथ में कथित औषधों का प्रयोग इस रोग में भी करें।

वल्मीक रोग (गरदन, कंधा, कोख और गले में निकलने वाली सर्पविवर की भाँति गाँठ) में शस्त्रोच्छेदन कर अग्नि द्वारा दग्ध करें।

मैनसिल, भिलावाँ, छोटी इलायची, अगरु, लालचंदन तथा चमेली की पत्तियों का कल्क बना उसमें नीम का तैल डालकर पका लें।

उक्त तैल के उपयोग करने से अनेक छिद्रों वाले औपद्रविक वल्मीक रोग का निवारण होता है। पाददारी नामक रोग (पैर के तलुओं का फटना) मेंपादतलों के शोधक शिरा का भेदन करें।

तदनन्तर पैरों को स्निग्धित और स्वेदित करके मोम, चरबी, मज्जा, घी और जवाखार का लेप लगायें।

नागकेशर और सेंधा नमक के चूर्ण को मधु, घी और सरसों का तैल मिलाकर पैरों को धोये। पोई शाक के पत्ते,नीम के पत्ते, सफेद सरसों, केले का मोचा, पेठा और ककड़ी को जलाकर उसके क्षारजल के साथ नमक तथा तैल को पकाकर लगाने से पैर के तलुओं का फटना बंद हो जाता है।

अलस रोग (पैर की उँगलियों के नीचे कीचड़ में सने होने के कारण खुजली होना) में दोनों पैरों को कुछ देर तक कांजी में भिंगोकर रखने के अनन्तर परवल के पत्ते, नीम की पत्ती, कसीस और त्रिफला को पीसकर लेपित कर दें।

करंज के बीज, कसीस, हलदी, मुलेठी, मधु, रोचना और हरिताल— इनका लेप लगाने से अलस रोग नष्ट होता है।

कदर रोग (पैरों में काँटे आदि के चुभने से उनमें होने वाली कील के समान उभार) में संयंत्र द्वारा विदीर्ण कर गरम तैल या आग से दग्ध कर दें।

चिप्प नामक नाखून के रोग में गरम जल से स्वेदित कर उस स्थान को छेद डाले तथा तैल से तर करके उस पर राल व चूर्ण भुरभुरा दें एवं व्रणशोथ के समान उपचार करें।

विचारपूर्वक कार्य करने पर ही कार्यो में सफलता मिलती है। किसी लौहपात्र में हलदी के रस में हरड़ को घिसकर बार-बार चिप्प पर लेप लगाना लाभदायक होता है।

पाद्मिनी कंटक रोग (कमल के काँटों के समान परिव्याप्त गोल मंडलाकार पीतवर्णीय फोड़ा) में नीम के जल से वमन तथा उसके काढ़े में पाचित घृतपान करना लाभकारी है।

अथवा नीम और अमलतास को पीसकर उबटन मलना भी गुणकारी होता है।

अहिपूतनक रोग (बच्चों के अस्वच्छ मलद्वार पर निकलने वाली छत्राकार फुंसी) में पहले घाव को शुद्ध करने के बाद त्रिफला और खदिर के काढ़ा से प्रतिदिन धुलाई करते रहें तथा करंज और त्रिफला को पीसकर घृत में पका लें एवं बालकों पर प्रयुक्त करें।

अहिपूतनक रोग में मुख्यत: रसोत का पान और लेप उत्तम फलदायी होता है।

गुदभ्रंश रोग (गुदा का बाहर आ जाना, काँच रोग) में तैल लगाकर पहले गुदा को अन्दर प्रविष्ट करायें।

गुदा के अंदर जाने पर उसे कौपीन से रोककर स्वेदित करे।

कमलिनी की कोमल नाल में शक्कर मिलाकर खाने से कभी गुदभ्रंश होने की संभावना नहीं रहती तथा क्षुधाग्नि भी बढ़ती है।

अम्लबेंत, चित्रक, अम्ललोन, सोंठ, पाठा और यवाग्रज। इन्हें मट्ठे के साथ पीने से गुदभ्रंशी की क्षुधाग्नि बढ़ जाती है।

गाय की चरबी को मलद्वार पर रगड़ने से बाहर निकली हुई गुदा अपने स्थान पर जाकर स्थिर हो जाती है।

अथवा चूहे की चरबी द्वारा गुदाद्वार पर लेप लगाना या पके हुए मूषकमांस द्वारा स्वेदन करना चाहिए।

अम्ललोना, बेर, कांजी, सोंठ और जवाखार—इनके कल्क में घी को पकाकर लगाने से गुदभ्रंश का निवारण होता है।

बृहत्पंचमूल और आँतरहित चूहे को दूध में डालकर उसे वातविनाशक औषधियों के साथ तैल में पका लें।

इस तैल के मालिश करने और पीने से गुदभ्रंश विनष्टीकरण होकर रोगी में बलवर्धन होता है।

अवपाटिका नामक रोग (शिश्नमुंड के आच्छादक चमड़े का फटना) से स्नेहन और स्वेदन कर्म द्वारा किया जाने वाला उपचार लाभकारी होता है।

इसके अतिरिक्त चर्मकील और जन्तुमणि रोग (शरीर पर पड़ने वाला स्वाभाविक चिह्नविशेष, लच्छन), मस्से और तिलकालक (तिल का दाग) रोग में संयंत्र से विदीर्ण का क्षार तथा अग्नि प्रयोग द्वारा दग्ध कर दें।

तरुणपिडिका न्यच्छ, नीली, व्यंग (झाई।), शर्करा आदि रोगों में शिरोभेद, अभ्यंग तथा लेप आदि के द्वारा चिकित्सा करें।

लोध, धनिया और वचा को पीसकर लेपित करने से तरुणपिड़िका रोग दूर होता है।

सरसों, वचा,लोध और सेंधा नमक—इनकों पीसकर मुख पर लेप लगाने तथा वमन लेने से युवावस्था की पिड़िकाएँ (मुहाँसा) नष्ट होती है।

व्यंग रोग में अर्जुन की छाल या मंजीठ को शहद के साथ, और सफेद घोड़े के खुर का भस्म बना मक्खन से निकाले गये ताजा घी में मिलाकर लेप लगाना उचित कहा गया है।

लाल चंदन, मंजीठ, कूठ, लोध, प्रियंगु का पुष्प, बरगद का अंकुर और मसूर-—इनको पीसकर मुख पर मलने से मुख का सौन्दर्य बढ़ता है।

व्यंग रोग पर खरगोश के रक्त का अथवा सेमल वृक्ष के काँटों को मुख पर लेपित करना लाभदायक है।

इस लेप को तीन दिनों तक गर्भिणी नारी के मुख पर मलने से मुख की छाहीं मिट जाती है।

मसूर के कल्क को दूध में मिलाकर घी में भून कर सात दिन मुख पर लेप लगाने से मुख कमलवत् हो उठता है।

काली अगरु, नीलकमल, कच्चे दही की मलाई, बेर की गुठली, प्रियंगु का फूल—इनको पीसकर एक सप्ताह मुख पर मलने से चेहरे में निखार आ जाती है।

सफेद सरसों, हलदी, दारुहलदी, मंजीठ, गेरू और बकरी का दूध। इन्हें पीसकर मुख पर लेपित करने से मुख की शोभा बढ़ती है।

परिपक्व दही की मलाई, नीलकमल के पत्ते, कूठ, चंदन और खस। इनके लेप से मुख की कान्ति बढ़ती तथा भौंहों के तिल नष्ट होते हैं। हलदी, दारुहलदी, मुलेठी, काला अगरु, कटुचंदन, चकवँड़, मंजीठ, कमल, कमलगट्टा, कुंकुभ, कैथ फल, तेंदू, पकड़ी और बरगद।

इनके पत्तों को पीसकर लेप लगाने और मलने से विप्लव, नीलिका, व्यंग तथा तिल आदि चिह्नों का विनष्टीकरण होता है तथा मुख का सौन्दर्यवर्धन होता है।

प्रियंगु का फूल, मंजीठ, चंदन, कमल और केशर—इनका कल्क बना मुलेठी के काढ़ा में ३२ तोले तैल मिलाकर पकावें। पकने पर इसे कनकतैल कहा जाता है।

इसके मालिश से विक्लेद, नीलिका, व्यंग आदि रोग नष्ट होते हैं और चेहरे पर निखार आ जाता है।

मंजीठ, मुलेठी, लाह और बिजौरा नीबू—इन सबके कल्क १-१ कर्ष, तैल ३२ तोले और बकरी के दूध को ६४ तोले डालकर धीमी आँच पर पका लें। इस तैल के मर्दन से नीली, तरुणपिडिका तथा व्यंग आदि दूर होते हैं।

इस तैल के एक सप्ताह मालिश करने के फलस्वरूप वलीपलित तथा विरूपता आदि का निवारण होकर मुख की चमक बढ़ जाती है।

कुंकुम, लालचंदन, लाख, मंजीठ और मुलेठी—इनके अलग-अलग २-२ कर्ष कल्क के साथ ३२ तोले तैल और ६४ तोले बकरी के दूध को मिलाकर मंद अग्नि पर पाचित कर लें।

भलीभाँति पाक हो जाने पर इसका मर्दन मुख पर करें। इसे कुंकुमादि तैल के नाम से जाना जाता है।

इसके द्वारा नीलिका, पिड़िका तथा व्यंग आदि सभी प्रकार के मुख रोग दूर होते तथा मुख पूर्णतया निर्मल हो जाता है। इसका निर्माण पूर्वकाल में देववैद्य अश्विनीकुमारों ने किया था।

द्विनिशाद्य तैल का प्रयोग

हलदी, दारुहलदी, गोरोचन, कमल, नीलकमल, मैनसिल, काकोल्यादिगण— इनके अक्ष परिमाण कल्क को लाह के रस में दूध मिलाकर एक प्रस्थ तैल में पका लें।

इस द्विनिशादि तैल को मुख पर मलने से मुख की कांति स्वर्ण के समान हो उठती है जिसे देखने वाले बरबस ही आकृष्ट हो जाया करते हैं।

सचमुच ही यह तैल एक वशीकरण की भूमिका निभाता है। अरुंषिका रोग (शिर की खोपड़ी में अनेक छोटी-छोटी फुंसियों का निकलना) में सबसे पहले शिराभेदन करके जोंक द्वारा रक्त का निष्कासन करा दें।

तदनंतर नीम के काढ़े से शिर को धोकर घोड़े की लीद और सेंधा नमक मिलाकर शिर पर लेप कर दें।

अथवा पुराने सरसों की खली और मुरगे की बीट को गोमूत्र में पीसकर लेप लगायें। ऐसा करने से शीघ्र ही अरुंषिका का निवारण होता है।

हलदी, दारुहलदी, चिरायता, त्रिफला, नीम और चंदन—इन्हें तैल में मिलाकर पका लें और शिर पर मालिश करें।

दारुण रोग में शिराओं को स्निग्धित और स्वेदित करके उनका भेदन करें। इसके साथ ही अवपीड़, शिरोबस्ति तथा अभ्यंग आदि का भी प्रयोग करने से लाभ होता है।

कोदो नामक अन्न की पत्ती के क्षार को जल में मिलाकर शिर को धो डालें और शहद के साथ शिर पर लेपित करें। इस प्रयोग से दारुण रोग में लाभ मिलता है।

मालती, कनेर, चित्रक और करंज—इनको तैल में पकाकर मालिश करने से इंद्रलुप्त नामक रोग (शिर पर बालों का न उगना) नष्ट हो जाता है।

सेंहुड़ और मदार का दूध, भँगरैया, पिठवन, विष, बकरी तथा गाय का मूत्र, राई और इन्द्रायण। इनके कल्क को सरसों के तैल में धीमी आँच पर उसके गाढ़ा होने तक पका लें।

इस तैल का लेप लगाने से कछुए की पीठ के समान खुरदुरी और रूखी रोमतस्करी (बालों को चोरने वाली कूरी) रोग तथा अत्यन्त रोमावलीयुक्त ऋक्षशावा रोग भी दूर होना है।

त्रिफला, मंडूर, जटामांसी, भँगरैया, कमल, सारिवा और सेंधा नमक—इन्हें तैल में पकाकर शिर में लगाने से झड़े हुए बाल पुन: आने लगते हैं।

चित्रक, दन्ती की जड़ और तोरई—इनके कल्क द्वारा पकाया गया तैल केश-संबंधी रोगों को नष्ट करता है।

अथवा भँगरैया के रस में गुंजाफल (घुघुँची) का कल्क मिलाकर तैल पकावें। यह तैल, कंडू, दारुण रोग, कोढ़ तथा कपाल रोगों का उन्मूलक होता है।

भँगरैया का चूर्ण, त्रिफला, नीलकमल,सारिवा, मंडूर और जल—इन्हें तैल में पकाकर लगाने से दारुण रोग नष्ट होता तथा शिर के विरल केश भी सघन हो जाते हैं।

पुंडरिया, मुलेठी, छोटी पीपर, लालचंदन और नीलकमल—इनके १-१ कर्ष भाग को ३२ तोले तैल तथा ६४ तोले आँवले के रस में मिलाकर पका लें और मालिश करें तो समस्त प्रकार के शिरोरोग का निवारण होकर वलीपलित रोग भी नष्ट होता है।

मुलेठी, नीलकमल, मरोड़फली, काला तिल, घृत, गाय का दूध, और भँगरैया—इनको पीसकर लेप लगाने से शिर के केश अल्पावधि में ही घनीभूत और कोमल हो जाते हैं।

चंदन, मुलेठी, मरोड़फली, त्रिफला, नीलकमल, प्रियंगु का फूल, बरगद के अंकुर, गुरुच, मीठा विष, मंडूर, भूतकेश और दोनों सारिवा—इनके कल्क को भँगरैया के रस में तैल मिलाकर मंद अग्नि पर पका शिर पर मालिश करने से शिर के विरल बाल पुन: उत्पन्न होकर घने और भौंरे के समान काले बन जाते हैं।

मुलेठी और आँवले के रस में दूध को पकाकर नस्य लेने पर शिर तथा दाढ़ी के बाल उग आते हैं।

हाथी दाँत के भस्म को दारुहलदी के रस में भिंगोकर लेप लगाना हाथ-पैर के तलुओं में भी रोमोत्पादक होता है।

अथवा त्रिफला, कमलिनी के पत्ते, मंडूर और भृंगराज—इन्हे बकरी के मूत्र में पीसकर लेप लगाने पर केश श्यामवर्ण के हो जाते हैं।

त्रिफलाचूर्ण, मंडूर और भँगरैया को अधपके नारियल के अंदर एक महीने तक रख छोड़े। तत्पश्चात् उसे बाहर निकाल शिर के बालों को छीलकर उसका लेप लगा दें और उसके ऊपर से केले का पत्ता लपेट दें। एक सप्ताह के अनंतर उसे खोलकर त्रिफला क्वाथ से धो डालें। इसके प्रयोगकाल में प्रयोक्ता को दूध और मांसरस का आहार लेना आवश्यक है। केशों को काला बनाने के लिए यह एक सर्वोत्तम उपाय कहा गया है।

नीलकमल को दूध में मिलाकर एक महीने तक भूमि में स्थापित कर रखें। तदनंतर उसे शिर में प्रयोग करने से बाल काले और चिकने हो जाते हैं। इससे बेहतर अन्य कोई प्रयोग नही है।

लौहकिट्ट, आँवले तथा जया पुष्प के कल्क को लगाकर प्रतिदिन नहाने वाला व्यक्ति पलित रोग (केशों की श्वेतता) से विमुक्त हो जाता है।

अथवा नीम के तैल का एक महीने तक नस्य लेने से पलित रोग का विनाश होता है। इसके प्रयोगकाल में दुग्धाहार लेना चाहिए।

भँगरैया का रस १ प्रस्थ तथा दूध १ प्रस्थ लेकर उसमें मुलेठी और नीलकमल का कल्क ३२ तोले मिला कर तैल पका लें। इस तैल के नस्य से भी उक्त फल की प्राप्ति होती है।

कसीस, गोरोचन, हरिताल और रसोत—इन्हें सम भाग में लेकर लेप लगाने से वृषकंडू तथा अहिपूतन रोग निर्मूल होते हैं।

परवल के पत्ते, त्रिफला और रसोत—इनके साथ घी को पकाकर उस घृत का पान करने से भी अहिपूतन रोग का विनष्टीकरण होता है।

मुखरोग का उपचार

वातोत्पन्न प्रकोप से होंठ फटने पर राल से लेप लगाना लाभप्रद होता है। इसके साथ ही वातविनाशक पदार्थों से पाचित तैल का नस्य लेना तथा मस्तिष्क पर मालिश करना उचित होता है।

इस रोग में स्वेद, मर्दन, स्नेहपान तथा रासायनिक योग भी लाभकारी सिद्ध होते हैं।

सभी रोगों में देशकालादि का विचार अतिआवश्यक होता है।

धूपसरल, साल की राल,गूगुल, देवदारु और मुलेठी—इनके चूर्ण से प्रतिसारण कर्म करने चाहिए।

पित्तोत्पन्न ओष्ठप्रकोप में शिराभेदन, वमन, विरेचन, तिक्त औषधों का पान, रसयुक्त भोज्य पदार्थ,शीतल प्रलेप, शीतल परिषेक आदि कर्म भी लाभदायक होते हैं।

रक्तपित्त तथा चोट आदि लगने से उत्पन्न ओष्ठ रोगों में जोंक द्वारा रक्तमोक्षण कराने के अनंतर पित्तविद्रधि रोग की चिकित्सा अपनानी चाहिए।

इसी प्रकार कफोत्पन्न ओष्ठरोग में जोंक द्वारा रक्त निष्कासित कराकर शिरोविरेचन, धूम, स्वेद और कवलग्रह धारण आदि कर्म उपयोगी होते हैं।

त्रिकटु, सज्जीखार और जवाखार—इनके साथ मधु मिलाकर प्रतिसारण करने से लाभ मिलता है।

मेदोत्पन्न ओष्ठरोग में शोधन और स्वेदन के पश्चात् अग्नि से दग्ध करना हितकर होता है।

प्रियंगु का पुष्प, त्रिफला और लोध—इनको मधु में मिलाकर प्रतिसारण कर्म करें। इसके साथ ही त्रिफलाचूर्ण का मधु के साथ लेप लगाना उपयोगी होता है।

शीताद रोग (दाँतों की जड़ से रक्त प्रवाह होना तथा मसूड़ों का पकना) में रक्तशोधन के पश्चात् सोंठ, सरसों और त्रिफला के काढ़ा से कुल्ला करें तथा प्रियंगुपुष्प, मोथा और त्रिफला का लेप लगायें।

कूठ, दारुहलदी, लोध, मोथा, मंजीठ, कटुकी, चुरनहार और नीलिका। इनका मंजन बनाकर दाँतों पर मलने से दाँतों से रक्त निकलना, खुजली तथा वेदना आदि रोग शांत होते हैं।

दाँतों के हिलने और उनमें पीड़ा होने पर भद्रमोथा, हर्रे, त्रिकटु, भाभीरंग और नीम की पत्ती—इन सबको गोमूत्र में पीसकर वटी बना छाया में सुखा लें। तदनन्तर इसकी एक गोली मुख में रखकर सो जाये तो हिलते हुए दाँत भी दृढ़ हो जाते हैं।

दन्तपुप्पुट रोग (दो या तीन दाँतों में बड़ा शोथ उत्पन्न होना) में पहले रक्तमोक्षण करायें तथा पुन: पंचलवण क्षार के द्वारा मधु के साथ प्रतिसारण कर्म करने से रोग दूर होता है।

छोटी पीपर मिश्रित घी में मधु मिलाकर मुख में धारण करने से दन्तवेदना दूर होती है।

दन्तवेष्ट रोग (दाँतों से रक्त या पीब आना तथा दाँतों का हिलना) में मवाद निकाल कर लोध, पतंग, मुलेठी और लाह—इनके चूर्ण में मधु मिलाकर प्रतिसारण कर्म करें तथा दुग्धस्रावी वनस्पतियों द्वारा कुल्ला भी करायें।

शैशिर रोग (दन्तमूल में पीड़ायुक्त सूजन और लार टपकना) में रक्तशोधनोपरांत लोध, मोथा, रसोत—इनमें शहद मिलाकर लेप लगाये तथा दुग्धवाही वनस्पतियों से कुल्ला भी करायें।

परिदर नामक रोग (दाँतों के मूलमांस की गलन तथा थूकने के समय रक्तप्रवाह) में शीताद रोग के औषधों का अवलम्बन करने से रोगमुक्ति होती है।

उपकुश रोग (मसूड़ों पर जलनयुक्त सूजन) में वमन, विरेचन और नस्य के द्वारा शिर और शरीर को संशोधित करके गूलर और गोजिया के पत्तों को मसूड़े पर रगड़कर वहाँ का रक्त निकाल दें तथा पंचलवण और त्रिकटु में शहद को मिश्रित कर प्रतिसारण करें।

अथवा छोटी पीपर, सफेद सरसों, सोंठ और समुद्रफल—इन्हें किंचित उष्ण जल में डालकर कवलग्रह धारण करने से उपकुश रोग नष्ट हो जाता है।

दन्तवैदर्भ रोग (किसी प्रकार की चोट आदि के लगने से मसूड़े में सूजन होकर दाँतों का हिलना) में दंतमूल को संयंत्र द्वारा शोधित कर क्षारीय द्रव्य तथा शीतल उपचारों को प्रयुक्त करें।

हिलते हुए दाँतों को उखाड़कर अग्निकर्म के पश्चात् कृमिदन्त रोग के समान उपचार करें।

अधिमांस रोग (पिछली दाढ़ के नीचे वेदनायुक्त अत्यंत शोथ हो जाने से लार टपकना) में वहाँ के स्थान को खरोंचकर तेजबल, वचा, पाठा, सज्जीखार और जवाखार—इनके चूर्ण को मधु के साथ घाव पर लेपित कर दें। इसके साथ ही छोटी पीपर में शहद मिलाकर मुख में कवलग्रह धारण करें

तदनंतर परवल के पत्ते,नीम और त्रिफला के कषाय से कुल्ला करें। इसके अतिरिक्त रेचक पदार्थों के धुएँ का नस्य लें।

दन्तसंबंधी नासूर (नाड़ीव्रण) में पूर्वकथित नाड़ीव्रण की चिकित्सा-विधि अपनायें। चमेली की पत्ती, मैनफल, कटुकी, कटाई, लोध, खदिर, मंजीठ और मुलेठी—इनके कल्क और क्वाथ में पकाया हुआ तैल दंतनाड़ीव्रण का निवारण करता है।

दन्तहर्ष रोग (दाँतों के ठण्ढे, वात और रूक्ष पदार्थों का सहन न होना) में चोरहुली, असबरग, मालती, कनेर और असगंध—इनको स्निग्ध और गुनगुना करके कवल धारण करें या त्रैवृत घृत का कवल भी प्रयोग कर सकते हैं।

इसके साथ ही वातविनाशक पदार्थों के क्वाथ का उपयोग भी दंतहर्ष में लाभकारी होता है। इस रोग में स्नेहित धूमपान या स्नेहयुक्त नस्य लेना भी हितकर कहा गया है।

दन्तशर्करारोग (वात-पित्त के मिश्रण से दाँतों की मैल का सूखकर रेत के समान खरखरा होना) में मसूड़ों को सुरक्षित रखते हुए उस रेत को उत्पाटित कर लाक्षाचूर्ण में मधु मिलाकर प्रतिसारण करें तथा दंतहर्ष में वर्णित क्रियाओं को भी करते रहे।

कपालिका रोग (दाँतों पर मैल जमने के कारण उनका टूटना और फटना) में दन्तशर्करा के प्रयोगों का ही आश्रय लेना चाहिए। यह रोग कठिनता से ठीक होता है।

कृमिदंत रोग में दाँतों पर स्वेद निकलता है। इसके लिए वातनिवारक

अवपीड़, स्नेहन, गंडूष तथा पुनर्नवा, देवदारु आदि का प्रलेप, स्निग्धाहार आदि के प्रयोग करने चाहिए।

अथवा हींग को गरमाकर कृमिदंत पर दबाने से भी उसके कीड़े नष्ट हो जाते हैं।

कटेरी, सूरन और कंटकारी के पंचांग का काढ़ा बना तैल मिलाकर कुल्ला करने से भी कृमिदंत में लाभ होता है।

नील और काकजंघा की जड़ को दाँतों में दबाये रखने से उनके कीड़े शीघ्र ही बाहर आ जाते हैं।

सुषिर रोग (दाँतों का छिद्र) में हिलते हुए दाँतों को खींचकर उस स्थान को जला दे। तदनंतर बिदारीकंद, मुलेठी, सिंघाड़ा और कसेरू—इनके कल्क को दशगुने दूध में तैल डालकर पका लें और उसका नस्य लें।

हनुमोक्ष रोग (वात के कारण ठुड्डी की संधियों में चोट आदि के लगने से दाँतों का हिलना) में लकवा में कथित उपचारों को करना लाभदायक होता है।

दंतरोगी के लिए यह आवश्यक है कि वह खट्टे फल, शीतल जल, रूखे अन्न का भोजन, दतुअन तथा कड़े पदार्थों का आहार न ले।

जो चिकित्सा **वातज ओष्ठरोग** में कही गयी है वही चिकित्सा वातज कंठरोगों में भी की जानी चाहिए।

पित्तज कंठरोग में दूषित रक्त का निष्कासन, मधुर औषधों द्वारा घर्षण, कुल्ला और नस्य का प्रयोग करना उत्तम है।

कफज कंठरोग में रक्तमोक्षण छोटी पीपर के चूर्ण में मधु मिलाकर घर्षण, सेंधा नमक और सफेद सरसों द्वारा मुख में कवलधारण तथा परवल, नीम, बैगन तथा क्षार पदार्थों के यूष का भोजन आदि प्रयोग ग्राह्य होते हैं।

जीभ में जकड़न होने पर मानकंद के भस्म, नमक तथा तैल को मिलाकर जीभ पर रगड़ने से लाभ होता है।

अथवा सेंहुड़ के दूध के साथ जंबीरी नीबू आदि के चबाने से जीभ की जड़ता दूर होती है।

केकड़े के दोनों पैरों को पीसकर दूध में पका लें और सोते समय पैरों पर लेपित करने या दाँतों के बीच में स्थापित करने से दाँतों की कड़मड़ी दूर होती है।

उपजिह्वा रोग (जीभ के नीचे एक दूसरी जीभ का निकलना) में उसे संयंत्र की सहायता से खरोंच कर क्षार द्वारा घर्षित करें। इसके साथ ही शिरोविरेचन, नस्य, कुल्ला, धूम आदि का भी प्रयोग करें। तत्पश्चात् त्रिकटु, जवाखार, हर्रें और चित्रकमूल

आदि औषधियों का घर्षण करें। अथवा इन औषधों द्वारा तैल को पकाकर उससे उपजिह्वा की मालिश करनी चाहिए।

कफ तथा रक्तविकार से तालुमूल में उत्पन्न होने वाले गलशुंभिका (कंठशुंडी) रोग में उसे संयंत्र की सहायता से विदीर्ण कर उस पर त्रिकटु, सेंधा नमक, वचा और मधु मिलाकर घाव पर घर्षण करें।

बकरी के दूध में मालती को पीसकर गलशुंभी पर लेप लगायें तथा कूठ, सोंठ, वचा, पाठा, छोटी पीपर, सेंधा नमक और केवटीमोथा—इन्हें मधु के साथ गलशुंभी पर घर्षित करें। ऐसा करने से गलशुंभी का निवारण होता है।

वचा, अतीस, पाठा, रास्ना, कटुकी और नीम—इनका काढ़ा बनाकर कवल धारण करें। तालुपाक में पित्तशामक चिकित्सा का प्रयोग करना उचित है।

तालुशोष में स्नेहन, स्वेदन और वातविनाशन की क्रिया उपयुक्त होती है। साध्य रोहिणी रोग (गले में मांसांकुर निकलना) में रक्त निष्कासन, वमन, गंडूषधारण, धूमपान और नस्य का अवलंबन लें।

वातज रोहिणी में रक्तमोक्षण के पश्चात् पंचलवण द्वारा घर्षण करें तथा गुनगुना तैल का कवल बारम्बार धारण करे।

पित्तज रोहिणी में पतंग, शक्कर और मधु मिलाकर घर्षण करें। इसके साथ ही अंगूर और फालसे का काढ़ा बनाकर मुख में धारण करना भी लाभप्रद सिद्ध होता है।

कफज रोहिणी में गृहधूम की कालिख में त्रिकटु चूर्ण को मिलाकर घर्षण करना उपयोगी है।

इसके अतिरिक्त चोरहुली, भाभीरंग और दन्ती—इन्हें तैल में पकाकर सेंधा नमक मिला नस्य प्रयोग और कवल धारण की क्रिया भी करें।

रक्तज रोहिणी में पित्तज रोहिणी के समान चिकित्सा करें। कंठशालूक रोग (कंठ में बेर की गुठली के समान काँटेदार गुठली की उत्पत्ति) में दूषित रक्त निष्कासन के अनंतर तुंडिकेरी रोग के सदृश उपचार करना लाभकारी होता है। इसमें एक बार यवान्न का भोजन करना आवश्यक है।

इरिवेल्लिका रोग में उपजिह्वा के समान प्रयोग काम में लायें।

अधिजिह्वा रोग में जीभ के ऊपरी भाग को बडिश नामक संयंत्र से खींचकर मंडलाग्र यंत्र से रुग्णस्थान को छिद्रित कर दें तथा तीक्ष्ण और उष्ण औषधों से घर्षण करके अल्प मात्रा में रक्त निकाल कर विशोधन की क्रिया करनी चाहिए।

कर्णरोगों में रक्तनिष्कासन तथा तीक्ष्ण पदार्थों का नस्य लेना उपयोगी है। दारुहलदी की छाल, गुरुच, बहेड़ा और इन्द्रयव का काढ़ा पीना भी लाभकारी है।

अथवा हरड़ के कषाय में शहद डालकर पान करे। कटुकी, अतीस, पाठा, देवदारु, मोथा और इन्द्रयव—इन्हें गोमूत्र में पकाकर पीने से कंठरोग, पुराना बुखार, रक्तविकार तथा कुष्ठादि रोगों का उन्मूलन होता है।

कालक नामक चूर्ण का लाभ

गृहधूम की कालिख, जवाखार, पाठा, त्रिकटु, रसोत, तेजबल, त्रिफला, लौह और चीता—इनके चूर्ण में मधु मिलाकर मुख में धारण करने से गलरोग का नाश होता है। इस कालक नामक चूर्ण के प्रयोग से दंतरोग, मुखरोग तथा गलरोग का निर्मूलन होता है।

मैनसिल, जवाखार, हरिताल, सेंधा नमक, दारुहलदी और दालचीनी—इनके चूर्ण में मधु मिलाकर नवीन घृत के झाग से मूर्छित कर कंठरोग तथा मुखरोग में इसे मुख में रखे रहें। इसे पीतक चूर्ण कहा जाता है।

मुखसंबंधी रोगों में दोषानुसार दूध, गन्ने का रस, गोमूत्र, दही, दही का पानी, छाँछ, कांजी या शास्त्रोक्त विधिनिर्मित तैल या घृत का कवल धारण करने से लाभ मिलता है।

पंचकोल, तालीसपत्र, इलायची, कालीमरिच, दालचीनी, पलाश, मुलेठी, दूध और जवाखार—इनके चूर्ण में पुराने गुड़ की दुगुनी मात्रा डालकर मधु मिला गोली बना मुख में रखें। यह कंठरोगों में अमृत के समान गुणकारी कहा गया है।

वातज, सर्वसर रोग (वातादि दोषों से मुख के अन्दर चारों ओर फैलने वाला घाव) में पंचलवण के चूर्ण से घर्षण करें तथा वातनाशक पदार्थों के साथ पाचित तैल को नाक से सूँघे और मुख में कवल धारण करे।

पित्तज सर्वसर रोग में विरेचनादि से परिशोधित रोगी में मधुर तथा पित्तशामक शीतल पदार्थों के प्रयोग किये जाने चाहिए।

कफज सर्वसर में घर्षण, कुल्ला, वमन तथा नस्य आदि की प्रक्रिया अपनाएँ। मुखपाक में परवल, नीम, जामुन, आम और मालती—इन पंचवृक्षों के नवीन पत्तों का कषाय निर्मित कर मुख का प्रक्षालन करें अर्थात् कुल्ला करें। अथवा पंचवल्कल के कषाय या त्रिफला के काढ़े से मुख को धोना चाहिए।

मुखपाक रोग में शिराभेदन, सम्पूर्ण शरीर और शिर का शोधन तथा बार-बार जायपत्री का घर्षण करना लाभकारी होता है।

जायपत्री, गुरुच, मुनक्का, जवासा, दारुहलदी तथा त्रिफला—इनके क्वाथ को ठंढा करके मधु मिलाकर कुल्ला करने से मुखपाक नष्ट होता है।

सतौना, खस, परवल का पत्ता, मोथा, हर्रै, कटुकी, मुलेठी, अमलतास और चन्दन। इनका काढ़ा पीने से मुखपाक का निवारण होता है।

परवल, सोंठ, त्रिफला, विशाला, त्रायमाण, नीम, हलदी, दारुहलदी और गुरुच। इनके कषाय में शहद डालकर पीने से सभी प्रकार के मुखरोग निर्मूल होते हैं।

त्रिफला, पाठा, दाख और इलायची—इन्हें पकाकर पान करें। अथवा केवल त्रिफला के सेवन से ही मुखपाक रोग जाता रहता है।

काला तिल, नीलकमल, घी, शक्कर और दूध—इनके साथ मधु मिलाकर कुल्ला करने से अग्निदग्धित मुखदाह और मुखपाक का विनष्टीकरण होता है।

मोथा, कूठ, इलायची, धनिया, मुलेठी और एलुआ (मुसव्वर)—इनका कवल धारण करने से रोगग्रस्तता तथा लहसुन या मद्यपान से आने वाली मुख की दुर्गन्ध का निवारण होता है।

महासहचरादितैल का प्रयोग

नीली कटसरैया को १०० पल लेकर एक द्रोण जल में पकावें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसे छान लें और उसमें गौरीसर, खैर, दुर्गन्धि खैर, जामुन, आम, मुलेठी और नीलकमल—इनके आधा-आधा पल कल्क को तैल में पाचित कर लें। पकने पर इसे मुख में लिये रहने से हिलते हुए दाँत दृढ़ हो जाते हैं।

दुर्गन्धखैर की नयी छाल को कूट-पीसकर १०० पल एक द्रोण जल में पका लें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें मंजीठ, लोध, मुलेठी, दुर्गन्धखैर, कायफल, लाह, बरगद की छाल, छोटी इलायची, कपूर, अगरु, कमलगट्टा, लौंग, शीतलचीनी, जायफल, त्रिफला, पतंग, गेरू, दालचीनी, नागकेशर और धव के फूल—इनके २-२ पल कल्क के साथ २ प्रस्थ तैल में पकावें। यह तैल सभी प्रकार के मुखरोगों में लाभदायक है।

इससे कृमिदन्त, दाँतों का टूटना और हिलना, मुखस्थ मांस की जलन और मुख की दुर्गन्धि आदि में लाभ मिलता है। यह अरिमेदादि नामक तैल अत्यन्त गुणकारी है।

तैल १ प्रस्थ, लाह का रस १ प्रस्थ, दूध १ प्रस्थ तथा लोध्र, कायफल, मंजीठ, कमलकेशर, कमलगट्टा, लाल चंदन, नीलकमल, मुलेठी एवं इनका चौगुना क्वाथ और इन्हीं पदार्थों का आधा सेर कल्क मिलाकर तैल पका लें।

इस तैल का गंडूष मुख में रखने से दंतचालन, रालन, दन्तमोक्ष, कापालिका, शीताद, मुख दौर्गन्ध्य, अरोचकता, मुख का फीकापन आदि रोगों का विनाश होकर दाँतों में दृढ़ता आती है। इसके उपयोग से मुख-संबंधी सभी रोग नष्ट होते हैं।

मौलसिरी के फल, लोध, इडसंधारी, नीली कटसरैया, अमलतास के पत्ते, बबूल की छाल, साल वृक्ष की छाल और खैर—इनके कल्क और क्वाथ में तैल मिलाकर पकावें। इसे मुख में रखने या दाँतों को धोने से चलित दाँत जम जाते हैं। एक सौ पल खैर को एक द्रोण जल में पूरी तरह से पका लें। आठवाँ भाग शेष रहने पर उसे निथार लें और उसमें चमेली, कचूर, सुपारी और शीतलचीनी के फल—इनके कल्क को मिलाकर गाढ़ा बना गोली बना लें। इसे खदिर गुटिका कहा जाता है।

इसका प्रयोग मुख-सौन्दर्य, दन्तरोग, ओष्ठरोग, जिह्वा रोग, मुखरोग तथा तालुरोग में लाभकारी सिद्ध होता है।

खैर और पंचवल्कल को २००-२०० पल लेकर ४ द्रोण जल में पाक करें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसे कपड़े से छान लें और पुन: धीमी आँच पर पकावें।

पककर गाढ़ा हो जाने पर उसमें कवलग्रह में कथित द्रव्यों के साथ ही इलायची, कमल का डंठल, सफेद चंदन, लालचंदन, सुगंधवाला, श्यामा, तमाल (आबनूस), मंजीठ, मोथा, लौह, मुलेठी, लाह, त्रिफला, रसोत, धव, लौंग, गेरू, दारुहलदी, कायफल, कमलगट्टा, लोध, बरगद वृक्ष की जटा, जवासा, मांसी, हलदी, बड़ी इलायची, शीतलचीनी, जायफल और चव्य—इनके १-१ पल बारीक चूर्ण को मिलाकर आग से उतार लें। ठण्ढा होने पर उसमें ४ पल कपूर का भी मिश्रण कर दें।

तदनन्तर उसे मटर के दाने के समान गोलाकार बना सुखा लें। इस महाखदिरादि वटी को मुख में रखे रहने पर कंठ रोग, ओष्ठ रोग, जिह्वा रोग, दंतरोग, तथा तालुरोगों का उन्मूलन होकर दाँतों का दृढ़ीकरण होता है।

कर्णरोग का उपचार

कैथ, बिजौरा नीबू, अदरख और कांजी—इनके रस को गरम करके कान में डालने से कानों की पीड़ा दूर होती है।

अदरख का रस, मुलेठी, सेंधा नमक और सरसों का तेल—इनको कानों में गुनगुना भर देने से कर्णपीड़ा का निवारण होता है।

अथवा लहसुन, अदरख, सहिजन, मूली, केला और तुलसी—इनके रस को गरमाकर कान में डालना कर्णपीड़ा का विनाशक होता है।

आठ प्रकार के मूत्रों (बकरी, भेंड़, गाय, नारी, घोड़ी, ऊँटनी, हथिनी और भैंस) में से किसी एक मूत्र को कान में गुनगुना भर देने से वेदना शांत होती है। बृहद् पंचमूल की आठ अंगुल लंबी लकड़ी लेकर पट्टवस्त्र से लपेट उसे तैल में भिंगोकर

दीपक पर जलायें। उस दीपक की आँच से गिरने वाली तैल की बूँदें कान में डालने पर शीघ्र ही पीड़ा दूर हो जाती है।

अथवा देवदारु, कूठ और सरलकाष्ठ का समायोजन करके दीपक तैल को कान में डालना गुणकारी है।

मदार के पके हुए पत्तों को पुटपाक की रीति से पकाकर उसका रस कान में डालने से तत्काल ही पीड़ा का शमन होता है।

तीव्र कर्णवेदना में रक्तस्राव होने पर सेंधा नमक में बकरी के मूत्र को गरम-गरम पीने से कर्णशूल नष्ट होता है।

बाँस की छाल का कल्क मिला बकरी के मूत्र में तैल डालकर पकावें। इस तैल को कानों मे भर देने से पीड़ा का शमन होता है।

अथवा हींग, तुम्बुरु और सोंठ—इनके कल्क को तैल में पकाकर कान में डालने से पीड़ा दूर होती है।

सूखी मूली और सोंठ का खार, हींग, सोंठ, सौंफ, वचा, कूठ, देवदारु, सहिजन, रसौत, काला नमक, जवाखार, सज्जीखार, विड् नमक, सेंधा नमक, भोजपत्र, गठिवन, सामुद्री नमक और मोथा—इनके सम भाग वाले कल्क में मधु, कांजी, बिजौरा नीबू तथा केले का रस मिलाकर चौगुना परिमाण में तैल के साथ पका लें। इस तैल के प्रयोग से कर्णशूल नहीं रह जाता।

इसके साथ ही बधिरता, कर्णनाद तथा कानों से पीब का स्राव होना आदि भी शिवादेशानुसार नष्ट हो जाते हैं।

दही के पानी डालकर शोधित पात्र में मधु, गुड़ और कांजी को एक साथ मिलाकर तीन दिन तक उसमें रख छोड़े। इस रीति से इसे बासी बनाने से यह शुक्त नामक कांजी होती है।

कर्णक्ष्वेड और कर्णनाद में सरसों तैल के प्रयोग से अच्छा फल मिलता है। बहिरापन और कर्णनाद रोग में वातविनाशक औषधों का प्रयोग करना लाभकारी होता है।

चिरचिरा के क्षारजल में चिरचिरा का ही कल्क मिलाकर तैलपाक कर लें। इस तैल को कानों में पूरित कर देने से कर्णनाद तथा बधिरता का नाश होता है।

सज्जीखार, सूखी मूली का खार, हींग, छोटी पीपर, सोंठ और सौंफ—इनके कल्क को चौगुनी कांजी में मिलाकर तैलपाक कर लें। इस तैल को कान में डालने से कर्णनाद, बहिरापन तथा कर्णस्राव आदि रोग जाते रहते हैं।

दशमूल के कषाय में दशमूल का कल्क मिला कर १ प्रस्थ तैल में पाचित कर लें। इससे बहिरापन मिट जाता है।

रेंड़, सहिजन, वरुना और मूली—इनके चौगुने रस में अठगुना दूध डालकर मुलेठी और क्षीरकाकोली का कल्क संयुक्त कर तैल को पका लें। इस तैल के नस्य, मालिश और कर्णचूरण से कर्णनाद, कर्णपीड़ा, बधिरता आदि रोगों का उन्मूलन होता है।

लहसुन, मानकंद, हरिताल—इनके सम परिमाण के कल्क से चौगुना तिलतैल तथा तेल से चौगुना तेल डालकर एक साथ पकावें। पकने पर तैलमात्र के शेष रहने पर प्रयुक्त करें। इसे कानों में भर देने से बधिरता का निवारण होता है, किन्तु वृद्ध और बालक के बहिरापन की चिकित्सा नहीं करनी चाहिए।

पूतीक और कृमिकर्ण रोग में कर्णस्राव की चिकित्सा के समान ही चिकित्सा करनी चाहिए। कर्णविद्रधि रोग में वमन कराने के पश्चात् विद्रधि रोग की भाँति चिकित्सा-विधि अपनाएँ।

पालीशोष (कानों की लोर का क्षीण होना) रोग में वातज कर्णशूल में कथित नस्य, प्रलेप तथा स्वेदनकर्म करें। स्वेदन के अनंतर तिलों को पीसकर उबटन लगायें तथा चिरौंजी, मुलेठी, असगंध और यव—इनके कल्क से समायोजित पुष्टिदायक तैलों द्वारा मर्दन करें।

जीवनीयगण के कल्क को आनूपदेशीय मांस के क्वाथ और दूध में तैल को पकाकर प्रयोग करने के फलस्वरूप सूखती हुई कर्णपाली भी बढ़ जाती है।

पूर्णतया सूखी हुई कर्णपाली को छेदित करके शेष अंशों को युक्त कर पोषण दें। इसी भाँति तंत्रिका रोग और परिपोट रोग की भी चिकित्सा करनी चाहिए।

उत्पात नामक कर्णरोग में जोंक द्वारा रक्तमोक्षण करें। तदनंतर शीतल औषधों का लेप करें। अथवा जामुन, आम के पत्ते, खिरेंटी, मुलेठी, लोध, तिल, नीलकमल, कांजी, मंजीठ, कदम्ब और अनन्तमूल—इनके कल्क को तैल में पकाकर मालिश करना लाभप्रद है। विसर्प रोग में कथित घृत भी इसमें ग्राह्य होता है।

कर्णछेदन की प्रक्रिया तथा उपचार

संशोधित रक्त वाले रोगी के छिद्रित कान के यौगिक बंधनों का विचार करके संधान करना चाहिए। जुड़े हुए कान तथा सद्यःछेदित कान के लिए शोधन कर्म करना अति आवश्यक है। केशों को ग्रथित कर छेदन और लेखन कर्म करना उचित है।

तत्पश्चात् संधिस्थल को समान रूप से स्थापित करके वहाँ मधु और घृत का लेप लगा दें। तदनंतर रूई के फाहे से संधि का अवगुंठन कर सूत्र द्वारा ढीला बाँध दें। पुनः रक्तस्थापनकारक चूर्ण उस स्थान पर छिड़क दें। इसके अनन्तर व्रणशोधक क्रिया करनी चाहिए।

एक सप्ताह बीत जाने पर रूई के उस फाहे को कच्चे तैल में भिगोकर शनैः शनैः हटाये। घाव का पूरण होने, जोड़ों के जुड़ जाने तथा वहाँ रोमों के निकल आने पर उसे धीरे-धीरे खींचकर बढ़ाये।

नाक के रोग का उपचार

पीनस रोग (नासिका द्वारा दूषित कफ का निःसरण) के शमनार्थ पंचमूल के साथ पाचित दूध, चित्रकहरीतकी का योग, सर्पिगुड़योग तथा षडंजयोग को काम में लाना चाहिए।

त्रिकटु, चित्रकमूल, तालीसपत्र, इमली, अम्लबेंत, चव्य और स्याहजीरा—इन्हें १-१ तोला और इलायची, दालचीनी, तेजपात—इन्हें २-२ माशा तथा ८ तोला ६ माशे पुराने गुड़ के साथ चूर्णित कर सेवन करने से पीनस, श्वास, कास आदि का निवारण होकर रुचि बढ़ती तथा स्वर तीव्र होते हैं।

कटेरी, दन्ती, वचा, सहिजन, तुलसी, त्रिकटु और सेंधा नमक—इनके कल्क को तैल में पकाकर नस्य लेने से पूति रोग (नाक की दुर्गन्धि) नहीं रह जाता।

त्रिकटु, वायविडंग, सेंधा नमक, कटेरी, मैनफल, सहिजन, तुलसी और दंती—इनके कल्क में दूध मिलाकर तैल में पकाकर नाक से नस्य लेने पर पूतिरोग नष्ट होता है।

इन्द्रयव, हींग, कालीमरिच, लाह, तुलसी, कायफल, कूठ, वचा, सहिजन और भाभीरंग—इनका रस निचोड़कर नाक में डालने या इनके कल्क में गोमूत्र मिला तैल में पकाकर उस तैल के नस्य प्रयोग से पीनस और पूतिरोग का शमन होता है।

नासापाक (नाक का पकना) रोग में रोगी को केवल पित्तशामक औषधों के प्रयोग बाह्य तथा आंतरिक रूप में करने चाहिए।

नासापाक में रक्तशोधन के पश्चात् बरगद आदि दुग्धस्रावी वृक्षों की छाल पीसकर परिषेक तथा घृत से लेपन करना उचित है।

सोंठ, कूठ, छोटी पीपर, बेल का गूदा और दाख—इनके कल्क और कषाय में पकाये गये तैल या घृत का नस्य लेने से क्षवधु रोग (वात-पित्त के फलस्वरूप बारम्बार छींक आना) नष्ट हो जाता है।

पित्तोत्पन्न दीप्त रोग (जलनयुक्त नाक से धुएँ के समान वायु का निःसरण) में पित्तशामक शीतल तथा मधुर उपचार किये जाने चाहिए।

नाक में जलन होने पर स्नेहपान, धूम और शिराबस्ति आदि कर्म करने आवश्यक होते हैं।

वातज प्रतिश्याय (एक प्रकार का पीनस) में पंचलवण या प्रथमगणीय पदार्थों के साथ घी को पकाकर पान करने से लाभ मिलता है।

पित्तज या रक्तज प्रतिश्याय में शीतल परिषेक तथा शीतल प्रलेपादि की क्रिया करें। कफज प्रतिश्याय में तिल और उड़द के साथ पकायी गयी यवागू या घृतस्निग्ध कफविनाशक चिकित्सा करना लाभकारी सिद्ध होता है।

नूतन प्रतिश्याय में इमली के यूष से लाभ मिलता है। शिर का विरेचन करने से पका हुआ कफ निकल जाता है।

रात्रि में सोते समय चारपाई पर बैठकर शीतल जल पीने से भी पीनस से छुटकारा होता है।

कमल और जयंती के पत्र में सुहागा और तैल मिलाकर प्रयोग करने से सभी प्रकार के प्रतिश्याय दूर होते हैं।

इसके साथ ही शिर पर कफविनाशक तैलों के लगाने, स्वेदन करने, कटु तथा अम्लाहार को लेने, वमन एवं घृतपानादि से समस्त प्रकार के प्रतिश्याय से मुक्ति मिलती है।

दधिमिश्रित स्निग्धरूप भोजन में छोटी पीपर और गुड़ मिलाकर खाने से नवीनोत्पन्न प्रतिश्याय नष्ट होता है तथा कफ का परिपाक भी शीघ्र ही हो जाता है।

उबाले हुए उड़द में नमक डालकर भोजन के पश्चात् गरम-गरम खाने पर दीर्घकालिक प्रतिश्याय भी जाता रहता है।

छोटी पीपर, सहिजन के बीज, भाभीरंग और कालीमरिच—इनका रस निकालकर नस्य लेने से प्रतिश्याय का उन्मूलन होता है।

नासिका के कृमियों के निवारणार्थ कृमिनाशक पदार्थों को गोमूत्र में पीसकर प्रयोग करने से लाभ होता है।

कृमिस्थान की धुलाई करने हेतु कृमिविनाशक चिकित्सा की आपश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त अन्य नासा रोगों में शास्त्रानुसार विधि का प्रयोग करें।

करवीरादि तैल का प्रयोग

लाल कनेर के पुष्प, चमेली के पुष्प, विजयसार और मोतिया के फूल—इनके कल्क को सम भाग तैल में पकाकर नास लेने पर नासार्श (नाक का बवासीर) रोग निर्मूल होता है।

चित्रकहरीतकी योग के लाभ

चित्रकमूल का रस १०० पल, आँवले का रस १०० पल, गिलोय का रस १०० पल, दशमूल का काढ़ा १०० पल, गुड़ १०० पल और हर्रे का चूर्ण ४

प्रस्थ। इन सबको एकीकृत पकाकर गाढ़ा बना लें। तदनन्तर उसमें त्रिकटु और त्रिसुगंध को १२ पल तथा जवाखार को २ तोले की मात्रा में मिला दें। दूसरे दिन उसमें आधा प्रस्थ मधु डालकर बलानुसार सेवन करें।

इसके उपयोग से क्षुधाग्निवर्धित होकर क्षय, खाँसी, पीनस, कृमि, गुल्म, उदावर्त, अर्श तथा श्वासादि रोग उन्मूलित होते हैं। रोगियों के कल्याणार्थ संसार में इसकी गुरुगर्जना निरन्तर सुनाई पड़ती रहती है।

गृहधूम की कालिख, छोटी पीपर, देवदारु, जवाखार, हलदी, सेंधा नमक और चिरचिरा के बीज—इनको तैल में पकाकर नाक से सूँघने पर नाशार्श रोग दूर होता है।

नेत्र रोग का उपचार

अभिष्यन्द नामक अक्षिरोग (नेत्रों का कटना तथा उनमें सूजन होकर पीव का नि:स्राव होना) लंघन, लेपन, स्वेदन, शिरावेधन, विरेचन तथा अंजन आदि के प्रयोग से अत्यधिक लाभ होता है।

सभी प्रकार के नेत्ररोग, कुक्षिरोग, प्रतिश्याय, अरुचि तथा ज्वरादि रोग प्राय: पंचरात्रि के लंघन द्वारा ही नष्ट हो जाते हैं।

निरंतर चार दिनों तक स्वेदन, लेपन, स्निग्ध भोजन, परिषेक, लंघन तथा नमक, मिरच आदि तीक्ष्ण पदार्थ का वर्जन—इन छह प्रक्रियाओं के द्वारा अभिष्यन्द रोग का परिपाक होता है।

सरलवृक्ष का गोंद, अतीस और लोध। इनके चूर्ण में किंचित् सेंधा नमक मिला कर कपड़े की पोटली बना नेत्रों के बाहरी भाग में गुंडन देना प्रारंभिक अवस्था में लाभप्रद सिद्ध होता है।

नेत्ररोग की अपरिपक्वता की दशा में अंजन लगाना, दारुहलदी आदि के काढ़े से गरम सेंक करना आदि अलाभकर होते हैं, किन्तु पीड़ितावस्था में उपयुक्त पदार्थों से आश्च्योतन (नेत्र विरेचन) कर्म करना उचित माना जाता है।

बेल का गूदा, रेंड़ की जड़, कटेरी, जयंती, मधु और सहिजन। इनके गुनगुना क्वाथ के द्वारा वातज अभिष्यन्द में नेत्रविरेचन करना लाभकारी होता है।

रेंड़ का पत्ता, जड़, छाल और बीज के कल्क को कंटकारी की जड़ के साथ पकाकर मन्दोष्ण दूध का परिषेक करने से वाताभिष्यन्द नष्ट होता है।

दोषों का पूर्णरूप से परिपाक होने के पश्चात् ही अंजन का प्रयोग उपयोगी सिद्ध होता हे। अंजन प्रयोग के निमित्त हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में मध्याह्न का समय उचित होता है।

ग्रीष्म तथा शरत्काल में अंजन का प्रयोग प्रातः-सायं करना लाभदायक है। वसंत ऋतु में किसी भी समय में अंजन का प्रयोग फलदायक होता है। वर्षा ऋतु में अंजन का प्रयोग अनुचित है।

रेणुका नामक घास के समान महीन शलाका (सलाई) का प्रयोग अंजन में करना आवश्यक है।

अंजन लगाते समय नेत्र विरेचक चूर्ण को शलाका में पूरी तरह से भरकर पहले बायीं आँख पुनः दायीं आँख में अंजन लगाना चाहिए।

अंजन के प्रयोगकाल में शलाका को अँगूठे और तर्जनी उँगली को मिलाकर पकड़े। अंजन लगाते समय इस बात का भी ध्यान रहे कि उसका स्पर्श नेत्र के आंतरिक भागों में न होने पाये। बड़ी अंडी की जड़ और छाल, सहिजन की जड़ और सेंधा नमक—इन्हें बकरी के दूध में पीसकर अंजन लगाने से सभी नेत्ररोग दूर होते हैं।

हलदी, दारुहलदी, मुलेठी, दाख और देवदारु—इनको बकरी के दूध में पीसकर आँखों में अंजन लगाने से वाताभिष्यन्द दूर होता है।

पुनर्नवा, मुलेठी, हलदी, आँवला और कमलगट्टा—इनके ठण्ढे कल्क में मधु डालकर सेंकने से पित्तज अभिष्यन्द का निवारण होता है।

मुलेठी, दाख, मंजीठ तथा जीवनीयगण के पदार्थों को दूध में मिलाकर पका लें। प्रातः समय इसे नेत्रों पर चुभोने से शोथ, पीड़ा आदि नेत्ररोगों का उन्मूलन होता है।

कफज अभिष्यन्द में लंघन, स्वेदन, नस्य, कड़ुए पदार्थ का भोजन तथा तीक्ष्ण द्रव्यों से सिंचन और लंघन करना भी प्रशस्त होता है।

शूकड़ि नामक तृण, नेवार, कैंथ, बेल का गूदा, शांति नामक शाक, पीलु, मदार और भँगरैया—इनके द्वारा स्वेदन तथा सुगंधवाला, सोंठ, देवदारु और कूठ के द्वारा लेपन करना लाभदायक है।

सोंठ, नीम की पत्ती के कल्क में किंचित् सेंधा नमक डालकर पका लें। पुनः उसकी पिण्डी बनाकर आँखों पर गुनगुना सेंक करने से नेत्ररोग उसी प्रकार विखंडित हो जाते हैं जिस प्रकार वज्राघात से वृक्ष।

लोध की छाल में सेंधा नमक मिलाकर घी में भून लें। तदनन्तर सौवीर कांजी में पीसकर कपड़े की पोटली बना नेत्रों पर चुभोएँ। इस प्रक्रिया के द्वारा नेत्र की खुजली, जलन और वेदना की शान्ति होती है। लोध की छाल को नीम की पत्ती के कल्क से लेपित कर पुटपाक विधि से पका लें।

पुनः उसका चूर्ण या कल्क बना नारीस्तन के दूध को मिला दें और नेत्रों पर आश्च्योतन करें। इससे पित्तदोष, रक्तदोष और दाहजनित नेत्ररोगों का विनष्टीकरण होता है।

वातज अभिष्यन्द में स्निग्ध और उष्ण, पित्तज तथा रक्तज में हलके और मधुर तथा शीतल, कफज में तीक्ष्ण, रूक्ष और उष्ण उपचार करने चाहिए।

त्रिदोषज अभिष्यन्द में मिश्रित उपचार करना उचित है। अभिष्यन्द रोग का वृद्धिकाल रात्रि का प्रथम प्रहर और सम्पूर्ण दिन माना गया है।

कफज, वातज तथा पित्तज—इन तीनों ही अभिष्यन्द में ८ तोले परिमाण में औषधद्रव्य लेकर आश्च्योतन करें।

अथवा जब तक रोगी इस क्रिया का सहन करता रहे तब तक प्रतिदिन एक-दो या तीन बार आश्च्योतन कर्म करते रहे। नेत्रों से औषधियों द्वारा पानी को बाहर निकाल देना ही आश्च्योतन कर्म का मुख्य उद्देश्य होता है।

लेखन कर्म में ७-८, आश्च्योतन में १० बूँदें तथा रोग की परिसमाप्तिकाल में तैल की १२ बूँदे प्रयोक्तव्य होती हैं।

उचित परिमाणानुसार आश्च्योतन कर्म की सम्पन्नता होने पर नेत्र स्वच्छ होकर पीड़ा दूर होती है तथा नेत्रों में हलकापन का अनुभव होने लगता है।

अनुपयुक्त रीति से आश्च्योतन के फलस्वरूप रोगवर्धन, भारीपन तथा कलुषता का उत्पादन होता है।

दीर्घावधि तक आश्च्योतन कर्म करते रहने पर उदासीनता का विस्तार होता है।

लोध, त्रिफला, मुलेठी, शक्कर और भद्रमोथा—इन्हें शीतल जल में पीसकर सेंक करने से रक्तज अभिष्यन्द निर्मूल होता है।

कसेरू और मुलेठी के चूर्ण की पोटली बनाकर नेत्रों के चारों ओर सेंक लगाने से लाभ मिलता है। रक्तज अभिष्यन्द में तिक्त घृतपान, बारम्बार विरेचन, नेत्रों के चतुर्दिक् जोंक का प्रयोग तथा पित्ताभिष्यन्दनिवारक उपचार लाभप्रद सिद्ध होता है।

पंच पल्लव (आम, जामुन, कैथ, अनार और बेल) के रस का स्वेदन कर्म समस्त नेत्ररोगों में हितकर होता है।

हर्रे, गेरू, सेंधा नमक, दारुहलदी और साल—इनको जल में पीस मधु डालकर नेत्रों पर लेप लगाना भी नेत्र रोगनाशक सिद्ध होता है।

नीम और चमेली के कोमल और स्वच्छ पत्तियों को पीसकर सेंधा नमक मिला गोली बना लें। तत्पश्चात् उस गोली पर लोध की छाल घिसकर लेप लगा दें।

इस प्रकार से निर्मित वटी को कांजी में डुबोई हुई रूई के फाहे में रखकर नेत्रों के चारों ओर फेरने से नेत्ररोग निर्मूल होते हैं।

उक्त औषधियों का २ तोला चूर्ण लेकर मधु मिला लें और चारों ओर नेत्रों पर स्पर्श करायें।

इस प्रक्रिया के द्वारा आँखों की जलन, आँखों से आँसू का निकलना, आँखों की लाली और सूजन मिट जाती है।

अथवा बेलपत्र के रस को छानकर उसमें घी और शहद मिला किसी ताम्रपात्र पर रखकर कौड़ी का घर्षण करें।

तदनन्तर उस रस को गोबर की धुआँ देकर धूपित कर लें। पुनः उसे दूध में उबालकर नेत्रों में पूरित कर देने से पीड़ा और सूजन नष्ट होती है।

यह योग अभिष्यन्द, अधिमंथ तथा नेत्रस्राव आदि रोगों में अत्यन्त प्रशस्त है। इसके प्रयोग से रोगी सुखपूर्वक शयन करता है।

कांजी में सेंधा नमक और सरसों का तैल डालकर उसे किसी काँसे के पात्र में भरकर ऊपर से उपलों को घिस लें। तदनन्तर उस रस को गोबर के धुएँ से धूपित कर बकरी के दूध और घी में उबाल कर नेत्रों के अंदर भर दे।

इससे नेत्रप्रकोप, कफदोष, नेत्रपीड़ा, नेत्रस्राव तथा नेत्रों की सूजन आदि रोग दूर होते हैं।

इसी प्रकार के उपचार अधिमंथादि रोग में भी उपयोगी होते हैं। अधिमंथ रोग का शमन न होने पर भौंहों के ऊपर अग्नि से दग्ध कर देना चाहिए।

त्रिफला, परवल, नीम, अडूसा—इनका काढ़ा बना गूगुल के साथ लेप लगाने से नेत्रशोथ, नेत्रशूल और नेत्रपाक रोग नष्ट होते हैं।

पूर्वकथित योग के द्वारा व्रणयुक्त और व्रणविहीन शुक्ररोग (आँखों की फूली) तथा नेत्रों की लालिमा आदि का निवारण होता है। त्रिफलादि द्रव्यों से पकाया हुआ घृत भी इसमें लाभकारी है।

बसौंटा, हर्रे, नीम, आँवला, मोथा, बहेड़ा और कपूरकचरी—ये वासकादिगण के द्रव्य नेत्रों के लिए लाभकारी तथा रक्तस्राव और कफ के उन्मूलक होते हैं।

अडूसा, नीम, परवल, मोथा, कटुकी, गुरुच, लाल चंदन, कूड़े की छाल, इन्द्रयव, दारुहलदी, चीता, सोंठ, चिरायता, आँवला, हरड़, बहेड़ा और यव—इस बृहद् वासकादिगण के द्रव्यों का काढ़ा बना लें। आठवाँ भाग शेष रहने पर क्वाथ को ठण्डा करके प्रातःकाल पीने से तितिर (नेत्रों के सामने अँधेरा दीखना), अंजना, नेत्रकण्डू, पटल, अर्बुद, सव्रणशुक्र, अव्रणशुक्र, नेत्र की जलन, नेत्रवेदना, नेत्रराग आदि रोग समूल नष्ट होते हैं।

अथवा परवल, अडूसा, नीम, गुरुच, त्रिफला, मोथा, पंचमूल, मुलेठी, लालचंदन, श्वेत चंदन, सोंठ—इन्हें पटोलादिगण कहा जाता है।

यह सभी नेत्ररोगों का उन्मूलक तथा वात-पित्त-कफ और सान्निपातिक रोगों का विनाशक है।

३-३ नग हरड़-बहेड़ा और १२ नग आँवला लेकर काढ़ा पकावें। अष्टमांश शेष रहने पर उतारकर छान लें। इसके पान से आसाव, राग तथा तिमिरांध रोगों का विनष्टीकरण होकर नेत्रों में पारदर्शिता आती है।

स्निग्ध, शीतल और मधुर द्रव्यों का प्रयोग करके नेत्रों को स्वच्छ बनाना चाहिए। इसी प्रकार के उपचार स्वेद, अग्नि, धूम, भय और शोकोत्पन्न नेत्ररोगों में भी किये जाने चाहिए।

नेत्रविकार की अपरिपक्वावस्था रहने तक मुख की भाप से नेत्रों का स्वेदन, नारीदुग्ध से आश्च्योतन तथा कालानुसार अन्य उपचार भी उत्तम फल प्रकट करते हैं।

ग्रहणकालीन सूर्य के दर्शन तथा तीव्राग्नि या विद्युत् अवलोकन के फलस्वरूप नेत्रज्योति की क्षीणता में स्निग्ध, मधुर, शीतल द्रव्यों द्वारा नेत्र का तर्पण तथा सायंकाल त्रिफला का सेवन करने से सफलता मिलती है।

हलदी, मोथा, त्रिफला, दारुहलदी, अथवा इत्कट के अंकुरों के स्वरस में मधु और शक्कर का मिश्रण करके नेत्रों में डालना लाभप्रद है।

बकरी के ८ सेर दूध में मुलेठी, नील कमल, जीवक, ऋषभक आदि द्रव्यों का कल्क मिलाकर बकरी का घृत पका लें।

यह घृत सभी प्रकार के नेत्राभिघात, क्षय तथा दुर्बलता में लाभकारी सिद्ध होता है।

नेत्र के प्रथम पटल में अभिघातज वातादि दोष साध्य माने जाते हैं, किन्तु द्वितीय पटल के कष्टसाध्य तथा तृतीय पटल वाले दोष असाध्य होते हैं।

सेंधा नमक, देवदारु, सोंठ, बिजौरा नीबू का रस और घृत—इन्हें १-१ भाग और दूध १ भाग। सभी को एक साथ पका कर शुष्कपाक में अंजन लगायें। अन्यतोवात नामक नेत्ररोग (घाटी, कान तथा शिर में स्थित वायु के द्वारा नेत्रों तथा भौंहों पर होने वाली वेदना) में वाताभिष्यंद में कथित चिकित्सा विधि को अपनाएँ। इस रोग में भोजन से पूर्व दूध या घी के सेवन से अच्छा लाभ मिलता है।

अथवा बिदारीकंद, कैथ, बृहत्पंचमूल और काकड़ासिंगी के रस में दूध डालकर घी को पका लें और उस घृत का पान करें। अम्लाध्युषित नामक नेत्ररोग (अम्ल पदार्थों के सेवन से नेत्रों के मध्यभाग में नीली तथा किनारे के भाग में लालिमा का होना) के शमनार्थ शीतल प्रलेप तथा पुराने घी का पान करना उचित है।

इस रोग में शिराभेदन के अतिरिक्त शेष उपचार पित्ताभिष्यन्द के समान

करने चाहिए। शिरोत्पात नामक नेत्ररोग (नेत्र की शिराओं का लाल होना) में मधु तथा घृत की बहुलता से युक्त उपचार करने से लाभ मिलत है।

शिरोत्पात रोग में सेंधा नमक और कसीस को दूध में पीसकर अंजन लगाना रोगविनाशक है।

शिराहर्ष नामक नेत्ररोग (शिरोत्पात के बिगड़ जाने से रक्तमिश्रित आँसू का निकलना) में रक्तशोधक अंजन का प्रयोग लाभकारी होता है।

नेत्ररोगों में तर्पणार्थ निम्न प्रयोग किये जाने चाहिए, जैसे—मधु-रसोत, मधु-कसीस, दूध-अम्लबेंत, सेंधा नमक-राब अथवा गाय के दूध से तत्क्षण निकाला हुआ घृत।

उक्त प्रयोगों से नेत्रतर्पण किये जाने पर नेत्रों की स्वच्छता, तिमिरांधता का विनाश, अभिष्यन्द तथा अधिमंथ से ग्रस्त नेत्रपीड़ा का निवारण होता है। पीठ के बल स्थिरभाव से लेटे हुए रोगी पर तर्पण की क्रिया करनी चाहिए।

चंदन, गेरू, लाह तथा मालती पुष्प की कली—इनके अंजन से व्रणशुक्र (फूली) नष्ट होकर रक्तशोधन होता है।

आँवला,नीम, कैथ वृक्ष के पत्ते, मुलेठी, लोध, खैर और तिल—इनके क्वाथ को ठण्ढा करके नेत्रों में सेंक लगाने से समस्त प्रकार के व्रणशुक्र नष्ट होते हैं।

तूतिया को जल में पीसकर नेत्रों में डाल देने पर आँख की फूली कट जाती है।

समुद्रफेन, मुरगी के अंडे का छिलका, सेंधा नमक, शहद और सहिजन के बीज—इन सबको सहिजन के रस में पीसकर अंजन लगाने से आँखों की फूली नष्ट होती है।

अथवा मुरगी के अंडे का छिलका, मैनसिल, शंख, काँच (एक प्रकार की मिट्टी), चन्दन, गेरू—इनका अंजन प्रयुक्त करने से आँखों में फूली नहीं रह जाती। शिरीष के बीज, कालीमरिच, छोटी पीपर और सेंधा नमक अथवा केवल सेंधा नमक को ही फूली पर रगड़ने से फूली निर्मूल हो जाती है।

अथवा करंज फल के चूर्ण करके कुश की जड़ और पलाश के रस में भिंगो दे और उसे आँखों में आँजे तो समस्त नेत्ररोग विनष्ट होते हैं।

सेंधा नमक, त्रिफला, छोटी पीपर, कटुकी, शंखनाभि और ताँबे का चूरा—इन सबको पीसकर अंजन लगाने से व्रणयुक्त फूली कट जाती है।

शंखचूर्ण ४ भाग, मैनसिल २ भाग, कालीमरिच १ भाग और सेंधा नमक आधा भाग। इनके चूर्ण का अंजन लगाने से सव्रण तथा अव्रण शुक्ररोग तथा तिमिरादिक रोग उन्मूलित होते हैं।

सोनामाखी या मँडुआ का सार अथवा बहेड़े का बीज या मधु के साथ सेंधा नमक मिलाकर आँजने से फूली कटकर निकल जाती है।

कपूर के सूक्ष्म चूर्ण में बरगद का दूध मिलाकर आँखों में लगाने से व्रणशुक्र शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है।

हरताल, नारियल, मुलेठी, कनीर और बाँस—इनके क्षार को निथार कर रख छोड़े। तत्पश्चात् हस्तिशावक के अस्थिचूर्ण को उस क्षारजल में ७-८ बार भिंगोकर चूर्णित कर लें।

यह चूर्ण साध्य शुक्ररोग का उन्मूलक तथा असाध्य शुक्ररोग को साध्यावस्था में पहुँचाने वाला सिद्ध, होता है।

पटोलादिघृत प्रयोग

परवल, कटुकी, दारुहलदी, नीम, अडूसा, त्रिफला, दुरालभा, पित्तपापड़ा और त्रायमाण—इन सबको १-१ पल, आँवला १ प्रस्थ। इन्हें एक द्रोण जल में डालकर पकावें।

चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें १ प्रस्थ घी मिलाकर पुन: पका लें। पकाते समय ही चिरायता, कूठ, कूड़ा, मुलेठी, लालचंदन तथा पिप्पली के कल्क को भी मिला दें।

भलीभाँति पक जाने पर यह घृत नेत्रों के लिए लाभदायक तथा सव्रण और अव्रणशुक्र रोग का उन्मूलक होता है।

इस घृत के प्रयोग से नासिका रोग, कर्णरोग, वर्त्मरोग, चर्मरोग, मुखरोग, व्रण, कामला, विसर्प, गंडमाला आदि रोग विनष्ट होते हैं।

कृष्णाद्य तैल का प्रयोग

छोटी पीपर, भाभीरंग, मुलेठी, सेंधा नमक, सोंठ और काली-मरिच—इनके कल्क को बकरी के दूध में पकावें। पूर्णरूप से पक जाने पर इस तैल के नस्य प्रयोग से तिमिर, शुक्ररोग, शिर:शूल, नेत्रपीड़ा, नेत्रपाक तथा नेत्रात्यय रोग दूर होते हैं।

सेंधा नमक, स्याहजीरा और गोरोचन को लिसोड़े की छाल के रस में मिलाकर नेत्रों में डालने से अजका रोग (नेत्र की कनीनिका में बकरी की मेंगनी के समान वेदनायुक्त लाल रंग की फूली) का निवारण होता है।

खरगोश तथा मृगमांस के कषाय में मुलेठी और पुंडरिया के कल्क को मिलाकर ३२ तोले बकरी के घृत के साथ पकावें। पकने के पश्चात् मधु मिलाकर आँखों में पूरित कर देने से शुक्र, क्षतपाक, अजका, भौंहों की हड्डी में पीड़ा तथा नेत्रदाह आदि नष्ट होते हैं।

नूतन रक्तविकार के परिणामस्वरूप शुक्र, क्षतपाक, अत्यय और अजका आदि रोगों की उत्पत्ति हुआ करती है। इन पर नियंत्रण पाने के लिए जोंक लगाकर प्रदूषित रक्त का निष्कासन करा देना चाहिए।

नेत्रों के विनाश का प्रमुख कारण ऋषियों ने तिमिरांधता को बतलाया है। अतः तिमिर रोग का अविलंब उपचार अत्यंत आवश्यक होता है।

नेत्र के एक भाग में वातादि दोषों की स्थिरता को तिमिर रोग की आंरभिक अवस्था कही जाती है।

ऐसी अवस्था में दोषानुसार रोगी को काला, पीला, लाल आदि रंगो का भान होता है। नेत्र के तीसरे पटल में दोष के प्रविष्ट होने पर क्रौंच नामक और चौथे पटल में नीलिका नामक तिमिर रोग उत्पन्न हो जाता है।

तिमिररोग में लालिमा न आने तक सक्रिय व्यक्ति में यह रोग साध्य माना जाता है। लालिमा के उपस्थित होने तक यह कष्टसाध्य तथा पटल में प्रवेश कर जाने पर असाध्य हो जाता है। इसकी चिकित्सा से पूर्व साध्यासाध्य का विचार कर लेना अतिआवश्यक होता है।

जीवन्ती, बथुआ, चिल्ली, मूली, पोई और जांगलदेशीय शाक—इनको घी में पकाकर खाना नेत्रों के लिए हितकर होता है।

परवल, ककोड़ा, करैला, बैगन, जयन्ती, बाँस का अँखुआ और नीली कटसरैया—इनका शाक घी में बनाकर खाने से नेत्र रोगों में लाभ होता है।

तिमिर रोग में पहले लालिमा पुनः काच रोग तथा अन्त में नीलिका की उत्पत्ति होने से मानव अंधत्व को प्राप्त हो जाता है। पित्तज तिमिर में त्रिफला के बारीक चूर्ण को मधु के साथ, वातज तिमिर में त्रिफलाचूर्ण को तैल के साथ तथा कफज तिमिर में शहद मिलाकर सेवन करना उपयोगी होता है।

त्रिफला के कल्क, क्वाथ या चूर्ण को मधु के साथ प्रयुक्त करने से सभी प्रकार के तिमिर रोग का विनष्टीकरण होता है।

स्त्री-सहवास से विरत रहकर त्रिफलाचूर्ण को मधु के साथ सायंकाल सेवन करने वाले व्यक्ति के नेत्ररोग उसी प्रकार दूर हो जाते हैं जिस प्रकार धनहीन राजा के सेवकगण उससे दूर हट जाया करते हैं।

प्रतिदिन प्रात:काल त्रिफला के कषाय से नेत्रों का प्रक्षालन करने से नेत्र रोग दूर होकर पुनरावर्तित नहीं होते।

प्रात:काल सोकर उठते ही प्रतिदिन मुख में कुल्ला भरकर नेत्रांजन करने से तिमिर रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

अथवा भोजनोपरांत हाथ धोने के पश्चात् दोनों हथेलियों को नेत्रों पर रगड़ने से अल्पावधि में ही तिमिर रोग दूर होते हैं।

कई बार के धोये हुए घृत द्वारा नेत्रांजन करने से एक सप्ताह में ही सैकड़ों वर्ष (दीर्घकालीन) पुराने तिमिर रोग का अंत हो जाता है।

जमालगोटा, शंख, सेंधा नमक, त्रिकटु, शक्कर, समुद्रफेन, रसोत, मधु, भाभीरंग और मैनसिल—इन सबको समान भाग में बकरी के दूध के साथ पीसकर आँखों में आँजने से तिमिर, पटल, काच और मर्मस्थल की फूली भी मिट जाती है।

चन्द्रोदयावर्ति का प्रयोग

हर्रे, वचा, कूठ, छोटी पीपर, कालीमरिच, बहेड़े का गूदा, शंखनाभि और मैनसिल—इनको समान भाग में बकरी के दूध में पीसकर आँखों में अंजन लगाने से तिमिर, कण्डू, पटल, अर्बुद, नेत्र के किनारे का अधिमांस तथा रतौंधी (रात्रि में दिखलाई न पड़ना, नक्तांधता) आदि रोग समूल नष्ट होते हैं।

इसके प्रयोग से दीर्घकालिक फूली भी एक मास में ही कट जाती है। इस योग को चन्द्रोदयावर्ति के नाम से जाना जाता है।

तीक्ष्ण अंजन का प्रयोग दिन में करना अनुचित है। तीक्ष्णांजन के प्रयोग द्वारा नेत्रों से अधिक जलस्राव होने के कारण दृष्टिशक्ति दुर्बल होने के फलस्वरूप सूर्य-किरणों की चकाचौंध से दृष्टि विलुप्त होने की संभावनाएँ बनी रहती हैं।

अत: ऐसे अंजनों का प्रयोग सोते समय रात्रि में करना ही संगत होता है।

हर्रे, हलदी, छोटी पीपर और लवण—इन्हें पीसकर अंजन लगाने से कण्डू, तिमिर आदि रोगों पर नियंत्रण होता है।

त्रिफला, मुरगी के अंडे का छिलका, कसीस, मंडूर, नीलकमल, भाभीरंग और समुद्रफेन—इन सबको बकरी के दूध में पीसकर सात दिनों तक ताँबे के पात्र में भरकर बकरी के दूध में भिंगो दे। पुन: पूर्व की रीति से उसका अंजन लगायें। इस अंजन की वर्तिका नेत्रपीड़ितों तथा अंधों के लिए दृष्टिप्रदायिका का कार्य करती है।

तिल के पुष्प ८० नग, छोटी पीपर ६० नग, चमेली के फूल ५० नग, कालीमरिच के १६ दाने और चावल—इनको एक साथ पीस लेने पर कुसुमवर्तिका तैयार होती है। इस अंजनवर्तिका का प्रयोग नष्ट हुए नेत्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होता है।

त्रिकटु, नीला कमल, हर्रे, कूठ और रसोत—इन्हें पीसकर आँखों में लगाने से अर्बुद, पटल, काच, तिमिर तथा नेत्रो से अश्रुस्राव होने वाले औपद्रविक लक्षण समाप्त हो जाते हैं।

कुंकुम, अगरु, कपूर, कूठ, इलायची, तेजपात और केशर—इन सबको बराबर भाग में तथा इनके समान परिमाण में लाल चंदन एवं सबके बराबर सफेद सुरमा का मिश्रण कर चूर्णांजन निर्मित किया जाता है।

इस अंजन के प्रयोग से तिमिरादिक रोगों का नाश होता है। एक भाग छोटी पीपर और दो भाग हर्रे को जल में पीसकर नेत्रों में लगाने पर तिमिर, अर्म, पटल तथा काच आदि रोग निर्मूल हो जाते हैं।

चन्द्रप्रभावर्ति का प्रयोग

अंजन, सफेदमरिच या सहिजन के बीज, छोटी पीपर, मुलेठी, बहेड़े का गूदा, शंखनाभि, और मैनसिल। इनके बराबर भागों को बकरी के दूध में पीसकर बत्ती बना छाया में सुखा लें।

इस बत्ती के प्रयोग से अर्बुद, पटल, काच, तिमिर, रक्तराजिका, अधिमांस, अर्क तथा रतौंधी आदि रोग विनष्ट होकर नेत्र स्वच्छ होते हैं।

नागार्जुनवर्ति का प्रयोग

त्रिफला, त्रिकटु, सेंधा नमक, मुलेठी, तूतिया, रसोत, पुंडरिया, भाभीरंग, लोध और ताँबा—इन चतुर्दश पदार्थ-समूहों को वर्षाकालीन जल में पीसकर बत्ती बना लें।

इस वर्तिका के निर्माण का विधान पटना नगर के एक शिलालेख पर नागार्जुन द्वारा किया गया था।

इस वर्तिका का प्रयोग मुख्यत: तिमिर और पटल रोग पर किया जाता है।

इसे नारी-स्तन के दुग्ध के साथ प्रयोग करने पर तात्कालिक नेत्रप्रकोप, पलाश के स्वरस में घिसकर लगाने से पैन्यपुष्प तथा नेत्रों की लालिमा, लोध्र क्वाथ के साथ तिमिर तथा बकरी के मूत्र के साथ प्रयुक्त करने पर नेत्राच्छादित रोग तथा कठिनतापूर्वक नेत्रों का मीचना दूर होता है।

छोटी पीपर, सोंठ, नीलकमल के पत्र, मुलेठी और हलदी—इनकी बत्ती बनाकर प्रतिदिन नेत्रों में लगाते रहने से नेत्रों में स्वर्ण के समान चमक आ जाती है।

त्रिकटु, मंडूर, सेंधा नमक, त्रिफला। इनके अंजन की निर्मित गुटिका जल में पीसकर आँजने से कोकिला तथा तिमिर रोग नियंत्रित होते हैं।

चन्दन, त्रिफला, सुपारी और पलाश का गोंद—इनको समान भागों में लेकर बत्ती बना आँखों में लगाने से तिमिरादिक रोग नष्ट होते हैं।

त्रिकटु, त्रिफला, दालचीनी, सेंधा नमक और मैनसिल—इन्हें बराबर मात्रा

में पीसकर बत्ती बना लें। इनके प्रयोग से क्लेद, उपदेह, कण्डू और कफ आदि नष्ट होते हैं।

अथवा हलदी, नीम की पत्ती, छोटी पीपर, कालीमरिच, भाभीरंग, भद्रमोथा और सोंठ—इनको सम भाग में गोमूत्र के साथ पीसकर बेर की गुठली के बराबर गोली बना छाया में सुखा लें।

इसे जल में घिसकर अंजन लगाने से तिमिर, मधु के साथ पटल रोग, कांजी के साथ नेत्रकण्डू तथा नारीदुग्ध में घिसकर प्रयुक्त करने पर नेत्रपीड़ा नहीं रह जाती।

त्रिकटु, करंज के फल, हलदी, दारुहलदी, सेंधा नमक, बेल की जड़, वरुना की जड़ और वारिचर—इन दश वस्तुओं के योग से निर्मित अंजन से तिमिर, पटल, शुक्र तथा अर्जुन रोग नष्ट होते हैं तथा वृद्धों के नेत्र भी देखने में सक्षम हो जाते हैं।

नीलकमल, भाभीरंग, छोटी पीपर, लालचंदन, अंजन, सेंधा नमक—इनको पीसकर लगाने से तिमिर रोग निर्मूल होता है।

तेजपात, गेरू, कपूर, मुलेठी, नीलकमल, अंजन और नागकेशर—इनको पीसकर आँखों में आँजने से सभी प्रकार के तिमिर दूर होते हैं।

त्रिफला, भगँरैया, सोंठ, मधु, घृत और नागकेशर—इन्हें गोमूत्र में पीसकर सिंचन करने से गरुड़ के समान नेत्र दूरदर्शक बन जाते हैं।

खस के काढ़े में छोटी पीपर और सेंधा नमक का चूर्ण मिलाकर पका लें। पक जाने पर घी मिलाकर उसे पुनः पकावें। पककर गाढ़ा हो जाने पर आग से नीचे उतार कर ठंढा कर लें।

तत्पश्चात् उसमें मधु मिला दें। यह योग समस्त प्रकार के तिमिर में लाभकारक, सौभाग्यप्रदायक तथा उत्साहकारक सिद्ध होता है।

आँवला, रसोत, मधु और घृत—इनके रसक्रिया के द्वारा वातज-पित्तज तिमिर, पटल आदि रोग नष्ट होते हैं।

अदरख और भँगरैया के चूर्ण में मुलेठी के तैल को मिलाकर नस्य लेने से महापटल नेत्ररोग का विनष्टीकरण होता है। सभ प्रकार के वर्णों और चिह्नों की पहचान दृष्टि द्वारा न रह जाने पर लिंगनाश नामक रोग (बादल सरना) की उत्पत्ति होती है।

कफोत्पन्न लिंगनाश रोग के आवर्तकी आदि छह प्रकार के लक्षणों से रहित होने पर उसे सलाई से वेध देना उचित है, किन्तु अन्य दोषों में इस क्रिया को करना अलाभकारी होता है।

यहाँ यह बात स्मरणीय है कि कास-श्वासग्रस्त, क्षतक्षया, कर्णशूली, अन्यान्य कर्णशूली, गर्भिणी नारी, निर्बल, कायर, लोलुप, मद्यपानक तथा अतिवृद्ध व्यक्ति के लिंगनाश में शिरावेध कर्म अनुचित कहा गया है।

शिराभेदनोपरांत तत्क्षण ही लाल-पीली वस्तुएँ दिखाई पड़ने पर उसे शलाका द्वारा शनैः शनैः निकाल कर पटोलादि या त्रिफलादि घृत के द्वारा व्रण का उपनाहन करना उत्तम है।

घृताभ्यक्त रोगी के नेत्रों पर कपड़े की पट्टी बाँधकर उसे किसी निर्वात स्थान में सुला देना चाहिए।

नेत्राविद्ध रोगी को एक सप्ताह तक छींकना, खाँसना, डकारना, थूकना, शीतल जल पीना, अधोमुख बैठना, नहाना, दन्तधावन करना तथा कड़े पदार्थों का चर्वण आदि करने से बचना चाहिए।

ऐसे समय में शक्त्यानुसार लंघन तथा नेत्रवेदना रहने पर गरम घी से सेंक करना लाभदायक है।

त्रिकटु, आँवला, और पुष्करमूल--इनके द्रव का सेवन घी के साथ तीन दिनों तक करते रहें।

अथवा विलेपी का प्रयोग करें। इसके अतिरिक्त तीसरे दिन पट्टी खोलकर वातविनाशक पदार्थों से सेंक करना उचित है।

तदनंतर सातवें दिन नेत्रों की पट्टी पूर्णतया खोल दें। किन्तु जब तक दृष्टि में स्थिरता न आ जाय तब तक पथ्यपूर्वक संयमित जीवन बिताना आवश्यक है।

अयोग्यतापूर्ण रीति से वेधकर्म करने के कारण राग, कोष, अर्बुद, बुद्बुद, केकराक्षिता (तिरछी निगाह से देखना) तथा अधिमंथ आदि नेत्र रोग का जन्म होता है। अपथ्य भोजन के परिणामस्वरूप भी इसी प्रकार के फल देखने में आते हैं।

बिद्धता की दशा में नेत्रों की पीड़ा और राग की उत्पत्ति होने पर निम्न प्रकार से उपचार करना श्रेष्ठ है।

दूध, जौ, गेरू और अनन्तमूल—इनके कल्क को घी में मिलाकर मुख पर लेपित करने से नेत्रपीड़ा तथा नेत्रों के अन्य रोगों का शमन होता है।

दुद्धी (एक प्रकार की घास), अनन्तमूल, धमासा, मंजीठ और मुलेठी—इनके कल्क में बकरी का दूध डालकर गरम लेप लगाने से सुखानुभूति होती है।

वातनाशक पदार्थों में चौगुना दूध मिलाकर पकावें। पुनः उसमें काकोल्यादिगण के द्रव्यों को डालकर घी में पाक करें। सभी प्रकार के कार्यों में इस घृत की श्रेष्ठता है।

उक्त प्रकार के उपचार तथा स्निग्धोष्ण आहार लेने पर भी नेत्रपीड़ा की वर्तमानता रहे तो अधिमंथ की भाँति शिरादाह का अवलंबन करना आवश्यक है।

अब यहाँ नेत्रों के निर्मलीकरण की युक्ति कही जा रही है।

मेढ़ासिंगी (अमृतविषवंग), शिरीष और मालती—समान भाग में इनके फूलों और कायफल को बकरी के दूध में पीसकर ताम्रपात्र में एक सप्ताह तक रख छोड़े। तदनंतर उसकी बत्ती बनाकर नेत्रों में अंजन करें।

काला सुरमा, मूँगा, समुद्रफेन और मैनसिल—इनको समभाग में लेकर इसी के बराबर कालीमरिच को बकरी के दूध में पीसकर बत्ती बना प्रयुक्त करें।

अथवा रसोत, घृत, मधु, तालीसपत्र, नागकेशर और गेरू—इनके साथ गोबर का रस मिलाकर आँखों में लगाने से नेत्रों के पित्तज रोग में लाभ मिलता है।

कमल, नीलकमल और केशर में गोबर का रस मिलाकर गुटिका बना लें। इसका अंजन सदैव ही प्रयोक्तव्य है।

अथवा काला सुरमा, शंख, त्रिकटु, अंजन और मैनसिल, हलदी, दारुहलदी, चन्दन—इन्हें गोबर के रस में पीसकर अंजन लगाना श्रेष्ठकर है।

सेहरी मछली का खार बनाकर अंजन लगाने से रतौंधी का निवारण होता है।

इसी प्रकार का फल हींग और कानों की मैल मिलाकर अंजन लगाने से भी मिलता है।

बकरी के यकृत् (हृदय का दक्षिणवर्ती मांसपिंड, लीवर) में छोटी पीपर पकाकर उसी मांसरस में उसे पीसकर नेत्रांजन करने से रतौंधी नहीं रह जाती।

कालीमरिच में मधु मिलाकर आँखों में लगाने से रतौंधी दूर होती है।

त्रिफलामोदक का प्रयोग

हरड़ १६ तोले, बहेड़ा ८ तोले, आँवला ३२ तोले, शतावरी २ पल, मंडूर १ पल, मुलेठी २ पल, सुहागा २ तोले, सेंधा नमक २ तोले और छोटी पीपर २ तोले। इन सबके बराबर शक्कर मिलाकर मधु और घृत डाल मोदक बना लें।

प्रतिदिन प्रातः-सायं पथ्य सेवन करते हुए इस मोदक के खाने से तिमिर, पटल, काच, पिल्ल, रतौंधी, अर्जुनस्त्राव, अर्श, रक्तराजी, पीड़ा, क्लेद, सूजन, जलन, राग, परिस्त्रव, दुःखिका, सव्रणशुक्र तथा वर्त्मरोग समूल नष्ट हो जाते हैं।

त्रिफलाघृत का प्रयोग

त्रिफला के कल्क और क्वाथ में दूध डालकर घी में पकाकर सायंकाल सेवन करने से तिमिर रोग दूर होता है।

त्रिफला का रस १ प्रस्थ, भँगरैया का रस १ प्रस्थ, बकरी का दूध १ प्रस्थ,

गिलोय तथा आँवले का रस १-१ प्रस्थ। इन सबका एकीकरण कर घी में पका लें। पाक करते समय शक्कर, छोटी पीपर, दाख, त्रिफला, नीलकमल, मुलेठी, क्षीरकाकोली, गुरुच और कटेरी—इनके कल्क को भी उसमें मिला दें।

पूर्णरूप से घृतपाक हो जाने पर उसे विशुद्ध पात्र में रख दें। इस घृत का पान भोजन के पूर्व, मध्य और अंत में करने से सभी प्रकार के नेत्र रोगों का उन्मूलन होता है।

इससे रसयुक्त नेत्ररोग, अतिरक्तयुक्त, दुष्टरक्तयुक्त, अतिस्रुत, रतौंधी, कफ-वातदूषित दृष्टि, नेत्रस्राव, वातज-पित्तज नेत्रकण्डू, नेत्रपाक तथा दूर दृष्टि का अभाव आदि रोग जाते रहते हैं।

इस घृत के प्रयोग से गरुड़सदृश दूरगामी दृष्टि आती तथा बल, वर्ण और क्षुधाग्नि की वृद्धि होती है। यह घृत जगत में चिकित्सकों द्वारा अनुमोदित और पूजित है।

त्रैफलघृत का प्रयोग

त्रिफला, त्रिकटु, मुनक्का, मुलेठी, कटुकी, पुनर्नवा, छोटी इलायची, भाभीरंग, नागकेशर, नीलकमल, दोनों सारिवा, हलदी, दारुहलदी—इन सबको १-१ कर्ष और भाभीरंग को ३ कर्ष की मात्रा में कल्क बनाकर १-१ प्रस्थ दूध और घी मिलाकर पकावें।

इस घृत के सेवन से त्रिदोषज तिमिर, स्राव, कामला, काच, अर्बुद, विसर्प, प्रदर, कण्डू, प्रदूषित रक्त, सूजन, नीलिका, केशों का पकना या टूटकर झड़ना, विषम ज्वर, अर्म, वर्त्म तथा नेत्रों की फूली आदि सभी रोग इस प्रकार मिट जाते हैं जिस प्रकार सूर्योदय के होने पर अंधकार मिट जाता है। इसके समान अन्य कोई भी घृत लाभप्रद नहीं होता।

भँगरैया के १ प्रस्थ रस में मुलेठी का कल्क मिला तैलपाक कर उपयोग करने पर शीघ्र ही नेत्र स्वच्छता को प्राप्त हो जाता है।

गोबर के क्वाथ में पक्वित तैल या घृत का नस्य लेना तिमिराविनाशक होता है। घृत के नस्य से केवल पित्तजन्य तिमिर का नाश होता है, किन्तु तैल के नास लेने से वातज एवं रक्तज तिमिर भी दूर होते हैं।

जीवक, ऋषभक, मेदा, दाख, मालती, कटेरी, कंटकारी मुलेठी, खिरेंटी, भाभीरंग, मंजीठ, शर्करा, रास्ना, नीलकमल, गोखरू, पुंडरिया, विषखपरा, सेंधा नमक और छोटी पीपर—इन्हें १-१ अक्ष परिमाण में कल्क बना तैल या घी में पकावें।

इनके प्रयोग से मुख तथा नाक की दुर्गन्धि, असमय में केशों की श्वेतता, **जबड़े** की जकड़न, खाँसी, साँस, सूखापन, गरदन की जकड़न तथा नेत्रव्यंग आदि रोग अल्पावधि में ही निर्मूल हो जाते हैं।

छोटी पीपर, त्रिफला, लाह, लौहचूर्ण तथा सेंधा नमक—इन सबको भँगरैया के रस में घोंटकर गुटिका बना लें।

इस गुटिका का अंजन लगाने से भ्रम, तिमिर, काच, अर्बुद, कण्डू, शुक्र, अर्जुन तथा अजका आदि रोग नष्ट होते हैं।

गेरू, सेंधा नमक, हर्रें और पलाश वृक्ष का गोंद—इन सब वस्तुओं का क्रमशः वृद्धि करते हुए चूर्ण बना लें। इस चूर्ण के अंजन से आँखों की फूली कट जाती हैं।

नागकेशर, रसोत, शक्कर, समुद्रफेन, शंख, सेंधा नमक, गेरू, मैनसिल और कालीमरिच—इन्हें पीसकर मधुरस के द्वारा रसक्रिया करने से अर्म, काच, तिमिर आदि रोगों का विनष्टीकरण होता है।

मूँगा, मोती, वैदूर्यमणि (लहसुनिया नामक रत्न), शंख, स्फटिक (बिल्लौर नामक पत्थर), चन्दन, स्वर्ण, रजत तथा मधु। इनके द्वारा विधिवत् अंजन प्रयोग से नेत्र की फूली कट जाती है।

अर्जुन नामक रोग में दही के पानी से अभिसिंचन, मधु के साथ आश्च्योतन तथा पित्तदोषोक्त उपचार करणीय होता है।

शंखचूर्ण के साथ मधु, सेंधा नमक और निर्मली, शक्कर और समुद्रफेन का प्रयोग अर्जुन रोग में करना लाभकारी है।

गोरोचन, सहिजन के बीज, सोंठ और सेंधा नमक—इनके सम भागों को बिजौरा नीबू के रस में मिलाकर अंजन करना पिडिका रोगनाशक होता है।

कफोत्पन्न उपनाह रोग (नेत्र के संधिस्थान में किंचित् पकने वाली खुजली के साथ गाँठ की उत्पत्ति) में मण्डलाग्र नामक संयंत्र द्वारा भेदन करने के बाद छोटी पीपर, मधु और सेंधा नमक का प्रलेप करें अथवा इसे चारों ओर से खुरच दें।

हरड़ के बीज ३ भाग, बहेड़े के बीज २ भाग तथा आँवले के बीज १ भाग—इन्हें पीसकर बत्ती बना लें। इसके द्वारा रक्त-प्रतिरक्त रोग का शमन करें।

सरलवृक्ष का गोंद, तथा त्रिफला क्वाथ को वातादि दोषानुसार मधु, घृत या पिप्पली अथवा इनके मिश्रण को प्रयुक्त करना उचित है।

कृमिग्रंथि रोग में उसके भेदनोपरांत त्रिफला, गोमूत्र, कसीस, सेंधा नमक और रसोत—इनके द्वारा रसक्रिया करने के परिणामस्वरूप व्रण का प्रतिसारण होता है।

पिल्ल रोगी को पहले स्निग्धित कर वमन करायें। तदनन्तर शिराभेद के द्वारा दूषित रक्त का निष्कासन कर दें। तत्पश्चात् विरेचन करके शुद्धि होने तक वर्त्म को खुरचने रहना चाहिए।

मैनसिल, रसोत, त्रिकटु और गोरोचन का अंजन भी प्रयुक्त करते रहें। अथवा हर्रे के रस में तगर को पीसकर अंजन करने से भी पिल्ल रोग का निवारण होना संभव होता है।

स्नेहयुक्त देवदारु को बकरी के मूत्र में भिंगोकर अंजन करने से भी लाभ मिलता है।

रसोत, राल, चमेली का पुष्प, मैनसिल, समुद्रफेन, लवण, गेरू और कालीमरिच—इनके बराबर भागों को मधु के साथ पीसकर प्रच्छन्नचर्म नामसंज्ञक पिल्ल रोग (पलकों का आपस में चिपकना तथा पलकों के रोमों का टूटना) में अंजन लगाने से क्लेद और कण्डू दूर होकर पलकों पर पुन: बाल उग आते हैं।

सरिवन की जड़, सेंधा नमक, कालीमरिच—इनको कांजी के साथ ताँबें के बरतन पर पीसकर अंजन लगाने से **पित्तजन्य पिल्ल रोग** दूर होता है।

हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, लोध, मुलेठी और लालचंदन—इन्हें भँगरैया के रस में पीसकर एक सप्ताह तक लौहपात्र पर घिसकर पुन: ताम्रपात्र पर भी एक सप्ताह तक घिस डालें।

उसकी बत्ती या चूर्ण बना नेत्रों में लगाने या नस्य लेने से सभी प्रकार के नेत्ररोग दूर होते हैं।

मंजीठ, मुलेठी, नीलकमल, समुद्रफेन, गोरोचन, मांसी, लालचंदन, शंख, गेरू, तेजपात, तालीसपत्र और पुष्पांजन—इनके बराबर परिमाण में सिद्ध किये गये अंजन को लगाने से कंडू, क्लेद, कीचड़, आँसू, रक्त, पीड़ा, पिल्ल, अर्म आदि सभी नेत्रविकार नष्ट होते हैं।

नीलाथोथा (तूतिया) १ पल, सहिजल के बीज २० नग तथा कांजी ३० पल। इन तीनों को पीसकर ताम्रपात्र में रख छोड़े। इसके द्वारा नेत्रों को सेंकने से दीर्घकालिक पिल्ल रोग का उन्मूलन होता है तथा इसका लेप लगाने से कंडू और सूजन का निवारण होता है।

करंज के बीज, बीजाबोल और चमेली की कली—इन्हें कूटकर इन्हीं के क्वाथ में सिद्ध कर लें। इसका अंजन पिल्लरोगनाशक तथा पलकों के बालों का उत्पादक होता है।

हीराकसीस को चूर्णित कर ताँबें के पात्र में मरोड़फली के रस में दश दिनों **तक भिंगोकर** अंजन करने से भी उक्त रोग का निर्मूलन होता है।

पिल्लरोगी के लिए प्रतिदिन वर्त्म का अवलेखन, रक्तनिष्कासन, बारम्बार विरेचन, आश्च्योतन, अंजन, नस्यग्रहण तथा धूमपान करना आवश्यक होता है।

किसी प्रकार से भी पूयालस का शमन न होने पर सूक्ष्म शलाका द्वारा अन्तर्दाह करना लाभदायक सिद्ध होता है। त्रिफला, त्रिकटु और सेंधा नमक—इनके साथ घी को पकाकर पीना हितकर है। यह घृत भेदक, हृदयदीपक और कफविनाशक होता है।

शिरोरोग का उपचार

वातोत्पन्न शिरोरोग में स्नेहन, स्वेदन तथा स्निग्ध वातशामक अन्न, पानादि का नित्यप्रति उपयोग करते रहना आवश्यक होता है।

कूठ और रेंड़ की जड़ को या मुचकुन्द के फूलों को कांजी में पीसकर शिर पर लेप लगाने से तत्काल ही शिरोव्यथा दूर होती है।

पंचमूल को दूध में पकाकर नस्य लेना भी शिरः पीड़ा नाशक होता है।

अथवा शिर के बराबर लम्बाई और आठ अंगुल चौड़ाई वाले एक चर्मखंड को लेकर शिर को आच्छादित कर निचले संधि भाग में उड़द के कल्क से लेपित कर दें। तदनंतर रोगी को स्थिरासन में बैठाकर उसके शिर पर गरम तैल भर दें। रोगी के सहन करने तक उस तैल को धारण कर रखना चाहिए।

अथवा रोग के शमन होने के अनन्तर भी उसे एक प्रहर या आधा प्रहर तक शिर पर रखे रहना उचित कहा गया है।

इस प्रक्रिया को शिरोबस्ति कहा जाता है। इससे वातज शिरोवेदना, जबड़े की जकड़न, नेत्र रोग, कर्ण रोग, पक्षाघात या शिर का काँपना आदि दोष नष्ट होते हैं।

इसी प्रकार तैल के द्वारा नेत्र तथा कर्णपूरण करना भी लाभप्रद है।

पित्तोत्पन्न शिरोरोग में रोगी को पहले स्निग्धित कर विरेचन करायें। विरेचन के निमित्त दाख, त्रिफला, गन्ने का रस, दूध और घृतादि पदार्थ प्रयुक्त करने चाहिए।

शक्कर, दूध और जल के द्वारा शिर का परिषेक या शतधौत घृत का शिर पर अवधारण करना भी प्रशस्त माना गया है।

इसी प्रकार शिर को शीतल जल में डुबोये रखना भी उपयोगी सिद्ध होता है।

कुईं के पुष्प, नीलकमल और कमलों को चंदनजल में आर्द्र करके शिर से स्पर्श कराना, शीतल वायु सेवन आदि कार्य भी दाह और पीड़ा को दबाने में सहायक होते हैं।

चन्दन, खस, मुलेठी, खिरेंटी, कटेरी, नरसल और कमल उक्त वस्तुओं को क्षारजल में पीसकर शिर पर लेपित करें। अथवा केवल क्षारजल से शिर का सिंचन करना भी लाभप्रद है।

कमल का डंठल, विसतन्तु, कमलकंद, चंदन, नीलकमल और केशर—इन्हें स्निग्ध और शीतल करके शिर पर लेप लगायें।

इसी प्रकार आँवला और नीलकमल को पीसकर लेप लगाना गुणकारी है।

मुलेठी, चंदन और गुरुच—इनके कल्क में चौगुना दूध मिलाकर पकाया हुआ घृत भी लाभदायक है।

पित्तज शिरोरोग में शक्कर, दाख और मुलेठी—इनके द्वारा सिद्ध घृत का नस्य लेना भी उपयोगी है।

रक्तज शिरोरोग के लिए पित्तज शिरोरोग के समान भोजन, प्रलेपन, सिंचन आदि की क्रियाएँ की जानी चाहिए। रक्त शिरोरोग में विशेषत: रक्तनिष्कासन से अधिक लाभ मिलता है।

कफज शिरोरोग में स्वेदन, नमकीन, रूक्ष, उष्ण तथा पाचक पदार्थों का सेवन, तीक्ष्णरूप अवपीड़न, धूमयोग तथा कवलग्रह धारण करना श्रेष्ठ है। अथवा शिर को महुआ के सार से स्वेदित करके विरेचन कर्म अपनाएँ।

अथवा छोटी पीपर, अदरख, सोंठ, मुलेठी, सौंफ, नीलकमल और कूठ—इनको जल में पीसकर मस्तक पर लेपित करने से **कफज शिरोवेदना** जाती रहती है।

देवदारु, सुगंधवाला, कूठ, खस और सोंठ—इन्हें कांजी में पीसकर तैल मिला लेप लगाने से कफज **शिर:पीड़ा** का निवारण होता है।

सान्निपातिक शिरोरोग में मिश्रितोपचार अथवा जीर्ण घृत का पान करना लाभदायक है।

त्रिकटु, कमल के बीज, हलदी, रास्ना और असगंध—इनके क्वाथ का नस्य लेने से त्रिदोषज शिर:शूल नष्ट होता है।

सौंफ, रेंड़ की जड़, वचा, तगर, कटेरी और त्रिफला—इनके द्वारा पकाये गये तैल का नास लेने पर कफयुक्त तिमिर तथा शिर के समस्त रोग मिट जाते हैं।

बृहज्जीवकादि तैल का प्रयोग

जीवक, ऋषभक, दाख, महुआ, मुलेठी, खिरेंटी, नीलकमल, चंदन, बिदारीकन्द और शर्करा—इनके आधा सेर कल्क में ३ सेर दूध डालकर १ प्रस्थ तैल को पकाते समय ही जंगली मृगों के ५० पल मांसरस भी उसमें मिला दें।

पकने पर इस तैल का नस्य लेने से अर्धावभेदक (अधकपारी शिरदर्द,

आधासीसी), बहिरापन, कर्णपीड़ा, तिमिर, गलशुंभी, वातज-पित्तज शिरोरोग, दन्तरोग, शिरोव्यथा तथा लकवा आदि रोगों पर नियंत्रण होता है।

षड्बिन्दु तैल का प्रयोग

रेंड़ की जड़, तगर, सोया, जीवन्ती, रास्ना, सेंधा नमक, भँगरैया, भाभीरंग, मुलेठी और सोंठ। काले तिल के तैल में इनके कल्क को मिलाकर चौगुना बकरी के दूध और चौगुन भाँगरा के रस में पकावें। इनकी छह बूँदों को नासिका में डालने से समस्त प्रकार के **शिरोरोग** नष्ट होते हैं।

इसके साथ ही झड़ते हुए केश, हिलते हुए दाँत, गरुड़ के समान दृष्टि तथा शारीरिक बल का वर्धन होता है।

अनंतमूल, कमल, कूठ और मुलेठी—इनको कांजी में पीसकर घी तथा तैल मिलाकर शिर में लेप लगाने से सूर्यावर्त (दिन में सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक रहने वाली शिर:पीड़ा) रोग की परिसमाप्ति हो जाती है। यही प्रक्रिया क्षयज शिरोरोग में भी अपनानी चाहिए।

अथवा शक्करमिश्रित दूध या नारियल के जल का पान करना लाभकारी है। क्षयरोग में प्रयुक्त होने वाले औषधों का प्रयोग इस रोग में भी करने चाहिए।

शिर के रोगों में वातविनाशक मधुर पदार्थों द्वारा पकाये हुए घृत को पीना या नाकों से सूँघना भी उचित है।

कृमिज शिरोरोग में बकरी के मूत्र के साथ नस्य लेना उचित है। गुड़ के साथ सोंठ या सेंधा नमक के साथ छोटी पीपर का प्रयोग भी इसमें लाभप्रद सिद्ध होता है।

बाहुस्तंभ आदि वातरोगों, ऊर्ध्व रोगों तथा सूर्यावर्त आदि रोगों में नस्यादि कर्म परमोपयोगी होते हैं। सूर्यावर्त में मुख्यत: दूध-घृत द्वारा भोज, दूध-घृत का सेवन तथा दूध-घी के साथ विरेचन लेना भी पथ्यस्वरूप माना गया है।

अथवा पेषित कर स्वेदन तथा स्निग्ध-उष्ण-शीतल द्रव्यों का लेपन भी प्रशस्त होता है।

शक्कर, कुंकुम और घृत—इनका नस्य लेने से भौंहों तथा कनपटियों का शूल, कर्णपीड़ा, नेत्रशूल, शिर:शूल तथा सूर्यावर्त रोग निर्मूल होते हैं।

जंगली पशुओं के मांस द्वारा उपनाहन कर्म करने से भीषण सूर्यावर्त का भी निवारण होता है।

सोंठ के रस में वचा और छोटी पीपर मिलाकर अवपीड़न करने से सूर्यावर्त का शमन संभव होता है।

अनंतवाह रोग (त्रिदोष के परिणामस्वरूप गरदन की शिराओं का पीड़ित होना तथा भोंह, कान, नेत्र आदि का व्यथित होना) में भी सूर्यावर्तोक्त क्रिया अपनानी चाहिए तथा शिराभेदन भी आवश्यक होता है।

सूर्यावर्त में वात-पित्तशामक आहार, मधूक, (महुआ), मधु, संयाव (घी, दूध, गुड़ तथा गेहूँ के आँटे से निर्मित विशेष प्रकार का भोज्य) तथा घृतादि से जो क्रिया की जाती है वे ही सूर्यावर्त में लाभकारी होती हैं।

सूर्यावर्त के समान ही शंखक रोग (रक्त-पित्त और वातदोषोत्पन्न कनपटी में विषैली लालरंग की सूजन का उत्पन्न होकर समूचे शिर में फैलना) में भी उपचार करने चाहिए।

इसके लिए स्वेदन विधान अनुपयुक्त होता है। इस रोग में घी-दूध या केवल आधिकाधिक दुग्ध सेवन करना श्रेष्ठ है।

त्रिदोषज शिरोरोग में लंघन करना सदैव ही लाभप्रद कहा गया है। अथवा पिप्पलीचूर्णमिश्रित दशमूल का क्वाथ, शतावरी, कालातिल, मुलेठी, नीलकमल, दूब और पुनर्नवा (गदहपूरना)—इनका लेप लगाना लाभदायक होता है।

शंखक रोग में शीतल अन्नपान, शीतल परिषेक तथा दुग्धस्रावी वृक्षों (बरगद आदि) के कल्क द्वारा उत्तम फल मिलता है।

यष्ट्यादि तैल का प्रयोग

मुलेठी, बला (खिरेंटी), रास्ना और दशमूल—मधुर द्रव्यों के कल्क के साथ इनके रस में पकाया हुआ घृत सभी प्रकार के शिरोरोग में लाभकारी होता है।

मयूराद्य तैल का प्रयोग

दशमूल, खिरेंटी, रास्ना, मुलेठी और त्रिफला—इनके कल्क के साथ मोर के मांस को जिसमें उसके डैने, पित्त, मुख, मल, पैर और अँतड़ियाँ न हों, जल में पका लें। चौथाई भाग रस के शेष रहने पर उसमें १-१ प्रस्थ घी और दूध मिलाकर पुनः पकावें। पकाते समय मधुरगणीय द्रव्यों के १-१ कर्ष कल्क को भी मिला दें। इस घृत के द्वारा शिरोरोग, कर्णरोग, नासिका रोग, नेत्ररोग, मुखरोग तथा कंठरोगों का विनष्टीकरण होता है।

प्रपौण्डरीकादि तैल का प्रयोग

पुंडरिया, मुलेठी, छोटी पीपर, चंदन और नीलकमल—इनके कल्क को आँवले के रस के साथ तैल मिलाकर पका लें। इस तैल के मालिश करने तथा नाक से नास लेने पर शिरोरोग तथा केशों का पकना भी रुक जाता है।

प्रदर रोग का उपचार

वातादि दोषों के फलस्वरूप विभिन्न वर्णीय शुक्र का स्रवित होना ही प्रदररोग कहा जाता है। इसे स्त्रीरोग भी कहते हैं।

वातज प्रदरग्रस्तता में काला नमक, स्याहजीरा, मुलेठी और नीलकमल—इनका सेवन दही और मधु के साथ करना उपयोगी होता है।

पित्तज प्रदर में कृष्ण मृग के रक्त को अड़ूसा के स्वरस में मिलाकर शक्कर और मधु के साथ पान करना उत्तम है। अथवा केवल गुरुच के रस का ही पान करना चाहिए।

पाण्डुप्रदर (कफयुक्त श्वेतवर्णीय प्रदर) में रोहिड़ामूल के कल्क को जल के साथ पीना लाभकारी है। अथवा आँवला बीज के कल्क में मधु-शर्करा मिलाकर पीने से लाभ मिलता है।

धव के फूलों के कल्क या आँवले के कल्क को मधु के साथ उबालकर २ तोले की मात्रा में पीने पर प्रदर रोग से मुक्ति मिल जाती है।

काकजंघा या कपास की जड़ को चावल की धोवन के साथ पीने से प्रदर रोग जाता रहता है।

इसी प्रकार अशोक वृक्ष के छिलके का काढ़ा बना उबले हुए दूध को ठण्ढा करके प्रतिदिन प्रात:काल पीने से उग्ररूप वाला प्रदर अल्पकाल में ही नष्ट हो जाता है तथा स्त्रियाँ बल-वर्ण से युक्त हो उठती हैं।

दारुहलदी, रसोत, अड़ूसा, मोथा, चिरायता, बेल और भिलावाँ—इनके क्वाथ को मधु के साथ पीने से प्रचंड शूलयुक्त पीला, काला, श्वेत, लाल और नीला रंग वाला प्रदर नष्ट हो जाता है।

अथवा कुशा की जड़ को चावल की धोवन के साथ पीने से तीन दिनों में ही प्रदर रोग से छुटकारा मिल जाता है।

कठूमर के फल का रस निचोड़कर शहद के साथ पीने से प्रदर रोग का उन्मूलन होता है। इसके साथ ही रुग्णा नारी को शक्करमिश्रित दुग्धयुक्त भोजन भी अनिवार्य होता है।

खिरेंटी की जड़ के चूर्ण में मधु मिलाकर दूध के साथ पीने से प्रदर का निवारण होता है।

कुशा और खिरेंटी की जड़ को चावल की धोवन के साथ पीसकर पीना रक्तप्रदर का उन्मूलक होता है।

शास्त्रोक्त औषधियों से निर्मित मदिरा का पान करने से रक्तप्रदर तथा शुक्रप्रदर का विनाश होता है। इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिए।

चिकित्सक को रक्तपित्त नामक रोग में वर्णित पथ्यानुगामिनी उपचार करने चाहिए।

पुष्यानुग चूर्ण का प्रयोग

पाठा, जामुन, आम की गुठली का गूदा, भूरिछरीला, रसोत, मोचरस, बड़ी खिरेंटी, कमलकेशर, केशर, अतीस, नागरमोथा, बेल, लोध, गेरू, कायफल, कालीमरिच, सोंठ, दाख, लालचंदन, सोनापाठा, इन्द्रयव, अनन्तमूल, धव के फूल, मुलेठी और अर्जुन—इन सब औषधों को पुष्य नक्षत्र में उत्पाटित कर समान परिमाण में चूर्णित कर लें।

इस चूर्ण में मधु मिलाकर चावल की धोवन के साथ पान करें।

इस पुष्यानुग नामक चूर्ण के द्वारा बवासीर, रक्तातिसार, रक्तविकार, शिशुओं के आगन्तुज दोष, योनिदोष तथा नारियों के श्वेत, नीले, काले, लाल, पीले वर्णवाले प्रदर रोग का उन्मूलन होता है।

यह चूर्ण महर्षि आत्रेय द्वारा पूजित है। इस चूर्ण के निर्माण में दक्षिण से अन्य देशों में अम्बष्ठा (मोइया) के स्थान में लक्ष्मणा बूटी (सफेद कंटकारी) का प्रयोग किया जाता है।

मुद्गादि घृत का प्रयोग

मूँग और उड़द के काढ़ा में रास्ना, चित्रक, सोंठ, छोटी पीपर और बेल का गूदा—इनके कल्क को घृत में पकाकर सेवन करना प्रदर में परमौषध कहा गया है।

बृहच्छतावरी घृत का प्रयोग

शतावरी के १ प्रस्थ रस में १-१ प्रस्थ दूध और घी डालकर मथानी द्वारा खूब मथ डालें। तदनन्तर कठूमर, जीवनीयमण के पदार्थ, मुलेठी, चंदन, कमलगट्टा, गोखरू, क्रौंच के बीज, खिरेंटी, गंगरेन, सरिवन, पिठवन और शालवन—इन सबके ८ पल कल्क को एकीकृत करके पका लें।

उक्त पाक करते समय समुचित मात्रा में शक्कर, गम्भारी और त्रिफला का भी मिश्रण कर दें। पूर्णरूप से पक जाने पर उसे उतारकर रख लें।

इस घृत के उपयोग से समस्त रक्तपित्त-संबंधी विकार, वातज-पित्तज रोग, दूषित रक्त, क्षय, खाँसी, हिचकी, श्वास, शारीरिक जलन, शिरोदाह, रक्तपित्तोत्पन्न या अन्य दोषोत्पन्न प्रदर, मूत्रकृच्छ्र आदि रोग वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय से अंधकार, झंझावात से मेघ तथा ज्ञानोदय होने पर माया का विनाश हो जाता है।

शीतकल्याणक घतृ का प्रयोग

कुमुदिनी, कमलगट्टा, खस, गेहूँ, लाल रंग का शालि चावल, भुगवन, काकोली, कुंभेर, मुलेठी, खिरेंटी की जड़, कंघी की जड़, नीलकमल, ताड़ का मस्तक अर्थात् ऊपरी भाग, बिदारीकन्द, शतावरी, शालपर्णी, जीवक, त्रिफला, खीरे का बीज और केले की कच्ची फल—इनके आधा-आधा पल कल्कों के साथ ४ प्रस्थ दूध, २ प्रस्थ जल तथा १ प्रस्थ घी को मिलाकर पका लेवें।

इस घृत को प्रदर, रक्तगुल्म, रक्तपित्त, हलीमक (हकलाना) विभिन्नस्वरूपी पित्त, कामला, दूषित रक्त, अरोचकता, पुराना बुखार, पांडु, मद तथा भ्रम आदि रोगों में प्रयुक्त करने चाहिए।

अल्प रक्तार्तवा होने के कारण गर्भधारण में अक्षम नारियों के लिए भी यह घृत रसायन स्वरूप है।

योनिव्यापद् का उपचार

योनिव्यापत् अर्थात् प्रजननांग रोगों में मुख्यत: बस्तिकर्म, अभ्यंग, परिषेक, प्रलेप तथा योनि में औषधयुक्त फाहा धारण करने तथा वातनाशक उपचार करने के फलस्वरूप उत्तम लाभ मिलता है।

वचा, जीरा, स्याहजीरा, छोटी पीपर, अड़ूसा, सेंधा नमक, अजमोदा, जवाखार, चित्रक, शक्कर—इन सबके चूर्ण को घी में भूनकर सुरामंड में उबाल लें।

तत्पश्चात् इसके पान करने से **योनि रोग**, **गुल्म** तथा **बवासीर** आदि रोग नष्ट होते हैं।

गुरुच, त्रिफला और दंती का काढ़ा बनाकर योनि का परिषेक करने से लाभ मिलता है।

इसके अतिरिक्त तगर, कटाई, कूठ, सेंधा नमक और देवदारु—इन्हें तैल में पकाकर उस तैल में रूई का फाहा भिंगोंकर योनि में स्थापित करने से योनिरोग दूर होता है।

पित्तज योनिरोग में पित्तशामक सेंक, अभ्यंग और पिचु की क्रिया उपयोगी होती है। पित्तशामक शीतल उपचार तथा स्नेहन के लिए घृत का प्रयोग करना उचित होता है।

बलास रोग से ग्रस्त प्रदूषित योनि में रूक्ष, उष्ण तथा कफविनाशक उपाय करने चाहिए।

कालीमरिच, छोटी पीपर, उड़द, सोया, कूठ और सेंधा नमक। इनको पीसकर बत्ती के रूप में योनि के अंदर प्रविष्ट कराने से योनि का शुद्धिकरण होता है।

पुष्य नक्षत्र आने पर लक्ष्मणा बूटी को जड़सहित उत्पाटित कर कुमारी कन्या के द्वारा पिसवा लें। पुत्र-प्राप्ति के निमित्त गोदुग्ध और गोघृत के साथ इसका सेवन ऋतुस्नाता नारी को करना उचित है।

असंगंध के क्वाथ में पकाये हुए घी और दूध को मिलाकर पीने से ऋतुस्नाता गर्भधारण में समर्थ हो जाती है।

फलघृत का प्रयोग

मंजीठ, मुलेठी, कूठ, त्रिफला, शर्करा, खिरेंटी, मेदा, दूधिया, काकोली की जड़, असगंध की जड़, हलदी, अजमोदा, दारुहलदी, हींग, कटुकी, नील-कमल, कुमुद, दाख, काकोली, क्षीरकाकोली, लालचंदन और श्वेतचन्दन; इन पदार्थों को १-१ कर्ष परिमाण में लेकर १ प्रस्थ घी में पकावें। इस घृत का प्रयोग वन्ध्या या मृतवत्सा नारी अथवा अल्पायु या केवल कन्या सन्तानोत्पादिका नारी में कराने से उत्तम फल मिलता है।

इससे योनिविकार, रजोदोष तथा परिस्राव आदि रोगों में सेवन करना लाभकारी होता है। अश्विनीकुमारों द्वारा निर्मित यह घृत सभी अनिष्टकारी ग्रहों का शमन करता है।

फलघृत निर्माण की अन्य विधि

कूठ (कूड़ा) की जड़, हलदी, दारुहलदी, छोटी पीपर, कटुकी, काकोली, क्षीरकाकोली, विशाला, त्रिफला, नीलकमल, मेदा, रास्ना, भाभीरंग, देवदारु, हींग, दोनों सारिवा, सोया, वचा, मुलेठी, प्रियंगु का पुष्प, अजमोदा, महामेदा, श्वेत चंदन, रक्तचंदन, चमेली का फूल, वंशलोचन, कायफल और मिश्री।

इन पदार्थों को १-१ अक्ष लेकर १ प्रस्थ घी में चौगुना दूध मिलाकर उपलों की आँच पर पका लें। पकने से पूर्व शुभ दिन, शुभ घड़ी तथा पुष्य नक्षत्र के आने पर देवार्चनोपरांत ताँबे के पात्र में पाक करें।

इस घृतपान के द्वारा पुरुष नारियों के मध्य प्रचंड वेगवान वृषभ के समान स्वयं को अनुभव करता है।

इसके सेवन से कन्याजाया, मृतजाया, वन्ध्या, चलितगर्भा, गर्भविहीना तथा दुर्भगा नारी भी दीर्घजीवी, सुंदर, वेद-वेदांगपारग तथा स्वस्थ पुत्र का जनन करती है।

यह फलघृत भरद्वाज मुनि के द्वारा निर्मित किया हुआ है। इस घृत में लक्ष्मणा बूटी की जड़ का ग्रहण नहीं किया गया है तब भी चिकित्सकों ने उक्त बूटी को ग्राह्य माना है।

सोमघृत का प्रयोग

सफेद सरसों, वचा, ब्राह्मीबूटी, शंखाहुलि, काकड़ासिंगी, काकोली, मुलेठी, कूठ, कटुकी, सारिवा, त्रिफला, आसवण, पूतिकरंज, अडूसा के पुष्प, मंजीठ, देवदारु, सोंठ, छोटी पीपर, भँगरैया के बीज, हलदी, प्रियंगु के फूल, हुरहुल, दशमूल, हर्रै, भारंगी, असगन्ध और शतावरी।

इन द्रव्यों के २-२ पल भाग को १ द्रोण जल में पका लें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसे निथार कर २ प्रस्थ घी के साथ पुनः पका लें। इस घृत को संतानहीना नारी में २ माशे तथा गर्भवती को ८ माशे की मात्रा में सेवन करायें। इस घृत के प्रयोग से वन्ध्या नारी शूरवीर, वेदज्ञ और स्वस्थ पुत्र के प्रजनन में समर्थ हो जाती है।

इसके अतिरिक्त नारियों के योनिविकार तथा पुरुषों के वीर्यविकार का भी शुद्धिकरण हो जाता है। इसके सप्ताह तक प्रयोग कर लेने के पश्चात् व्यक्ति अपनी जड़ता, गद्गदता तथा मूकता को मिटाकर स्मृतिवान बन जाता है।

इस सोमघृत का निवास जिनके घर में रहता है उनके यहाँ अग्नि तथा वज्रादिकों की भीति नहीं रह जाती तथा उस स्थान का कोई व्यक्ति अल्पायु भी नहीं होता।

नीलोत्पलादि घृत का प्रयोग

नीलकमल, खस, मुलेठी, महुआ, दाख, बिदारीकंद, कुशादि पंचमूल और जीवनीयगण के पदार्थ—इनके कल्क को शतावरी रस तथा दूध के साथ घी में पका लें। पकने पर इसमें चौथाई भाग में शक्कर मिलाकर पान करें।

इसके उपयोग द्वारा वात-पित्त तथा रक्तोत्पन्न प्रदर, शक्तिक्षय, शुक्रभ्रंश, पित्तज मूत्रकृच्छ्र तथा गुल्मादि रोग विनष्ट होते हैं।

मूषक-मांस में कल्क को तैल में ठीक प्रकार से पका लें। इस तैल में वस्त्र को भिंगोकर प्रसवद्वार में धारण करने से नारियों का योनिकन्द नामक रोग दूर होता है।

सूतिका रोग का उपचार

गर्भवती महिलाओं में अचानक रक्तस्राव और पीड़ा की उत्पत्ति होने पर उसके शमनार्थ क्रमशः निम्न प्रकार के उपचार किये जाने चाहिए—

पहले महीने में—मुलेठी, सागौन के बीज, क्षीरकाकोली और देवदारु।

दूसरे महीने में—कुलथी, कालातिल, मंजीठ और शतावरी।

तीसरे महीने में— गुरुच, क्षीरकाकोली, नीलकमल और सारिवा।

चौथे महीने में—अनंतमूल, कालीसर, रास्ना, भारंगी और मुलेठी।

पाँचवें महीने में—कटाई, कटेरी, गंभारी, बरगद वृक्ष के अंकुर, दालचीनी और घृत।

छठे महीने में—पिठवन, खिरेंटी, सहिजन के बीज, गोखरू और मुलेठी।

सातवें महीने में—सिंघाड़ा, कमल का डंठल, दारुहलदी, कसेरू और शक्कर के क्वाथ में दूध मिलाकर।

आठवे महीने में—कैथ, बेल, कटाई, परवल, ईख और कटेरी की जड़ को दूध में।

नवे महीने में—मुलेठी, अनंतमूल, क्षीरकाकोली, कालीसर—इनको दूध के साथ।

दशवें महीने में—दूध में सोंठ को उबालकर पान करें।

अथवा सोंठ, मुलेठी और देवदारु—इन्हें दूध में पकाकर पान करें। ऐसा करने से चलित गर्भ स्थिर होता तथा वेदना भी शांत होती है।

बरतन बनाते समय कुम्हार के हाथ में लगी हुई मिट्टी और मुलेठी को बकरी के दूध में पीसकर पीने से चलायमान गर्भ भी स्थिर हो जाता है।

कुश, कास, रेंड़ और गोखरू—इनकी जड़ को दूध में उबाल कर शक्कर मिला पीने से गर्भ की पीड़ा नहीं रह जाती।

कसेरू, सिंघाड़ा कमलगट्टा, नीलकमल, मुगवन, मुलेठी और शक्कर—इन्हें दूध में पकाकर पान करें और दूध के साथ आहार भी ग्रहण करें।

पाठा, कलिहारी, अड़ूसा तथा चिरचिटा की जड़—इन सबको जल में पीसकर नाभिस्थल, बस्ति तथा योनिद्वार में लेपित करने पर कष्टरहित प्रसव शीघ्र ही हो जाता है।

फालसे या शालवन की जड़ को पीसकर नाभि, पेड़ू या योनिस्थान में लेप लगाने से मूढ़गर्भा नारी को भी सुगमतापूर्वक प्रसव हो जाता है।

अथवा बिजौरा नीबू की जड़, मुलेठी और मधु—इन्हें पीसकर घी के साथ पीना भी सुखपूर्वक प्रसवकारक होता है।

भोजपत्र, कलिहारी और तुम्बी की जड़, साँप की केंचुल, कूठ और सरसों—इन द्रव्यों से अलग-अलग या एक साथ योनिमंडल में धुआँ देने पर निर्विघ्न रूप से प्रसव होता है।

सौंफ, सरसों, स्याहजीरा, सहिजन, सफेद सरसों, चित्रक, हींग, कूठ और मैनफल—इनके कल्क में गोमूत्र और दूध मिलाकर सरसों के तैल में उसे पका लें। पाक होने पर मलद्वार और योनिप्रदेश में अनुवासन बस्ति करना भी लाभदायक सिद्ध होता है।

सौंफ, वचा, कूठ, छोटी पीपर और सरसों—इनके कल्क द्वारा स्नेहन तथा

नमक के साथ निरूहण बस्तिकर्म करने से खेड़ी (आँवलनाल) तुरन्त ही बाहर आ जाती है।

प्रसवोपरान्त प्राय: हृदय, शिर और पेडू में मल्लक नाम्नी वेदना की उत्पत्ति होती है जिसके निवारणार्थ घृत या गरम जल के साथ जवाखार का पीना उत्तम फलदायक होता है।

अथवा पिप्पल्यादिगण के काढ़ा में सेंधा नमक मिलाकर पीने से प्रसूता की पीड़ा शान्त होती है।

गुरुच, सोंठ, कटसरैया, हलदी, इत्कट, पंचमूल, मोथा और सुगंधवाला— इनके शीतल क्वाथ में मधु मिलाकर पीने से सूतिका रोगोत्पत्ति का भय जाता रहता है।

पंचमूल के काढ़ा में तप्त लौह को डालकर पान करना या वातशामक मद्यपान करना भी सूतिका रोग को नष्ट कर देता है।

छोटी पीपर, बड़ी पीपर, चव्य, सोंठ, अजवायन, स्याहजीरा, श्वेत जीरा, हलदी, दारुहलदी, काला नमक और भाभीरंग—इनके कल्क को कांजी में पकावें। इस कांजी के पीने से आमवात रोग दूर होता है।

साथ ही, कफ का विनाशन, क्षुधाग्निवर्धन और धातु का पुष्टिकरण होता है। इस वज्रक नाम्नी कांजी से प्रदूषित स्तन-दुग्ध का भी परिशोधन होता है।

इसके द्वारा प्रसवोपरांत होने वाले मल्लकशूल का शमन तथा स्तन-दुग्ध का वर्धन होता है।

अथवा वनकपास और गन्ने की जड़ को पीसकर सौवीर कांजी के साथ या बिदारीकन्द को मदिरा के साथ पान करना भी स्तन-दुग्धवर्धक होता है।

खण्डशुण्ठीयोग प्रयोग

सोंठ ८ पल, घृत २० पल, दूध २ प्रस्थ, खाँड़ ५० पल और इलायची, दालचीनी, तेजपात, जीरा और त्रिकटु १-१ पल। इसे एकत्रीकरण करके पका लें और प्रसूता स्त्री को प्रयुक्त करायें।

इस खंडशुंठी योग के सेवन से समस्त वातरोगों का विनाश होकर तेज, बल और दूध की वृद्धि होती है।

प्रदूषित दुग्ध शोधन हेतु हरिद्रादिगण या वचादिगण के काढ़ा का पान करें। वातदूषित दुग्ध में दशमूल का काढ़ा तथा पित्तप्रदूषित दुग्ध में गुरुच, भारंगी, परवल, नीम, चंदन, गौरीसर का क्वाथ बनाकर पान करें।

प्रसूता के स्तनशोथ में विद्रधि रोग में वर्णित प्रलेप आदि का लेप लगायें

तथा स्तनं के परिपक्व या अपक्व सूजन से प्रतिदिन दूध को निचोड़ दें। इन्द्रायण की जड़ को पीसकर लेपित करने से सभी प्रकार के स्तनरोग दूर होते हैं। इसी प्रकार हलदी और धतूरे के फल को पीसकर लेप लगाने से स्तन की सूजन तथा पीड़ा नष्ट होती है।

बालरोग का उपचार

शिशु में वर्ण, आयु तथा कांतिवर्धन के लिए कूठ, वचा, हरड़, ब्राह्मी बूटी और कसौंदी—इनको लेहवत् बनाकर घी और मधु के साथ सेवन करायें।

मातृस्तन में दुग्धाभाव होने पर बालक को बकरी या गाय का दूध पिलाना चाहिए। अथवा बालहितकारक तथा दुग्धशोधक पदार्थों का लेप स्तन के चूचुकों पर लगाकर धात्री शिशु को दुग्धपान कराये।

बालक के नाभिस्थल में शोथ के फलस्वरूप उभार आ जाने पर मृत्तिका-पिंड को आग में तपाकर दूध का छींटा दें। इस क्रिया के द्वारा निकलने वाली भाप से नाभि का स्वेदन करें। इससे सूजन दूर हो जाती है।

नाभिपाक होने की अवस्था में हलदी, लोध, प्रियंगु, का फूल और मुलेठी के साथ पकाये गये तैल की मालिश करें या उक्त द्रव्यों के चूर्ण को ही उस पर लगा दें।

हलदी, दारुहलदी, मुलेठी, कटाई और इन्द्रयव—इनका कषाय शिशु को पिलाने से ज्वरातिसार नष्ट होकर धात्री के दूध का भी संशोधन होता है।

मोथा, छोटी पीपर, अतीस और काकड़ासिंगी के चूर्ण में मधु डालकर प्रयोग करने से बालकों के ज्वरातिसार, खाँसी, श्वास और छर्दि दूर होती है।

धव के फूल, सोंठ, धनिया, लोध, इन्द्रयव और सुगंधवाला। इनके लेह को मधु के साथ प्रयुक्त किये जाने पर बालकों के ज्वरातिसार और छर्दि रोग का निवारण होता है।

हलदी, देवदारु, धूपसरल, हरड़, कटेरी, कंटकारी, पिठवन और सौंफ—इनके समान भाग में बनाये गये लेह को मधु-घृत के साथ सेवन कराने से बालकों की वातवेदना का शमन, क्षुधाग्निवर्धन, मल का संशोधन, ज्वरातिसार तथा पाण्डु का निवारण होने के साथ ही सभी रोगों का उन्मूलन होता है।

अजमोदा, छोटी पीपर, रसोत, खीलें, काकड़ासिंगी, कालीमरिच और मधु का लेह खिलाने से बालक के वमन, खाँसी और ज्वर का नाश होता है।

काकड़ासिंगी, मोथा, अतीस—इनका लेह शहद के साथ चटाने से खाँसी, श्वास और वमन आदि दूर होते हैं। अथवा मधु के साथ केवल अतीस का प्रयोग भी लाभकारी होता है।

दाख और मुलेठी के कल्क को स्तनों पर लगाने तथा चिरायता और गुरुच का क्वाथ पीने से प्रदूषितत दूध का शुद्धिकरण होता है।

कटेरी, कंटकारी के रस तथा पंचकोल को चाटना बालकों के लिए हितकर है।

आम की गुठली, लावा तथा सेंधा नमक में मधु मिलाकर चटाने से बालकों की छर्दि बंद हो जाती है।

शक्कर, मधु, कालातिल और मुलेठी के कल्क को लेहवत् बनाकर प्रयुक्त कराने से रक्तस्राव और प्रवाहिका रोग का निवारण होता है।

बालक में गुदपाक होने पर पित्तशामक उपचार के साथ ही पान और प्रलेप में रसोत का प्रयोग करना अनिवार्य है।

श्वेत जीरा, छोटी पीपर, शक्कर, मधु, छोटी इलायची और सेंधा नमक—इनका लेह बालक के मूत्रग्रह में प्रयोग करना उपयोगी होता है।

सेंधा नमक, सोंठ, इलायची, हींग और भारंगी—इनके लेह को घी या जल के साथ प्रयोग करने से बालकों के वातज अफरा और शूल का शमन होता है।

हर्रें, वचा, कूठ—इनके कल्क में मधु मिलाकर स्तनदुग्ध के साथ पान कराने से शिशुओं के तालुव्रण नष्ट होते हैं।

गृहधूम की कालिख, हलदी, कूठ, राई और इन्द्रयव—इन्हें मट्ठे में पीसकर लेप लगाने से बालक के सिध्म (सेहुआँ), पामा तथा विचर्चिका आदि कुष्ठ-संबंधी रोगों का विनाश होता है।

लघुपंचमूल के क्वाथ में घी और दूध पकाकर उसमें अदरख मिला ठंढा कर पिलाने से बालक की हिचकी दूर होती है।

दाख, जवासा, हर्रें और छोटी पीपर—इनके चूर्ण को मधु के साथ चाटने से बालकों के श्वास, कास और तमक रोग दूर होते हैं।

पुष्करमूल, अतीस, काकड़ासिंगी, छोटी पीपर और जवासा—इनके चूर्ण को शहद में चाटने से बालकों की पंचविध खाँसी का निवारण होता है।

वयस्क रोगियों के ज्वरादि में वर्णित चिकित्सा-विधि अवयस्क में भी अपनानी चाहिए, किन्तु दाहादि की क्रिया वर्जित है। सभी प्रकार के रोगों की उत्पत्ति वातादि दोषों से ही हुआ करती है।

अत: सभी चिकित्सा समान् रूप से करते हुए बालकों की औषध-मात्रा घटा देनी चाहिए।

साँप का केंचुल, लहसुन, मरोड़फली,, सरसों, नीम की पत्ती, बिल्ली का विष्ठा, रोम, मेढ़ासिंगी, वचा और मधु मिलाकर धूपन करने से बालक के ज्वर तथा सभी ग्रहबाधाएँ दूर होती हैं।

बड़ी गोरखमुंडी और गूगुल का काढ़ा पीना भी ग्रहबाधा का निवारक होता है।

इसके अतिरिक्त बालकों की ग्रहशांति हेतु बलिदान और शांतिकर्म भी करने चाहिए।

बलिप्रदान के समय कथित मंत्रों का उच्चारण करना चाहिए। जैसे—"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय सत्यवस्तुतत्त्वात्मकाय स्वाहा।" ॐ कटं वैनतेयाय नमः ॐ ह्रां ह्रीं क्षः।"

बलिदान की विधि यह है कि एक हाथ में बालक की लम्बाई के बराबर की माला और दूसरे हाथ में एक मुट्ठी भात लेकर कथित मंत्रोच्चार के साथ बलि प्रदान करे।

विद्वानों ने बलिदान का एक अन्य मंत्र भी इस प्रकार बतलाया है, जैसे—"ॐ कामस्वर्णपक्षिणि शकुनिबालकं रक्ष स्वाहा।

दशमूल, रामशर, नीम, ब्राह्मी, पाठा, त्रिकटु, अंकोल (ढेरा का वृक्ष), वनकपास की जड़, शिरीष, कोयल के फल, भाभीरंग की जड़, अमलतास, शीशम, देवदारु, प्रियंगु का फूल, हींग, मंजीठ, वनतुलसी, चौलाई, जवासा, वचा, कूठ और कंकुष्ठ (एक प्रकार का पाषाणभेद) इनके कल्क में चौगुना दूध मिला कर सरसों के तैल में पका लें।

इस तैल के प्रयोग से उन्माद, अपस्मार, डाकिनी, भूत-वेताल, अकामेयादिग्रह, कृत्या, टोना-टोटका, राक्षस, क्षय, ज्वर, श्वास, खाँसी, प्रमेह और भगन्दर आदि रोगों का उन्मूलन होता है। इस तैल को अपने सम्पूर्ण शरीर में लगाकर शत्रुगृह में भी सुगमतापूर्वक निवास किया जा सकता है। प्राचीन काल में देवराज इन्द्र ने बालकृष्ण के रक्षार्थ नन्दगोप से इस तैलनिर्माण का विधान वर्णित किया था।

अष्टमङ्गलघृत का प्रयोग

वचा, कूठ, ब्राह्मी, सरसों, सारिवा, सेंधा नमक, छोटी पीपर और घृत—उक्त आठ पदार्थों का एकीकरण करके घी में पका ले। भलीभाँति पाक होने पर इस घृत का पान प्रतिदिन शिशु को करायें।

इसके परिणामस्वरूप बालक धैर्यवान, स्मृतिवान तथा बुद्धिमान बनता है।

इस अष्टमंगल घृत के प्रभाव से बालकों पर भूत-प्रेत, पिशाच तथा मातृकाओं का प्रकोप नहीं होता।

अश्वगन्धादि तैल का प्रयोग

असगंध के ८ भाग कल्क को १० भाग दूध के साथ घी में पका लें। बालकों के पीने योग्य यह घृत पुष्टिदायक और शक्तिदायक सिद्ध होता है।

लाक्षादि तैल का प्रयोग

रास्ना, चंदन, छोटी पीपर, असगंध, हलदी, सौंफ, देवदारु, मुलेठी,

चुरनहार, कटुकी और रेणुका—इनके १ अक्ष कल्क के साथ १ प्रस्थ लाख के रस, ४ प्रस्थ दही का पानी और १ प्रस्थ तैल मिलाकर पकावें।

इस तैल की मालिश से बालकों की ज्वरग्रस्तता तथा भूताविष्टता नष्ट होकर शक्तिवर्धन होता है।

सर्प आदि विष विनाशक उपचार

आषाढ़ मास के किसी शुभ तिथि और शुभ मुहूर्त में शिरस की जड़ को चावल की धोवन के साथ पीसकर पीने से सर्पदंशन का भय नहीं रहता।

कदाचित् ऐसे व्यक्ति को कोई सर्प मोहग्रस्त होकर काट भी ले तो उसका विष शिवाज्ञानुसार शिर से उतरकर मूलस्थान पर जा पहुँचता है।

इसी प्रकार वैशाख के महीने में मसूर और नीम की पत्ती के साथ शिरस की जड़ को पीसकर पी लेने पर उसे साँप काटने की संभावना एक वर्ष तक नहीं रहती।

किसी के हाथ-पाँव आदि अंगों में साँप के काटने पर तत्काल ही उस स्थान से चार अंगुल ऊपर की ओर मुलायम चमड़े के फीते, कपड़े या वृक्ष की छाल द्वारा कसकर बाँध देने से शरीर में विष का विस्तार नहीं होने पाता।

जिन स्थानों में बंधन नहीं लगाया जा सके वहाँ फाड़कर आग से जला दें। घाव को जलाना, चूसकर रक्त निकालना तथा घाव को विदीर्ण करना सर्पदंश में उपयोगी कर्म होते हैं। अपने मुख में कपड़े को डालकर कटे हुए स्थान को चूसने से विष दूर होता है।

कुछेक लोगों का मानना है कि साँप द्वारा काटे जाने पर उसे ही पकड़कर काट लें।

अथवा मिट्टी के ढेले को काट लेने से भी विष का प्रभाव नहीं हो सकता।

कालीमरिच के चूर्ण में गोघृत मिलाकर पीने तथा शून्य का ध्यान करने से सर्पविष भी शून्यवत् हो जाता है।

बाएँ हाथ की अनामिका उँगली से कानों की मैल का उस स्थान पर लेप लगाना विषविनाशक साबित होता है।

परवल मूल को पीसकर सूँघने से सर्पदंशित व्यक्ति भी जीवित हो उठता है।

पुष्य नक्षत्र में तगरपिण्डी की जड़ उत्पाटित कर नेत्रों में लगाने से मृत व्यक्ति भी पुनर्जीवन प्राप्त कर लेता है।

शिरीष के पत्तों के रस में सहिजन के बीजों को एक सप्ताह तक भिंगों दें। तदनंतर उसके नस्य, पान और अंजन प्रयोग से सर्पविष नष्ट होता है।

करंजुए के फल, त्रिकटु, बेल की जड़, दारुहलदी, हलदी, सुरसा का पुष्प—इन्हें बकरी के मूत्र में पीसकर अंजन लगाने पर मूर्छित व्यक्ति चैतन्य हो जाता है।

बांझककोड़े की जड़ को बकरी के दूध में भिंगोकर कांजी के साथ पीसकर सूँघने से विषाकुल व्यक्ति स्वस्थता का अनुभव करता है।

निशोथ इन्द्रायण, बड़ी इन्द्रायण, मुलेठी, हलदी, दारुहलदी, मंजीठ, सभी प्रकार के नमक और त्रिकटु—इन सब वस्तुओं को एकीकृत कर सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इस चूर्ण में मधु मिलाकर गाय के सींग में भर दें।

पुनः इसे पान, अंजन, अभ्यंग तथा नस्य कर्म में प्रयुक्त किये जाने पर घोरविष का वेग भी घट जाता है।

इस **अवार्यशक्तियोग** को **महागद** के नाम से जाना जाता है।

गृहधूम की कालिख, मंजीठ, हलदी और सेंधा नमक—इन्हें पीसकर लेप लगाते ही विष का निवारण होता है। इसके प्रयोग से लूता रोग की कर्णिका भी गिर जाती है।

कसौंदी के पत्ते को चबाकर कान में फूँकने से बिच्छू के डंक का विष नष्ट होता है।

हलदी, सेंधा नमक और मधु—इन्हें उबालकर पीने से मूलविष से व्यथित तथा दग्धाविद्ध भी सुखी हो जाता है। उक्त योग के फलस्वरूप कुत्ते आदि चौपायों तथा गोधा (गोह) आदि दो पैर वाले जन्तुओं के दाँत तथा नखादि के खरोंच से उत्पन्न विष भी दूर होता है। इसी भाँति गोजिया और निशोथ का प्रयोग भी विष-उपविष का विनाशक सिद्ध होता है।

वचा, हींग, भाभीरंग, सेंधा नमक, गजपीपर, पाठा, अतीस, सोंठ, कालीमरिच और पीपर—इस दशांश योग का निर्माण कश्यप मुनि ने किया था।

इसके सेवन से समस्त प्रकार के कीटविष निर्मूल होते हैं। दोपहर के समय छाता लगाकर चलने वाले मनुष्य को गरुड़ समझकर सर्प दूर से ही पलायित हो जाता है। वह उसके निकट आने का साहस किसी प्रकार भी नहीं कर सकता।

विष से विमुक्त प्राणी को कुछ दिनों तक विरुद्धाहार, क्रोध, भूख, भय, परिश्रम, स्त्रीसंसर्ग तथा दिन में शयन आदि कार्यों से विरत रहना आवश्यक है।

कलिहारी और मदार की जड़, गुहधूम तथा धतूरे का फल—इन्हें बकरी के मूत्र में पीसकर लेप लगाने से लूता (मकड़ी) रोग नष्ट हो जाता है।

नीलकमल, चंदन, कूठ, जीवन्ती, सोंठ, पाटल, धतूरा, बेल का गूदा, निर्गुण्डी, मैनफल, ब्रह्मदंडी, नखी नामक द्रव्य, तगर और वरुना की छाल—इनको पानी में पीसकर लेप लगाना वातज लूता का विनाशक होता है।

चंदन, नीलकमल, मोथा, कलिहारी की जड़, सोंठ, रेणुका, पटशरा,

मुलेठी, कुसुम्भ का पुष्प और पंचवल्कल—इनको समभाग लेकर जल में पीसकर लेपित करने से पित्तज लूता का विनाश होता है।

सोंठ, कालीमरिच, छोटी पीपर, सारिवा, चित्रक, वरुना, पान, वचा, पाठा, पाटल, मैनफल और बाँस की छाल—इनके बराबर भाग को जल में पीसकर लेप करने से कफज लूता का निवारण होता है।

त्रिदोषज लूता की उत्पत्ति भौंहों के मध्य, कंठनली, हाथ, कान, गंडस्थल, शिर, हृदय, मर्मस्थान और पीठ में हुआ करती है। ऐसी लूता कष्टसाध्य अथवा असाध्य मानी जाती है।

इसके उपचारार्थ सूझ-बूझ की आवश्यकता पड़ती है। मुरगे का बीट, वाराहीकन्द, हींग, मैनफल, हरताल, बाँस की छाल, कोयल, रेणुका और मैनसिल—इन्हें पीसकर लेप लगाने से त्रिदोषज लूता का शमन होता है।

मालकंगनी और कर्कटी के पत्तों को पीसकर लेप लगाने से एक सप्ताह में ही लूता समाप्त हो जाती है।

मानव-मूत्र में नाकुलीकंद को पीसकर लेप लगा देने पर सप्ताह भर में लूता विलुप्त हो जाती है।

गोजिया या कलिहारी की जड़ को पीसकर लेप लगाने पर लूताविष नहीं रह जाता।

औषध प्रयोग से पूर्व "ॐ नमो भगवते रुद्राय" मंत्र से औषध को अभिमंत्रित कर लेना आवश्यक है।

कुंकुम और चंदन को दूध में पीसकर भोजपत्र पर मंत्रलेखन कर उसे सुतली से बाँध लें। तदनंतर उस पोटली को कंठ या बाहुमूल में बाँध देने पर निःसन्देह रूप से लूता का सफाया हो जाता है।

लूता रोगी के व्रणस्थान का पाक होने, जामुन के समान श्याम वर्ण दीखने, रक्तस्राव होने तथा दाँत और होंठ के रंग भी श्यामवर्णीय हो जाने पर उसके जीवन की आशा नहीं रह जाती।

किन्तु ऐसी स्थिति में भी स्वच्छ उपचार करते रहना चाहिए। कदाचित् कोई रोगी इससे बच भी सकता है।

स्तन-दुग्ध में गेरू को घिसकर भोजपत्र पर मंत्रयुक्त शास्त्रोक्त यंत्र का लेखन कर उसे सन की सुतली में लपेट कर पोटली बना लें। उस पोटली की तीन दिनों तक निरन्तर पूजा करने के अनन्तर उसे रोगी के कंठ पर बाँध देने से लूताविष का निवारण होकर रोगी स्वस्थ होता है। इस योग का कथन भगवान धन्वन्तरि ने स्वयं अपने मुख से किया है।

रसायन का वर्णन

प्रत्येक मानव को दीर्घायुष्य, स्मरणशक्ति, धारणा बुद्धि, स्वस्थता, यौवनावस्था, शारीरिक सौंदर्यता, उदारता, वाक्सिद्धि तथा वीर्यपुष्टि केवल रसायन के सेवन से ही प्राप्त हो सकती है। जीवन के पूर्वावस्था या मध्यावस्था में विजितेंद्रिय होकर जुलाब के द्वारा प्रदूषित रक्त को निष्कासित कर औषधियों का सेवन करना चाहिए।

हरड़, आमला, सेंधा नमक, सोंठ, वच, पीपर, हलदी, भाभीरंग तथा गुड़ को मिला स्निग्ध होकर गरम जल के साथ पीने से उदर बिलकुल स्वच्छ हो जाता है।

जुलाबरहित अशुद्ध शरीर से रसायन ग्रहण करना उसी प्रकार निष्फल होता है जिस प्रकार मलिन वस्त्र पर रंग का चढ़ना। जिस भवन में वायु का विशेष रूप से संचरण न हो, भीतिरहित हो, सभी आवश्यकीय वस्तुएँ जहाँ वर्तमान हों, मुख्यत: भवन की स्थिति उत्तर दिशा में हो तथा उनमें तीन सामान्य खिड़कियाँ भी हों।

जिस स्थान में धूम तथा धूप न हो, कूड़ा-करकट तथा सर्पादि जीवों से रहित हो, जहाँ स्त्रियों तथा अज्ञानियों का आना-जाना न हो—ऐसे एकान्त गृह की लिपाई-पुताई चिकित्सक को करा देनी चाहिए।

तत्पश्चात् मांगलिक कार्यों को सम्पन्न कर पवित्रावस्था में किसी शुभ तिथि में उस कुटिया में प्रविष्ट हो। औषध सेवन के फलस्वरूप नवीन ऊर्जा और शक्तियुक्त होकर वह ब्रह्मचारी, धैर्यवान्, जितेंद्रिय, दानपरायण, दयावान तथा धर्मनिष्ठ जीवन बिताते हुए अपने इष्ट देवता का स्मरण सोने और जागने से पूर्व करता रहे।

औषधि पर श्रद्धा-विश्वास रखते हुए मधुरभाषी बनकर रसायन का सेवन प्रारंभ करे। तदनंतर वह व्यक्ति पेया आदि को धारण कर घृतयुक्त हरड़ को तीन या पाँच दिनों तक खाता रहे। अर्थात् जब तक पुराने मल का नि:सरण न हो जाय तब तक हरड़ का सेवन बराबर करता रहे।

मुलेठी, वंशलोचन, पीपर, सेंधा नमक, लोहा, चाँदी, ताँबा, सीसा, राँगा, सोना, वच, मधु तथा घृत। इन सब वस्तुओं को अलग-अलग मिश्री के साथ त्रिफला मिलाकर मात्रा का निर्धारण कर सेवन करे।

यह रासायनिक प्रयोग समस्त रोगों का विनाशक, बुद्धि, आयु, स्मरणशक्ति तथा कांतिवर्धक होता है।

मंडूकपर्णी के स्वरस या मुलेठी चूर्ण को दूध के साथ पान करें। अथवा गुरुच के रस का प्रयोग करें। शंखपुष्पी की जड़ और उसके फूल का कल्क प्रयोग में लायें।

उक्त सभी योग आयुवर्धक, सर्वरोगनाशक, क्षुधाग्नि, स्वर और बलवर्धक होते हैं। शंखपुष्पी का उपयोग मुख्यत: धारणा-शक्तिवर्धन हेतु किया जाता है।

गोखरू की जड़ को फूलों के सहित छाया में सुखाकर चूर्णित कर ले और उसी के रस में भिंगोकर ८ तोले के परिमाण में गोदुग्ध के साथ पान कर शालिधान्य का भात खायें। इस प्रकार ८०० तोले चूर्ण सेवन के पश्चात् वह वीर्यवान, सौन्दर्यवान, ऐश्वर्यवान तथा शतायु बन जाता है।

जिस प्रकार गायों के समूह में सांड़-कामातुर हो जाता है उसी प्रकार उक्त चूर्णसेवी मानव भी तरुणियों के मध्य बन बैठता है।

कच्ची वाराहीकन्द की जड़ को पीसकर दूध के साथ पान करे। औषध सेवनकाल तक अन्न का परित्याग कर केवल दुग्धाहार ही ग्रहण करें।

निरन्तर एक मास तक ऐसा करने के पश्चात् कुछ दिनों तक दुग्धान्न का भोजन लें। इस प्रक्रिया को अपनाने पर कभी यौवन का क्षय नहीं होता।

अथवा वाराहीकंद के सूक्ष्म चूर्ण को वाराहीकंद के निचोड़े हुए रस में भिंगोकर घी और शहद मिलाकर चाटें या वाराहीकंद की जड़ को घी में पकाकर उस घृत का पान करें। निरन्तर एक वर्ष तक प्रतिदिन ५-७-८ या १० पीपलों को मधु तथा घी के साथ पीना रसायन का कार्य करता है।

शिलाजीत के लक्षण

ग्रीष्मकाल में प्रचंड धूप की उष्णता से तपकर पर्वत लाह के समान सोना आदि छह धातुओं के रस को उगलते हैं जिन्हें शिलाजीत कहा जाता है।

षट् धातुओं के रस से रसान्वित शिलाजीत कटु, अल्प उष्ण, पाककाल में तिक्त तथा छेदक होता है, किन्तु लोहमय शिलाजीत उत्तम प्रजाति का होता है। गोमूत्र के समान सुगंधिवान, गूगुल के समान कृष्ण वर्ण वाला, कंकड़-पत्थर से रहित, मृत्तिकालिप्त, स्निग्ध, कषाय, अम्लतारहित, कोमल तथा भारी शिलाजीत श्रेष्ठ माना जाता है।

शिलाजीत को त्रिफला के क्वाथ, पटोला के यूष अथवा मुलेठी के क्वाथ में तीन-तीन दिनों तक भिंगोकर छान लेने से वह शुद्ध हो जाता है।

शिलाजीत का सेवन हीन, मध्यम और उत्तम योग से पहले एक सप्ताह तक १ तोला, तीन सप्ताह तक २ तोले और अंत में सात सप्ताह तक ४ तोले की मात्रा में देशकालानुसार करें।

रसायन के निमित्त गाय के धारोष्ण दूध तथा वाजीकरण के लिए गोखरू चूर्ण के साथ करना चाहिए।

शिलाजीत का प्रयोग विधिपूर्वक किये जाने पर समस्त रोगों का उन्मूलन होता है। इसके द्वारा सौन्दर्य और पराक्रम की वृद्धि होती है।

भोजन से पूर्व शीतल जल, दूध, शहद या घृत—इनमें से किसी एक-दो-तीन अथवा सभी का मिश्रित प्रयोग करने से सदैव एक-सी ही अवस्था बनी रहती है।

नित्यप्रति २ हर्रै को गुड़ के साथ, शहद के साथा, पीपर के योग से अथवा सोंठ मिलाकर या सेंधा नमक के साथ सेवन करने वाला व्यक्ति स्वस्थ रहकर अपने जीवन के सौ वर्ष पूरे कर लेता है।

घृत में हरड़ों को भूनकर उस घृत का पान करने वाला व्यक्ति दीर्घकाल तक उसी भाँति युवा बना रहता है जिस प्रकार किसी के द्वारा किये गये सत्कर्मों की याद ताजी बनी रहती है।

आँवला, भाभीरंग और असना का सत्त्व—इनके चूर्ण में तैल, घी, मधु तथा लौहचूर्ण मिलाकर सेवन करने वाला व्यक्ति अपने विगत यौवन को पुनः प्राप्त कर लेता है।

वाजीकरण का वर्णन

दुर्बलांगों के प्रेमनिर्वहन तथा उनके शरीर रक्षणार्थ यहाँ वाजीकरण औषधों का कथन किया जा रहा है। वाजीकरण औषधसेवी युवकों की नित्य स्त्रीसहवास करते रहने पर भी कामपिपासा शांत नहीं होती।

स्निग्ध तथा शुद्ध व्यक्ति को सर्वप्रथम घृत, तैल, मांसरस, दूध, शक्कर और मधु से युक्त निरूहबस्ति और अनुवासन का प्रयोग करना उचित है।

किन्तु मांसभक्षियों के लिए दूध और मांसरस को देना चाहिए। तत्पश्चात् वीर्यवर्धक और सन्ततिकारक औषधों का सेवन करना लाभकारी है।

जिस प्रकार छायाविहीन तथा सुगंधित पुष्पों से रहित एक शाखीय वृक्ष शोभायमान नहीं होता वैसे ही निःसंतान व्यक्ति की भी दशा होती है।

चपल गति, तोतली वाणी, धूल-धूसरित शरीर तथा मुख से टपकती हुई लार वाली संतति को देखकर मन आह्लादित हो उठता है।

जब धूल-धूसरित बालक के दर्शन, स्पर्शन आदि से ही पुत्रवत् आनंद की प्राप्ति होती है तब फिर अपने पुत्र से कितना आनंद मिलेगा? इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

बिदारीकंद, पीपर, चौलाई, चिरौंजी, गन्ना, क्रौंच की जड़ और मधु—ये सब १६ तोले शक्कर, २०० तोले और नूतन घृत ३२ तोले—इनके योग की तोले-भर मात्रा सैकड़ों नारियों से रमण करने हेतु पर्याप्त होती है।

क्रौंच के बीजों का चूर्ण और गेहूँ का आटा अथवा उड़द को दूध में पका लें। उसे पहली बार ब्याई हुई गोदुग्ध के साथ सेवन करने वाला व्यक्ति स्त्रियों को मदनयुद्ध में पराजित कर देता है।

बकरे के अंडकोश को दूध में उबाल कर उसमें काले तिलों को भिंगोकर मिश्री के साथ खाने पर शताधिक नारियों का भी मदमर्दन करना संभव होता है।

बिदारीकंद के रस में भिंगोये हुए उसी बिदारीकंद के चूर्ण को शहद और घी मिलाकर चाटने वाला पुरुष सैकड़ों नारियों से संभोग करने में समर्थ होता है।

आँवले के रस में भिंगोये गयी छोटी पीपर और आँवले के चूर्ण को शक्कर, मधु और घृत के साथ खाकर दुग्धपान करने वाला अस्सी वर्ष का बूढ़ा व्यक्ति भी युवा के समान बन जाता है।

मुलेठी के चूर्ण को १ कर्ष की मात्रा में घी-मधु के साथ चाटकर ऊपर से दुग्धपान करने पर कामवासना की वृद्धि होती है।

काकड़ासिंगी के कल्क को दूध में मथकर पान करें। तदनंतर मिश्री, घृत और दूध का आहार लेने वाला व्यक्ति साँड़ के समान बलवान हो जाता है।

क्षीरकाकोली को दूध में पकाकर घृत तथा शहद के साथ खाकर गोदुग्ध पी लें तो उस व्यक्ति की जननेंद्रिय रतिकाल में शिथिल नहीं होती। उक्त पदार्थों के सेवन से मत्त व्यक्ति अपने प्रचंड कामवेग के द्वारा नारियों को संतुष्ट कर देता है।

पुरुष की वृषत्वता के लिए निम्न गुणसम्पन्ना रमणियों की कल्पना की गयी है, जैसे—हृदयोत्सव की नाम वाली, जिसके पुनरावलोकन से संतृप्ति न हो, सम्पूर्ण इंद्रियों को कर्षित करने हेतु फन्दास्वरूप, पति के निकट छन्दानुगामिनी होकर रहने के लिए दीक्षित,, हास-विलास से सम्पन्न, पतिव्रता, लज्जाशीला, मैथुनकाल में प्रगल्भा, मधुरभाषिणी तथा काम-कल्लोल से पूर्ण।

देश, काल, और शक्त्यानुसार शास्त्रोक्त कथित समस्त रतिक्रीडाओं को प्रसन्नतापूर्वक करना चाहिए।

नायिका को कमलयुक्त रतिसुख के तुल्य तथा नायक को मधुरशब्दझंकारिणी प्रिया के सदृश पुष्पित-पल्लवित अग्रभाग वाली लता के समान पुष्प-सज्जित शैय्या, शारीरिक पीड़ा का अभाव, अर्थ-संबंधी चिंता से विमुक्ति तथा वाजीकरण योग का निकटस्थ होना—ये सभी कामदेव के काम को भी पूर्ण कर दिया करते हैं।

॥ इस प्रकार रावणसंहितान्तर्गत रोग चिकित्सा ज्ञान तृतीय परिच्छेद सरल, सुबोध हिन्दी भाषा में मैथिल आचार्य शिवकान्त झा द्वारा सुसम्पन्नता को प्राप्त हुआ॥३॥

॥ शुभमिति ॥

□□□